संकलन : एक

एक जीवित इतिहास
बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता
गांधी विचार परम्परा के प्रतीक पुरुष
महादेवी जी का भावलोक
साहित्य शिक्षा और कला की त्रिवेणी
नीर भरी दुःख की बदली
आज के बिछुड़े
समय के शिखर पर लिखी एक कविता
प्राच्य विद्या विशारद

आकाशवाणी विविधा

पं. जनार्दन भट्ट
श्रीमती अमृता प्रीतम
पं. नरेन्द्र शर्मा
श्रीमती महादेवी वर्मा
डा. रामकुमार वर्मा
श्री अज्ञेय एवं श्री नर्मदेश्वर उपाध्याय
पं. द्वारिका प्रसाद मिश्र
पं. बनारसीदास चतुर्वेदी
श्री शैलभद्र याजी

आकाशवाणी प्रकाशन
आकाशवाणी महानिदेशालय
नई दिल्ली - 110001

।। आकाशवाणी विविधा ।।
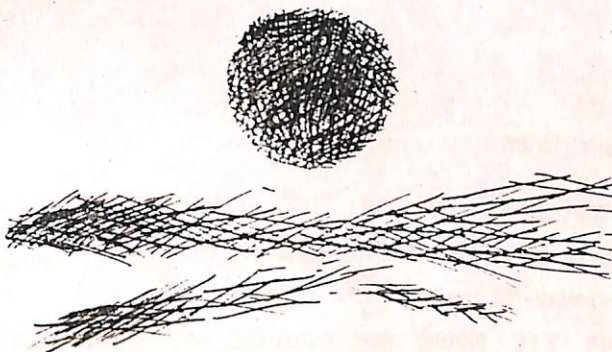
आकाशवाणी प्रकाशन
आकाशवाणी महानिदेशालय, संसद मार्ग
नई दिल्ली-1

सम्पादक
आकाशवाणी प्रकाशन :
❑ **श्री मधुकर लेले**
❑ **डॉ० राजेन्द्र कुमार माहेश्वरी**
❑ **डॉ० गंगेश गुंजन**

अंक : अप्रैल-जून १९९२ ई०

आवरण शिल्पी : श्री नारायण बड़ोदिया

मूल्य : 20.00 रुपये

विक्रय केन्द्र • प्रकाशन विभाग

- सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-110001, दूरभाष : 3313308
- कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, वालार्ड पायर, बम्बई-400038, दूरभाष : 2610081
- 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700069, दूरभाष : 286696
- एल.एल.ए. आडीटोरियम, 736, अन्नासलै, मद्रास-600002, दूरभाष : 867643
- बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004, दूरभाष : 653823
- निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, त्रिवेन्द्रम-695001, दूरभाष : 68650
- 10-बी, स्टेशन रोड, लखनऊ-226001, दूरभाष : 245785
- राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद-500004, दूरभाष : 236393

कमरासंख्या : १३६.ए,
आकाशवाणी भवन (पहली मंजिल)
संसद मार्ग नई दिल्ली - ११० ००१
दूरभाष : ३७१०००६-१३६,
३७१८९९२

मुद्रक : बंगाल ऑफसेट वर्क्स, करोल बाग, नई दिल्ली

॥ श्रद्धांजलि ॥

स्व० लसकौल निदेशक दूर दर्शन, श्रीनगर

स्व ० राजेन्द्र कुमार तालिब, निदेशक, आकाशवाणी, चंडी गढ़

स्व० मनोहर लाल मनचन्दा केन्द्र अभियन्ता, आकाशवाणी पटियाला

●

राष्ट्रीय अखण्डता के लिए
जिनके बलिदान की पावन स्मृति
हमेशा हमें प्रेरित करती रहेगी।

विषय		पृष्ठ संख्या
प्रस्तावना/भूमिका	***	
बिनु हरि-कृपा मिलहि नहि सन्ता	: पं० बनारसीदास चतुर्वेदी	1
नीर भरी दुःख की बदली	: श्रीमति महादेवी वर्मा	13
गांधी विचार-परम्परा के प्रतीक-पुरुष	: पं० द्वारिका प्रसाद मिश्र	26
आज के बिछड़े	: पं० नरेन्द्र शर्मा	34
भारतीय विद्या विशारद	: श्री जनार्दन भट्ट	45
साहित्य, शिक्षा और कला की त्रिवेणी	: डा० राम कुमार वर्मा	67
महादेवीजी का भावलोक	: श्री अज्ञेय एवं श्री नर्मदेश्वर उपाध्याय	83
एक जीवित इतिहास	: श्री शीलभद्र याजी	90
समय के शिखर पर लिखी एक कविता	: श्रीमती अमृता प्रीतम	111

।।प्रस्तावना।।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में बहुविध विकास और उल्लेखनीय उपलब्धियों के साथ-साथ अनेक सामयिक चुनौतियां भी उपस्थित होती रहीं जिन्होंने जन-जीवन को व्यापक स्तर पर आन्दोलित किया। ऐसा, जीवन के प्रायः हर क्षेत्र में हुआ और समक्ष में खड़े सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक सवालों से देश की राज्य व्यवस्था के साथ-साथ, बुद्धिजीवी, नेतृवर्ग भी प्रभावित एवं प्रेरित होता रहा और अपने-अपने माध्यम के अनुसार समाधान की दिशा में इनसे जूझता रहा।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में आकाशवाणी, आज भी प्राय : सर्वाधिक व्यापक और समर्थ जनसंचार माध्यम है जो अपनी प्रसारण-परम्परा की एक ठोस ज़मीन पर अस्तित्व जमा चुका है और पूरे राष्ट्र को समग्रता में महसूस करते हुए अपने कार्यक्रम का प्रारूपण और कार्यान्वयन करता आया है। यह अतिशयोक्ति नहीं, आकाशवाणी जन-जन की वाणी है। इसमें वर्तमान भारतीय समाज की जन-भावना की अद्यतन अभिव्यक्ति हो रही है। सामाजिक सरोकारों में रेडियो-प्रसारणों ने, एक-से-एक कठिन प्राकृतिक परिस्थितियों और राष्ट्रीय संकटों के समय में, अपनी व्यापक और तत्पर सेवाओं के साथ स्वयं को सार्थक किया है। ऐसा इसने जनसंचार के एक सशक्त और सर्वप्रिय अपनी भूमिका के तहत ही, कुशलता से किया है, जो जग ज़ाहिर है।

आकाशवाणी अपने अतीत की आदर्श परम्परा, सौंस्कृतिक धारा एवं स्वतंत्रता आन्दोलन के लम्बे महान इतिहास के स्पन्दनों से सीधा जुड़ा हुआ रहा और अपने एक-से-एक सामयिक और सार्वकालिक उपक्रमों के ज़रिये इसने, यह संदेश दिया कि यह राष्ट्रीय जीवन के अतीत, वर्तमान और भविष्य के अनुभव, विचार और संदेशों का वाहक है, एक व्यापक व्यवस्था है जो राष्ट्र के बहुआयामी विकास में भी गम्भीर भूमिका निभाता है।

अपने इस उत्तरदायित्व के तहत ही आकाशवाणी ने कई मौलिक कार्यक्रमों की उद्भावना की जिनका अपना महत्व है। उन्हीं में एक है–अपने-अपने क्षेत्रों में मौलिक अवदान करनेवाले कुछ महान व्यक्तित्व की लम्बी-लम्बी वाणीमय आत्मकथात्मक रिकॉर्डिंग। ये रिकॉर्डिंग वर्तमान में प्रतिबिम्बित होते हुए हमारे गौरवशाली अतीत के अमूल्य अनुभव हैं जिन्हें सुन कर हम अपनी राष्ट्रीय जीवनधारा को, नये परिप्रेक्ष्य में उपयोगी और प्रेरणादायी संदर्भ ले कर समझने का आधार प्राप्त करते हैं ।

हमारे संग्रहालय में यों तो शताधिक ऐसी कालजयी रिकॉर्डिंग उपलब्ध हैं जिन्हे हम कालान्तर में पुस्तकाकार छापने की योजना रखते हैं, परन्तु यहाँ विविधा में संप्रति कुछ एक ही रेडियो-जीवनी में से चुने हुए मर्मस्पर्शी और प्रेरक प्रसंगों को प्रकाशित करके विविधा फिर से आरम्भ कर रहे हैं, जिसकी हमें प्रसंन्नता है।

विविधा' आकाशवाणी प्रकाशन की पत्रिका है जो वर्षो पूर्व कुछ एक संकलनों के बाद किन्हीं अपरिहार्य कारणों से बन्द हो गई थी। परन्तु इसकी अक्षुण्ण उपयोगिता को महसूस करते हुए आज इतने वर्षो के पश्चात् हमने इसका प्रकाशन प्रारम्भ करते हुए अपने प्रसारण कार्य को, अपेक्षाकृत और अधिक व्यापक सामाजिक दायरे और उत्तरदायित्व से जोड़ने का प्रयास किया है। हमारा लक्ष्य है कि विविधा नियमित रूप से छप कर, आपके समक्ष आती रहे।

इस अंक में हम जिन विशिष्ट जनों की रिकॉर्डिंग के संक्षिप्त सम्पादित अंश छाप रहे हैं, वे अपने कृतित्वों से विराट हैं, जिन्हें पढ़ते हुए आप स्वयं महसूस करेंगे। हम अपना हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं कि उनकी बातों ने हमें इस संरक्षणीय कोटि के कार्य की प्रेरणा दी।

यों तो पत्रिका प्रकार के संकलनों में भूमिका की प्रायः कोई परम्परा नहीं है तथापि जिन व्यक्तियों की जैसी आत्मकथात्मक बातों को हम इसमें सम्मिलित कर रहे हैं, वे अपने आप में वाणीमय दस्तावेज ही हैं, अतः अत्यन्त विशिष्ट संदर्भो के आलेख। इसलिए हमने महत्व को देखते हुए भूमिका लिखवाने का निश्चय किया और हमारे अनुरोध पर प्रो० विजयेन्द्र स्नातक ने बड़े मनोयोग और सिद्ध बौद्धिकता से अति मूल्यवान भूमिका लिखने की कृपा कर के हमारे प्रकाशन को गरिमा प्रदान की है, जिसके लिए हम उनके आभारी हैं।

प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के निदेशक डा० श्याम सिंह 'शशि' तथा उपनिदेश (उत्पादन) श्री वाई० के० मल्होत्रा को भी हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं जिन्होंने इसके प्रकाशन में हमें बहुत अधिक योगदान दिया है।

ऐतिहासिक मूल्य के अपने इस कार्य में हुई यह उल्लेखनीय सफलता हमें नहीं मिल पाती यदि श्री मधुकर लेले, उप महानिदेशक, डा० राजेन्द्र कुमार माहेश्वरी निदेशक कार्यक्रम (प्रकाशन), श्री जी० रघुराम, निदेशक (कार्यक्रम विनिमय एवं प्रत्यंकन सेवा), डा० गंगेश गुंजन, सहायक निदेशक (प्रकाशन) एवं श्री ब्रजराज तिवारी, सहायक निदेशक (जनसम्पर्क) का मनोयोग भरा हुआ सक्रिय भावनात्मक सहयोग उपलब्ध नहीं होता। अतः हम इन्हें धन्यवाद देते हैं।

'विविधा' के इस अंक की सामग्री आज के इस सूचना विस्फोट के युग में, निश्चय ही अपनी मौलिकता एवं प्रासंगिकता सिद्ध करेगी और पाठक-मन में नवीन सूचनाओं का संचार कर सकेगी, इसी विश्वास के साथ वाणी-साहित्य का अपना यह पत्रिका-प्रयास, आपके सम्मुख निवेदित है।

☐ एस० पी० भाटीकर
महानिदेशक
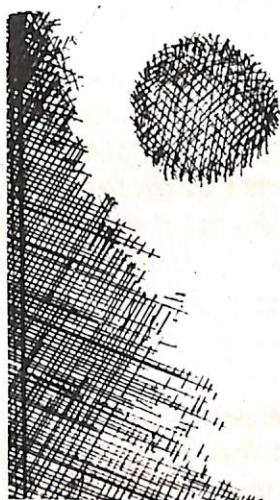
।।भूमिका।।

आकाशवाणी ने भारत के सुप्रसिद्ध साहित्यकारों, पत्रकारों, समाज सेवियों, विज्ञानी और राजनीतिज्ञों से साक्षात्कार की एक नवीन योजना प्रारंभ की है। इस योजना से पूर्व इस दिशा में कुछ कार्य हुआ अवश्य था किन्तु वह न तो योजनाबद्ध था और न उसमें नैरन्तर्य बना रहा। वर्तमान योजना को व्यापक आयाम देकर प्रारंभ किया जा रहा है। आकाशवाणी की इस योजना का लक्ष्य है–'वयोवृद्ध, लब्ध प्रतिष्ठ व्यक्तियों के जीवन के प्रेरणाप्रद मार्मिक प्रसंगों को साक्षात्कार, भेंटवार्ता द्वारा एकत्र कर स्थायित्व प्रदान करना।' इस प्रकार के साक्षात्कार केवल मनोरंजक, प्रेरक एवं कुतूहलपूर्ण ही न हो कर उन मनस्वी महापुरुषों के जीवन के प्रामाणिक दस्तावेज भी हैं। इन संस्मरणात्मक साक्षात्कारों को पढ़ कर पाठकों को ऐसे नवीन संदर्भ, ऐसी विचित्र घटनाएँ और विस्मयजनक बाते मिलेंगी जो अद्यावधि किसी अन्य माध्यम से सामने नहीं आई हैं। इस प्रकार की भेंट वार्ताओं का लक्ष्य मुख्यत : यही रहा है कि उन घटनाओं अथवा तथ्यों को उद्‌घाटित किया जाये जो इनकी जीवनी शक्ति के मूल केन्द्र में काम करते रहे हैं।

प्रस्तुत साक्षात्कार या भेंटवार्ताएँ न तो जीवनी हैं और न इतिहास। इनमें आत्मवृत्त की खोज करना भी सार्थक नहीं होगा। रेखा चित्र या संस्मरण विधा भी इन साक्षात्कारों पर घटित नहीं होती। वास्तव में इनमें प्रश्नकर्ता की जिज्ञासा और किसी बिन्दु विशेष पर दृष्टि निक्षेप ही मुख्य रूप से लक्ष्य रहा है। इसलिए किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का आकलन करना संभव नहीं है। आकाशवाणी की इस योजना में प्रत्येक व्यक्ति से मिल कर प्रश्नोत्तर शैली में साक्षात्कार करना अभीष्ट था।

आकाशवाणी ने साक्षात्कार की चयन प्रक्रिया में उन वयोवृद्ध व्यक्तियों से सम्पर्क साधा है जो अपने क्षेत्र में अग्रणी कार्यकर्ता और लब्धप्रतिष्ठ सम्माननीय व्यक्ति रहे हैं। इस प्रथम संग्रह में अनेक व्यक्तियों

के साक्षात्कार हैं जिनमें कुछ व्यक्ति राष्ट्र के सौभाग्य से आज हमारे बीच विधमान हैं तथा छह व्यक्ति, अपने यशः शरीर से जीवित रह कर हमारा पथ प्रदर्शन कर रहे हैं। जिन महापुरुषों के संक्षिप्त साक्षात्कार या आत्मवृत्त इस पुस्तक में संकलित हैं, वे सभी अपने क्षेत्र में प्रकाश स्तम्भ हैं। जो व्यक्ति हमें छोड़ कर इस पार्थिव मर्त्य लोक से चले गये वे भी इस शताब्दी के नौवें दशक तक हमारे साथ रहे। उनके साक्षात्कारों में अनेक ऐसे मार्मिक एवं प्रेरक प्रसंग हैं जो पहले कभी प्रकाश में नही आये थे।

इन साक्षात्कारों की भाषा के सम्बन्ध में इतना स्पष्टीकरण आवश्यक है कि टेप में सुरक्षित इनकी भाषा, मौखिक भाषा है। मौखिक भाषा में व्याकरण और अलंकरण के सौष्ठव पर वक्ता का ध्यान नहीं रहता, सहज अभिव्यक्ति और सरल सम्प्रेषण ही उसका लक्ष्य रहता है। भाषा सौष्ठव के लिए सामान्य व्याकरण की त्रुटियों को छोड़ कर कोई और परिष्कार करना उचित नहीं समझा गया है। कहीं-कहीं भाषा में भंगिमा की दृष्टि से विस्मयजनक विलक्षणता मिलेगी। उसे यथावत रहने दिया गया है इसका ध्येय वक्ता के मन्तव्य को पाठक तक पहुँचाना है, परिमार्जन या भाषा प्राजंलता द्वारा उसे परिवर्तित करना नहीं। टेप द्वारा वक्तव्य को कुछ स्थलों पर स्पष्ट रूप से ग्रहण न करने के कारण भी वाक्य-विन्यास में अटपटापन लक्षित हो सकता है किन्तु समग्र संदर्भ को ध्यान में रखते हुए पाठक को मूल आशय को समझने में कठिनाई नहीं होगी।

इस संकलन में जो साक्षात्कार प्रस्तुत किये गये हैं उनमें पत्रकार, साहित्यकार, राजनीतिज्ञ, समाज सेवी और एक भारतीय विद्या (इंडोलोजी) से सम्बद्ध व्यक्ति हैं।

साहित्य एक ऐसी विधा है जो सभी मनस्वी व्यक्तियों को आकृष्ट करती है और स्वान्तःसुखाय साहित्य को राजनीतिज्ञ व्यक्ति भी स्वीकार करते हैं। पं. द्वारिका प्रसाद मिश्र ऐसे ही सुप्रसिद्ध राजनेता हैं जिनकी 'कृष्णायन' शीर्षक काव्यकृति विख्यात है। इन सभी व्यक्तियों के जीवन में कोई न कोई ऐसी विशेषता है जो उनके व्यक्तित्व-निर्माण के केन्द्र में रही है। उस विशेषता को हम जीवन-ऊर्जा भी कह सकते हैं। मैं इस भूमिका में उनका उल्लेख करके पाठकों की उत्सुकता को कम नहीं करना चाहता। पाठक स्वयं पुस्तक पढ़कर अपने औत्सुक्य का शमन करें।

आकाशवाणी की इस नूतन योजना द्वारा प्रस्तुत इस संकलन को मैं पाठकों के मनोरंजन या कुतूहल की वस्तु न मान कर नवीन सूचना, ज्ञान वर्द्धन एवं व्यक्तित्व विश्लेषण की दृष्टि से अभिनव प्रयोग मानता हूँ। मैंने स्वयं इन साक्षात्कारों को पढ़कर प्रायः सभी व्यक्तियों के जीवन के अनेक मार्मिक प्रसंगों का परिचय प्राप्त किया है जो महापुरुष अपनी जीवन लीला समाप्त कर संसार से विदा हो गये उनके साक्षात्कारों में ऐसी तथ्यात्मक बातें हैं जो अब हमारे लिए प्रामाणिक दस्तावेज हो गई हैं। जीवित व्यक्तियों ने भी अपने जीवन के कुछ ऐसे अव्यक्त पहलुओं को प्रकट किया है जिनकी अभी तक हमें कोई जानकारी नहीं थी।

मैं इस महत्वपूर्ण योजना के नैरन्तर्य की कामना करता हूँ और आकाशवाणी के संचालकों से सानुरोध निवेदन करता हूँ कि इस योजना को नियमित रूप देकर इसी पद्धति से सतत चलाते रहें। साक्षात्कार में जो प्रामाणिकता रहती है वह किसी दूसरी साहित्य-विधा में नहीं है। अत : यह क्रम चलता रहना चाहिए।

10.3.92

□ प्रो० विजयेन्द्र स्नातक

'बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं सन्ता' के विश्वासी :
पं० बनारसी दास चतुर्वेदी

चौबीस दिसम्बर, 1882 ई० में जन्मे पं० बनारसी दास चतुर्वेदी, व्यक्ति, सामाजिक कार्यकर्ता, उत्तरदायित्व से उच्च पारिवारिक, श्रेष्ठ राष्ट्रभक्त तो थे ही, आधुनिक हिन्दी पत्रकारिता के संस्थापक प्रयोक्ताओं में अग्रगण्य नाम हैं -चतुर्वेदी जी। अत्यंत विलक्षण बहुआयामी व्यक्तित्व के स्वामी पं० चतुर्वेदी अपने समय के वाणीमय इतिहास ही रहे हैं। विपुल जीवनानुभवों से भरे उनके लम्बे संघर्षमय जीवन के, यहाँ कुछ मार्मिक प्रसंग प्रस्तुत हैं।

इनसे भेंट की है : प्रसिद्ध पत्रकार श्री अक्षय कुमार जैन तथा डॉ० राजेन्द्र कुमार माहेश्वरी साहित्यानुरागी एवं उप मुख्य प्रोड्यूसर हिन्दी वार्ता आकाशवाणी, ने।

14 सितम्बर, 1984 ई० से फिरोजबाद में पं० चतुर्वेदी के निवास स्थान पर इस लम्बी बातचीत की रिकार्डिंग कई दिनों और कई बैठकों में सम्पन्न हुई थी। ❑
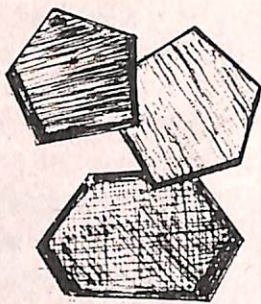
।।बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं सन्ता।।

❑

बनारसी दास : प्रारंभ में ही मैं एक भ्रम दूर कर देना चाहता हूँ। मैं कोई महापुरुष नहीं हूँ, अत्यंत विज्ञापित अवश्य रहा हूँ। और मेरे जीवन में जो अनेक घटनाएँ घटी हैं वे कोई ऐसी नहीं हैं जिनसे कोई दूसरा आदमी सबक सीख सके। मेरा उद्देश्य लिखने में जो रहा है वह यही है कि अपनी बात सीधी-सादी जबान में कह दूँ। अलंकारिक भाषा मुझे प्रिय नहीं है। मैं कोई विद्वान आदमी भी नहीं हूँ। अधिक लिखने-पढ़ने का अवसर मुझको मिला नहीं। इण्टर पास करने के बाद गरीबी के कारण मुझे पढ़ना छोड़ देना पड़ा। हाँ, एक बात में मैं अवश्य सौभाग्यशाली रहा हूँ यानी महापुरुषों के सम्पर्क में आने का मुझको मौका मिला 'बिनु हरि कृपा मिलहिं नहीं संता" यह तुलसीदास का कथन बिलकुल ठीक है। माता-पिता के आशीर्वाद से अथवा ईश्वर कृपा से मुझे महात्मा गाँधी, दीनबन्धु एण्ड्रयूज, कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ ठाकुर, सी. वाई. चिंतामणि, कृष्णराम मेहता और हिन्दी के प्रसिद्ध सम्पादक अम्बिकाप्रसाद जी वाजपेयी, पराड़करजी, गर्देजी इत्यादि के सम्पर्क में आने का मौका मिला।

प्रारंभिक जीवन में मुझे आर्थिक कठिनाइयाँ ज्यादा नहीं भोगनी पड़ीं यद्यपि हमारा कुटुम्ब अत्यंत निर्धन था। हमारी माताजी और काकाजी जो विधवा थीं–सात वर्ष की उम्र में ही वे विधवा हो गई थीं। इनके पास एक दुपट्टा था बाहर जाने के लिए, तो कभी हमारी माँ पहन लेती थीं और कभी हमारी काकी पहन लेती थीं। और कक्का ने, जैसा मैंने कहा 15 बरस तक घी का नाम भी नहीं लिया। एक उनकी घटना बड़ी मजेदार है, उनकी ससुराल यानी हमारी ननिहाल में एक शादी होने वाली थी-मैनपुरी में। मैनपुरी आप जानते हैं यहाँ से 43 मील दूर है। वह रात को तीन बजे उठे, परांवठे कराए, साग वगैरह लिया, लोटा-डोर बाँधी और 43 मील पैदल चल पड़े। बीच में एकाध जगह थोड़ा विश्राम किया और वहाँ गंज मोहल्ले में पहुँच कर के वहाँ से दो पैसे का इक्का किया और ससुराल में धड़धड़ाते हुए पहुँचे। और परसाव कराया और सबसे अंत में भोजन किया। और वह बड़े गौरव के साथ कहते थे कि- 'हमने यहाँ नहीं मालूम होने दिया कि हममें किसी प्रकार की थकान आई है।' अगर हम उनसे पूछते कि लौटे कैसे? तो दो पैसे का इक्का किया और फिर उसके बाद 43 मील पैदल आए।

मैट्रिक की फीस उन दिनों ग्यारह रुपये लगती थी तो 1911 में वह 11 रुपये देने के लिए, यहाँ से 28 मील गए और सुबह पाँच बजे उन्होंने चौबे बोर्डिंग हाउस में हमें आवाज दी। मैं उन दिनों पढ़ रहा था, बिजली की रोशनी थी नहीं, तेल क़ी रोशनी से ही पढ़ रहा था। तो मैंने कहा– 'कक्का ऐसे कैसे आ गए ?' बोले-'ग्यारह रुपये तुम्हें देने थे न।' मैंने कहा–'वह तो मनीआर्डर से भेज देते, दो आने खर्च होते।' उन्होंने कहा– 'मुझे देखना तो था कि तू पढ़ता है या नहीं।' तो 11 रुपये में दो अन्नी बचाई उन्होंने। अच्छा, साढ़े पाँच आने टिकट लगता था यहां का। तो 11 आने की एक धोती मिल जाती थी, दो धोती ले आते थे और 56 मील पैदल चलते थे।

उनका जीवन जो है अत्यंत संघर्षमय रहा। मेरे छोटे भाई का स्वर्गवास जब वह कुल जमा 26-27 वर्ष का था, उनके सामने हो गया। मेरी छोटी बहन रामप्यारी विधवा हो गई।

मेरी पत्नी का देहान्त हो गया। इन सब दुखों को उन्होंने बड़े ही संयम के साथ सहा।

माताजी भी हमारी थोड़े-से में गुजर करने वाली महिला थीं और उनकी तपस्या का सुफल सबको, फैमिली को मिल रहा है।

प्र०: दादाजी, प्रारंभिक शिक्षा तो आपकी यहीं फिरोजाबाद में ही हुई होगी ?

उ०: हाँ, यहाँ पहले अंग्रेजी मिडिल से ज्यादा पढ़ाई नहीं होती थी। सी० एम० एस० स्कूल था, उसमें छठवें, सातवें, आठवें तक पढ़ाई होती थी। मैंने हिन्दी मिडिल पास किया था। उन दिनों यही रिवाज था ज्यादातर लोग हिन्दी मिडिल पास कर के, फिर स्पेशल क्लास में दाखिल होते थे। तो मैंने 1906 में ये हिन्दी मिडिल पास किया था और उसके बाद सी० एम० एस० स्कूल में दाखिल हो गया। एर्थ तक यहाँ पास करके नाइन्थ के लिए हमलोगों को आगरे जाना पड़ा! उन दिनों यहाँ नाइन्थ क्लास भी नहीं थी। नाइन्थ क्लास, टेंथ क्लास, फर्स्ट ईयर ये चार बरस मुझको आगरे में पढ़ने में बीते।

कक्का के पास इतना पैसा नहीं था कि जो मुझे भेज सकते इसलिए हमारे मौसा चौबे चोखेलाल जी जिनकी जमींदारी वगैरा बिहार में थी फोरबिसगंज वगैरह में, उनसे ग्यारह रुपये महीने मुझको बराबर मिलते रहे। पाँच रुपये की छात्रवृत्ति चौबे बोर्डिंग हाउस में मिलती थी। चौबे बोर्डिंग हाउस शायद न जानते हों राजा जय किशन दास का था। वही राजा जयकिशन दास जिन्होंने स्वामी दयानन्द का सत्यार्थ प्रकाश छपाया था। कुँवर साहब जगदीश प्रसाद के ग्राण्डफादर थे वो। तो वहाँ पाँच रुपये का स्कोलरशिप मिलती थी, पाँच रुपये स्कूल से मिलते थे। दस रुपये छात्रवृत्ति मिलती थी और ग्यारह रुपये मौसा से मिलते थे। और कभी-कभी पिताजी से भी मिल जाता था। चार बरस में मैंने इण्टर पास किया। हमारे पुराने अध्यापकों में डा० ईश्वरीप्रसाद जी अभी विद्यमान हैं। वे शायद नाइण्टी फाइव इयर्स के हैं। और इसके सिवाय चन्द्रपुरी गोस्वामी भी अध्यापक थे वे भी चले गए और पं० किशनलाल जी संस्कृत के अध्यापक थे। वे भी चले गए। तो मैं चार बरस ही वहाँ पढ़ सका उसके बाद मौसा की यह इच्छा थी कि मैं बी. ए. करूँ लेकिन मेरी शादी हो चुकी थी, इसलिए कुटुम्ब का बोझ भी बढ़ गया था। इसलिए मैंने इंटर से ही पढ़ना छोड़ दिया और फिर मन में इच्छा कि ग्रेजुएट बनूँ, बनी की बनी रह गई।

प्र०: दादाजी, फिर उसके बाद, पढ़ने के बाद, कहीं अध्यापक रहे ?

उ०: मैं पहले कुछ दो-चार महीने फिरोजाबाद के स्कूल में था, उसके बाद गवर्नमेंट हाई स्कूल में मैं 14

महीने अध्यापक रहा। वहाँ पर मोहम्मद एजाज आलम हैडमास्टर थे। तो 30 रुपये महीने मुझे वहाँ मिलते थे। उसके बाद एक गश्ती विज्ञापन छपा, कई कमिश्नरियों में, एक हिन्दी अध्यापक की जरूरत है। तो आगरे में भी कमिश्नरियों में घूमा। तो वे अपने थे हैडमास्टर तो उन्होंने कहा कि तुम अर्जी लिख दो। मैंने कहा साहब एटी टू हंड्रेड ट्वंटी ग्रेड है और मुझको तीस रुपये मिलते हैं, यह तो मुझको मिलेगी नहीं। बोले कि 'इसकी चिन्ता नहीं। तुम ऐसा करो कि अर्जी भेज तो दो।' तो मैंने कहा कि - मैं एक पिसिल जी नाम की निब से लिखता हूँ वो निब मेरे पास नहीं है। तो उन्होंने कहा- 'क्लास मिस करो, और निब ले आओ जाकर के और फिर लिखो।'

मैं गया और निब लाया और उन्होंने अर्जी ड्राफ्ट खुद बनाया। मैंने उसकी नकल कर दी और नकल करने के बाद उन्होंने बहुत अच्छी रिकमंडेशन दी तो अकस्मात मुझको वह आफर आ गया। लेकिन जिस दिन आफर आया उसके महीनें भर पहले मैं आर्यमित्र में जाने की सोच चुका था। लक्ष्मीधर वाजपेयी आर्यमित्र के सम्पादक थे। तो उन्होंने कहा था कि तुम अध्यापकी छोड़ कर के पत्रकारिता में आ जाओ, आर्यमित्र का काम संभाल लो। तो मैंने एक महीने की छुट्टी के लिए अर्जी भेजी थी। वो छुट्टी की अर्जी मंजूर होकर आई जिस दिन, उसी दिन ये जो है ऑफर डेली कॉलेज इन्दौर का आया। तो मैंने डैली कॉलेज इन्दौर के ऑफर को स्वीकार कर लिया और इन्दौर 1914 की अक्टूबर ऐसा मुझे ख्याल पड़ता है शायद, मैं गया। वहाँ श्रीनिवास चतुर्वेदी के पिताजी पं० हरप्रसाद जी तहसीलदार थे, वह रहते थे। तो उनके भाई मोहनलाल को पढ़ाया था। मैं उनके पास ठहरा। उनके बाद द्वारकाप्रसाद सेवक जिनके लड़के हरिचन्द्र भटनागर दैनिक भास्कर निकाल रहे हैं, उनके पास इन्दौर छावनी में आ गया। और छह बरस निरन्तर मैं वहाँ रहा। वहीं 1914 से 1918 तक 'प्रवासी भारतवासी' नामक किताब मैंने लिखी थी।

प्र०: दादाजी, वहीं पर डा० सम्पूर्णानन्द जी भी तो थे?

उ०: डा० सम्पूर्णानन्द, मुझसे 5-7 महीने बाद उनकी नियुक्ति हुई थी। ढाई बरस हमलोगों का साथ रहा। और सम्पूर्णानन्द कई विषयों के अच्छे ज्ञाता थे। सम्पूर्णानन्द का साथ तभी का था और मुझपर उनकी काफी कृपा थी। हमलोग बराबर थे, किसी तरह का भेदभाव था नहीं। और उनसे जो संबंध हुआ वह जीवन भर कायम रहा। बहुत हँसी-मजाक-दिल्लगी हमारी चलती थी।

प्र०: कोई सुनाइए बात।

उ०: एक दफै ये हुआ कि हम लोग उज्जैन गए हुए थे और सुमन जी वहाँ पर उज्जैन के कॉलेज में प्रिंसिपल थे। तो इन लोगों ने सोचा कि क्षिप्रा नदी में नौका विहार किया जाए। तो दो नौकाएँ प्रारंभिक उनके संतरण के लिए छोड़ी गई थीं। तो मैं जाने लगा बैठने के लिए नौका में तो पाँव के कोने में थोड़ी कीचड़ लग गई। बोले– 'यह है आपका सलीका।' सम्पूर्णानन्द का तरीका यह था कि हर एक आदमी को सलीका सिखाने का उनको एक मर्ज-सा था। सो मैंने कहा– 'क्या हो गया, ये पोंछ लेंगे।' 'पोंछ लेंगे। ढंग से बैठना भी नहीं जानते' और वहाँ कोई 15-20 मिनट लेट हो गए। तो उन्होंने मज़ाक में वहाँ लोगों से कहा कि 'आज एक बड़ी दुर्घटना होते-होते बची। ये राज्यसभा के नए सदस्य, (राज्यसभा का सदस्य मैं चुन लिया गया था) ये चतुर्वेदी, बनारसीदास जी, क्षिप्रा नदी में डूबते-डूबते बचे। वो तो खैरियत हुई कि मैंने उनको बचा लिया, नहीं तो ये सभा आज शोक सभा में परिवर्तित हो गई होती।' और वो सब लोग खूब हँसे। अच्छा उसमें जो करसपौटेंड बैठे हुए थे "भारत" के 'लीडर' के, उनको यह मजाक समझ में नहीं आया, उन्होंने समझा-सच्ची घटना है। उन्होंने तार दे

दिया। अब तार वहाँ रीवा पहुँचा। तो वहाँ बुद्धिप्रकाश थे, चिंता इसको हुई। फिरोजाबाद तार आया तो इन्होंने यहाँ प्रसाद बाँटा और नतीजा उसका ये हुआ कि वो सब जगह फैल गई। एक आदमी झाँसी से, सिटी मजिस्ट्रैट थे, वह कार में आए। मैंने कहा- 'कहिए साहब कैसे पधारे?' बोले कि- 'मैं आपको बधाई देने आया हूँ आप डूबते-डूबते बचे।' मैंने कहा साहब कि- 'डूबने का तो नाम ही नहीं था वहाँ तो। और मैं तैरना जानता था, ये कीचड़ लग गई थी पाँव में थोड़ी'। 'बोले कि उसमें अखबारों में छप गया था, और बहुत से आदमी टीकमगढ़ से आए वहाँ कुण्डेश्वर, बोले कि- 'आप आम खिलाइए 10-12 रुपये के आम खिलाने पड़े। अठारह रुपये हमारे खर्च हो गए। सम्पूर्णानन्द से मजाक रहता था। मैंने कहा- 'तुम्हारे मजाक से जो है हमारे 18 रूपये खर्च हो गए।" और वह करते ये थे, उनका फोन आया-सर्वदानन्द का ट्रकंकाल। तो मैं गया, मैंने कहा कि भई ये कौन बोल रहे हैं सर्वदानन्द? क्या काम है, तो बोले कि वो बाबूजी बात करना चाहते हैं। मैंने फोन लिया- 'कहिए साहब क्या आज्ञा है।' बोले-'मैं आप लोगों की दौड़ देख के आया हूँ।' मैंने कहा हमलोगों की दौड़ से क्या माने? बोले– 'आप समझते देखते नहीं हैं ऊँटों की दौड़ होती है यहाँ।' तो ऊँटों की दौड़ देख के आए थे, तो मैंने उनसे कहा . . . .

प्र०: आपकी लम्बाई की वजह से?

उ०: हाँ! कि मैं ये अखबारों मैं छापूँगा कि राज्यपाल महोदय गवर्नमेंट का पैसा क्यों बरबाद किया करते हैं। एक दफा जब नैनीताल गए तो दिनकरजी, महादेवी जी वगैरह उनके पास ठहरी थीं वहीं नैनीताल में। फोन आया-चले आओ। मेरी हालत. . . ..ठीक नहीं थी, 'नहीं तुम चले आओ।' गए और हमारे पहुँचते ही बोले– 'देखिए वो कहावत गलत हो गई।' तो महादेवीजी और दिनकरजी बोले कौन-सी कहावत? तो पहाड़ में ऊँट नहीं जाते। चौबेजी देखिए आ तो गए हैं। तो उनका मजाक रहता था। बराबरी के थे। उनके साथ मैं भी काफी लिबर्टी लिया करता था। उन्होंने चिट्ठी लिखी कि- "आप चले गए हैं, यहाँ से। कई चीजें, एक खाट नहीं है, एक जानवर था यहाँ पर, वो सब नहीं है, फलाना नहीं है, और मैं अगर पुलिस को कह देता तो पकड़े हुए आते और ये क्या, सलीका है आपका, बिना कहे हुए चले गए।' तो दोनों जगह मुझे यही करना पड़ा आने नहीं देते थे वह। उन्होंने काफी सम्मान किया।

अब एक गायिका थी बनारस की। तो हमारे जो केसकर साहब, वह स्टूडेंट थे उनको वह कहते थे कि- "अच्छी गायिका तो नहीं लेकिन बनारस की थीं तो लोग, लोकल पैट्रन्स ने उसको पैट्रोनाइज किया था उनको। तो उनका गाना करा रहे थे। तो हमसे कहा- "तुम्हें जरूर आना है।" हम बैठे और आ के कहा कि देखो 'दिस फेलो हेज नो इयर फोर म्यूजिक" यह कहने के लिए जो है, हमारी म्युजिक में कोई दिलचस्पी नहीं थी। संपूर्णानन्द जी लेकिन उनका स्वभाव था कि नए मित्र बना नहीं पाते थे वो और पुराने मित्रों को जकड़ के बैठ जाते थे। नए मित्र बनाने की, अच्छा इंटलेक्चुअल प्राइड जिसे कहते हैं, बौद्धिक अभिमान भी उनमें था।

प्र०: अच्छा दादाजी, इन्दौर में फिर आपके साथ शायद ओरछा नरेश विद्यार्थियों में थे?

उ०: ओरछा नरेश और उनके दोनों भाई, जयइन्द्र सिंह और कर्णसिंह ये विद्यार्थी थे हमारे। बल्कि जब ओरछा मैं गया था तब सात विद्यार्थी वहाँ मेरे पुराने विद्यार्थी थे। ठाकुर सज्जनसिंह जी जो मंत्री थे वो भी मेरे विद्यार्थी थे। इनमें ओरछा नरेश जो थे, काफी होशियार थे और लगन वाले थे और उन्होंने जो मेरे साथ उपकार किये, उनको मैं जीवन भर नहीं भूल सकता।

प्र०: शायद 1937 में आप टीकमगढ़ पहुँचे थे?

उ०: 1937 में पहुँचा। डेली कॉलेज इन्दौर में जब मैं था तो 1918 में 14 और 18 के बीच में, मैंने किताब लिखी थी और तोताराम सनाढ्य ने भी लिखी थी। 728 पृष्ठों का मोटा वाल्यूम था। प्रवासी भारतीयों के बारे में इतिहास लिखने का पहला मौका था वह। तो 1918 में उसकी भूमिका के लिए शांति निकेतन गया था। 1918 ई० जीवन का एक महत्वपूर्ण वर्ष है। महात्मा गाँधी के दर्शन वहीं हुए थे। दीनबंधु एण्ड्रयूज से मुलाकात की, शांतिनिकेतन में। गुरुदेव के भी दर्शन वहीं हुए थे। प्रो० गिडीज के भी दर्शन वहीं हुए थे। आपको पता होगा टाउन प्लानिंग में, प्रो० गिडीज आचार्य थे। तो वहाँ पर इन्दौर में जो प्रदर्शनी लगी थी हिन्दी पुस्तकों वगैरह की जिसका इंचार्ज था मैं, उसमें गिडीज की और महात्मा जी की बातचीत हुई थी। उस वक्त वहाँ मैं मौजूद था। तो प्रो० गिडीज के दर्शन भी 1918 में ही मुझे हुए थे। तो 1918 में वहाँ गया था और 1920 में मैंने वह नौकरी छोड़ दी थी।

प्र०: प्रवासी भारतीयों की पुस्तक के बारे में जो आपने कहा, तो इसे लिखने की प्रेरणा आपको कैसे मिली?

उ०: हाँ, 1914 में पं० तोताराम सनाढ्य फिजी से लौटकर यहाँ आए थे। तो मैं भारतीय भवन स्थानीय लायब्रेरी में गया हुआ था। लाला चिरंजी लाल जी चूड़ी के मर्चेंट थे, आगे चल कर बने। वो उसके मैनेजर थे। तो उन्होंने कहा– "आपको एक नवीन व्यक्ति से परिचय कराऊँ, ये पं० तोताराम जी हैं, हिरनगऊ के रहने वाले हैं और ये फिजी से लौट के आए हैं।' मैंने कहा– "पंडितजी आप अपना हाल लिखाइए, लिख दीजिए।" तो उन्होंने कहा कि– 'लेखक तो मैं हूँ नहीं, कोई लिख दे तो मैं बोल के बता सकता हूँ।' तो मैंने कहा कि– 'यह काम, यह सेवा, मुझसे आप लीजिए।' तो इसी मोहल्ले में एक मकान है कोई सौ गज की दूरी पर। उसमें 15 रोज वह आते रहे और दरअसल मुझको कई बार उनके अनुभवों को लिपिबद्ध करते हुए रोना पड़ा। इतनी कठोर परिस्थिति में से उन्हें गुजरना पड़ा था। तो 15-20 रोज में वह किताब "फिजी द्वीप में 21 वर्ष", क्योंकि मैं फर्रूखाबाद गवर्नमेंट हाई स्कूल में टीचर था, अपना नाम तो दे नहीं सकता था, उन्हीं के नाम से लिखी। वह किताब इतनी मशहूर हुई कि उसके चार संस्करण हिन्दी में हुए। चार डिफरेंट अलग-अलग आदमियों ने, गुजराती में उसके अनुवाद करा कर के फिजी लेते गए थे और अभी सन् 1980 में एक किताब प्रो० टिन्कर हैं लंकास्टर युनिवर्सिटी के "न्यू टाइप ऑफ स्टावरी" उनकी किताब छपी है।

तो मुझे इसकी स्वप्न में भी कल्पना न थी कि वह किताब इतना असर डालेगी। वह प्रवासी भारतीयों के बारे में मेरी पहली पुस्तक थी। तो 14 से 18 तक प्रवासी भारतवासी लिखी और फिजी की समस्या लिखी, फिर फिजी की एण्ड्रयूज की पीयर्सन की रिपोर्ट थी उसका हिन्दी अनुवाद छपाया। करीब 22 बरस तक मैं प्रवासी अंक, "चाँद" का प्रवासी अंक "विशाल भारत" का प्रवासी अंक, गुजराती "नवजीवन" का प्रवासी अंक . . .। बाईस वर्ष मेरे जीवन का यह मुख्य उद्देश्य था और 1924 में केनिया, यूगांडा, टांगानिका, जंजीबार इन चार जगहों की यात्रा करने का मौका मुझको कांग्रेस ने दिया और उसके बाद कोई मौका विदेशयात्रा का प्रवासी भारतीयों के पास जाने का नहीं मिला। हाँ, रूस दो बार मैं जरूर गया।

प्र०: तो संभवतः आपके मन में यही भावना जागृत हुई होगी कि प्रवासी भारतीयों का आप काम करें तो विदेश जाने का भी मौका मिल जाएगा, और कुछ इससे धनराशि भी प्राप्त होगी?

उ०: धनराशि का कभी मेरे मन में आकर्षण नहीं रहा। मैंने इसमें जो इन्वेस्ट किया है, जो कुछ पैसा बचता

था खर्च करता रहा और मुझे यह कल्पना भी नहीं थी कि कभी मौका मिलेगा। और इस देश में गरीब वर्कर को कोई मौका-वौका मिलता नहीं। और मैंने जब छोड़ा था, उसकी एक कथा है कि मुझको 25 रुपये महीने कांग्रेस से मिलते थे फॉरेन डिपार्टमेंट से। फॉरेन डिपार्टमेंट की स्थापना का प्रस्ताव कानपुर की कांग्रेस में मेरा ही था और मिसेज नायडू प्रधान थीं। 25 रुपये महीने मिलते थे वो 25 रुपये ढाई बरस मिले। वह भी जब बन्द कर दिया गया तो एक्चुअली मुझको रोना आ गया, और जिसके लिए मैंने डेली इन्दौर की नौकरी छोड़ी थी, जीवन के इतने बरस लगाए थे, उसके लिए कांग्रेस ने 25 रुपये नहीं दिए। तो मेरी शायद कमजोरी थी। आर्थिक स्थिति शायद कांग्रेस की ठीक नहीं रही होगी। लेकिन मैंने छोड़ दिया काम और फिर शहीदों, क्रांतिकारियों का काम ले लिया और 40 बरस उसमें लग गए।

प्र०: दादाजी एक बात है, गाँधीजी की प्रेरणा से आप फीजी और कहाँ गए थे ?

उ०: ईस्ट अफ्रीका जो गया था। वह तो हुआ ये था कि एक वर्किंग कमेटी की मीटिंग थी। गाँधी जी तो जेल में थे। तो वहाँ पर कौंडा वैंकटपैया प्रधान थे और लोग थे, सब लोग ठहरे हुए थे। तो मेरा नाम किसी ने लिया कि इनको ईस्ट अफ्रीका भेजा जाए। तो जार्ज जोजफ जो थे एडीटर "इंडिया" के उन्होंने कहा– कि बनारसी दास वाज नोट ऐ मेम्बर ऑफ दि कांग्रेस एण्ड डस नोट वांट टू बी०कॉम इवन। हाव कैन ही रिप्रजेंट दि कांग्रेस? तो प्रपोजल जो है वह ड्राप हो गया।

राजगोपालाचारी जी के पास गया। तो राजगोपालाचारी जी ने यह कहा था "यू आर कन्डेमिंग अस इन दि प्रेस" अखबारों में लेख मेरे अंग्रेजी अखबारों में छप जाते थे। प्रवासी भारतीयों का विषय ऐसा था जिसके कारण मैं अंग्रेजी जनता के सामने भी पहुँच गया।

1919 से मैं अंगेजी में भी लिखने लगा था। पचासों लेख अंगेजी अखबारों में लिखे थे। तो हिन्दू भी छाप देता था। तो मैं माफी मांगने के लिए गया राजगोपालाचारी जी के पास कि– "मुझे माफ कीजिए। मेरा स्ट्रोंग फीलिंग था इसलिए ऐसी बात कर गया।" बोले कि– "तुम जाते क्यों नहीं ईस्ट अफ्रीका?' मैंने कहा- "मैं तो मेम्बर भी नहीं कांग्रेस का।" बोले इससे क्या होता है और कौंडा वैंकटपैया से कहा कि इस आदमी ने 10 बरस 1924 की बात है, लगा दिए हैं प्रवासी भारतीयों के काम के लिए। इनको 500 रुपये ग्रांट कर दिए जायँ। . . . जोजफ लेकर चले गए। अब हमारे पास एक पैसा भी नहीं था और जब हम पहुँचे बॉम्बे तो मिसेज नायडू के पास गए। उन्होंने कहा कि– 'मैं तो जा रही हूँ उनसे जो पैसा लाए थे महाशय एम. ए. देसाई वह जरा स्वभाव के ऐसे ही थे, वो पीने मे खर्च कर दिया। तो नतीजा यह हुआ कि 100 रुपये उधार लेकर के जमनालाल बजाज की बाड़ी से, जमनालाल बजाज के मुनीमों से सौ रुपये लेकर के डैक की यात्रा मुझे करनी पड़ी। डैक में तकलीफ होती है यात्रा की। अखबारों में छप गई ये बात। फिर मैंने स्वंयं ही रोका। मैंने कहा यह तो प्राइवेट बात है। कोई बात नहीं है। तो केनिया, यूगांडा, टांगानिया, जंजीबार चारों जगह घूमने का मौका मुझे मिला। अच्छा साउथ अफ्रीका भी जाने का विचार था और दो हजार रुपये पं० जवाहरलाल जी ने टेलीग्राफिक मनीआर्डर से मुझको भेजे थे। लेकिन मिसेज नायडू जो थीं, उनका कसूर नहीं था,उनको हाइली ड्रेस्ड आदमी ज्यादा पसंद थे। तो उन्होंने मुझसे कहा कि "यू आर नाट् वेल एक्यूपट फॉर इट।" तो मैंने कहा कि- 'मेरे पास दो हजार रुपये पंडित जी ने भेज दिए हैं, चाहूँ तो मैं ड्रेस बना लूँ। लेकिन आइ एम फीलिंग होम सिक", मैं घर जाऊँगा। तो मैं लौट गया। अच्छा यह बात सर्वेंट्स आफ इण्डिया सोसायटी के एडीटर गोविन्द बझे ने किसी को लिख भेजी। वह लेटर सर्कुलेट हो गया। उसमें यह ध्वनि निकलती थी कि मिसेज नायडू ने जानबूझकर ऐसा

दुर्व्यवहार इनके साथ किया। तो जब मैं आने वाला था तो महात्मा जी ने देवदास से कहा कि- "उसको सीधे यहाँ लाओ।" और मैं उनके पास गया तो बोले- "नाट ए वर्ड अगेंस्ट मिसेज नायडू" मैंने कहा कि- "मैंने तो उनकी तारीफ में एक लेख नैरोबी से भेजा था। बोले- "बहुत ठीक किया।" उन्होंने कहा कि भई तुम दोनों ही इम्पेकेवल स्वभाव के आदमी हो इसलिए मैं तुम्हें जब चाहूँगा विदेश भेज दूँगा, अच्छा किया तुमने लेख उनके बारे में लिखा। और जो मिसेज नायडू की चिट्ठी मैंने छापी है, तो मैं उसको दोष नहीं देता। असल में विदेश जो यात्रा करे उसको ड्रेस वगैरह के बारे में बहुत सावधान रहना चाहिए। हम एक कोट-पजामा मामूली पहने हुए थे। ईस्ट अफ्रीका में लोग वेल ड्रेस्ड रहते थे।

प्र०: आपका पत्रकार जीवन किस प्रकार प्रारंभ हुआ?

उ०: 1910 में मैंने सम्पादक ज्योति शर्मा के दर्शन किए थे। 1912 में मेरा प्रथम लेख "स्वावलम्बन" नवजीवन में छपा था। "नवजीवन" एक अखबार था जिसे केशवदेव जी शास्त्री बनारस से निकालते थे। केशव देव शास्त्री को लोग बिलकुल भूल चुके थे। अच्छे सम्पादक थे, स्वामी सत्यदेव ने अपनी जीवनी में उनका जिक्र किया है। पहले कुछ क्रांतिकारी मूवमेंट में रहे थे। वह छोड़छाड़ के बनारस पहुँच गए थे तो "नवजीवन" में मेरा सर्वप्रथम लेख 1912 में छपा था। इसको पूरे 72 वर्ष हो गए। लेकिन जिसे पत्रकारिता का प्रारंभ कहना चाहिए वह "फिजी द्वीप में 21 वर्ष, " से ही हुआ। हाँ, " फिजी द्वीप में 21 वर्ष की चर्चा मैंने की है और 22 वर्ष तक मेरा कार्य प्रवासी भारतीयों के लिए ही था। एक आदमी से किसी ने पूछा था, अनुभवी पत्रकार से कि पत्रकारिता में प्रवेश कैसे किया जाए? उन्होंने कहा- "थ्रू स्पेशलाइजेशन"। किसी विशेष अध्ययन के द्वारा।

मैंने दिन-रात प्रवासी भारतीयों की चिंता करनी शुरू की और पूरे 22 बरस उन्हीं के ही काम में लगा रहा और क्योंकि इस विषय पर लिखने वाले थोड़े थे, दीनबन्धु एण्ड्रयूज वगैरह ही थे, तो लेख मैं 1919 से ही अंग्रेजी में भी लिखने लगा।

एक थे विश्वनाथ प्रसाद जी जो "लीडर" के मैनेजर थे। वह भी बहुत अच्छे अंग्रेजी के लेखक थे। मैं जाता था तो उन्हीं के पास ठहरता था। कृष्णराम मेहता को यह शौक था भोजन कराते थे। कोई भी आदमी जाए तो जाते थे सप्रू के यहां ठहरते थे लेकिन भोजन करते कृष्णराम मेहता के यहाँ। तो मैं "लीडर" में लेख लिखने लगा।

1919 में फिरोजाबाद के नजदीक मक्खनपुर में रेल का एक एक्सीडेंट हुआ था, उसमें बहुत आदमी मारे गए थे तो मेरा प्रथम लेख अंग्रेजी में 1919 में छपा और बराबर मैं अंग्रेजी में लिखता रहा, बहुत से लेख लिखे और चिंतामणि जी की कृपा थी। उन्होंने कहा- कि हिन्दी के जो एडीटर्स हैं, लेखक हैं उनके बारे में तुम हमारे लिए लिखो चिंतामणि जी बड़े प्रोत्साहन देने वाले आदमी थे। उनके लड़के बालकृष्ण राव के मैंने "विशाल भारत" में लेख छापे थे। तो चिंतामणि जी की चिट्ठी आई थी "माइ सन बालकृष्ण राव हैज बिगन टू राइट पोएट्री, विल यू प्लीज सी इज एनीथिंग इन देअर इन ऐम, एंड इफ एनीथिंग पब्लिश्ड" तो मैंने चिंतामणि जी को बधाई दी। उनकी बहुत-सी कविताएँ छापीं। तो चिंतामणि जी बड़े ही उत्साह प्रदान करने वाले आदमी थे। उन्होंने "प्रवासी भारतवासी" मेरी पुस्तक पर लीडिंग आर्टिकल निकालना शुरू किया, जो बड़े गौरव की बात थी।

प्र०: और वह भी चिंतामणि जैसे।

उ०: चिंतामणि जी जैसे महान। अच्छा मजाक करने का जो उन्हें शौक था। एक बार कलकत्ते गए हुए थे लार्ड लीथियन कमेटी में मीटिंग थी। तो मीटिंग में मुझसे कहा "डू यू नो हू इज यूअर ग्रेटेस्ट एड्माइरर?" मैंने कहा– "आई डोन्ट नो।' बोले- "माइ सन बालकृष्ण राव, बट नोट ग्रेटर देन माईसेल्फ।" अच्छा, उन्होंने बराबर जो है मुझको प्रोत्साहित किया। 6 रुपये कॉलम लीडर से मिलता था और 6 कॉलम तक छापने की उनकी हमारे लिए अनुमति थी। तो 36 रुपये महीने की आमदनी उन दिनों एक अच्छी आमदनी मानी जा सकती थी, मुझको लीडर से होती थी। उन दिनों मैं घर में बैठा हुआ था। तो लीडर की 36 रुपये की आमदनी, जो थी बड़ी देन थी मेरे लिए। लीडर में बराबर लिखता रहा मैं।

प्र०: दादाजी, जब आप "विशाल भारत" के सम्पादक थे कलकत्ते में तब आपने एक आंदोलन जिसको घासलेटी साहित्य कहा था, वह चलाया था और उसमें शायद जो अंग्रेजी की कोई पुस्तक थी उस पर . . .।

उ०: चाकलेट।

प्र०: उसमें शायद गाँधीजी को भी आपने पत्र लिखा था।

उ०: जी हाँ।

प्र०: जरा उस प्रकरण को बताएँ।

उ०: हुआ ये कि मैंने अपने छोटे भाई को लिखा कि लड़के कौन-कौन सी किताब आजकल पढ़ रहे हैं। तो उसने लिखा कि एक लड़का उसका साथी मोहल्ले का था "दिल्ली का दलाल" पढ़ रहा था। "दिल्ली का दलाल" अंग्रेजी की किताब थीं। मैंने मंगाई मुझे ठीक नहीं जंची। तो उसके बाद मैंने चाकलेट किताब मंगाईं और चाकलेट में जिस चीज ने मुझको उत्तेजित कर दिया, उसमें उन्होंने लिखा था कि तुलसीदास जी ने भगवान का, राम का जो वर्णन किया था उससे ऐसा प्रतीत होता है कि वह भी अप्राकृतिक यौनाचार के दोषी रहे होंगे। ये बड़ी भद्दी बात ऐसी लिखी थी। तो मैंने उस पर एक लेख लिखा। गाँधी जी ने मुझे जो चिट्ठी लिखी जो कि मैंने छपाई थी, कि "जो आप पर प्रभाव पड़ा है, मुझ पर नहीं पड़ा।" लेखक ने अनाचार के विरुद्ध घृणा उत्पन्न करने की कोशिश की है। तब मैं मिलने के लिए वहाँ से कलकत्ते से वर्धा बापू के पास गया था और जितने गंदा साहित्य के कटिंग मैंने रख छोड़े थे वे सब एक थैले में लेकर के गया था और उन्होंने कहा कि- "देखो एक घंटे में तुम्हें जो कहना हो कह दो। जो आदमी एक घंटे में नहीं कह सकता वह जिन्दगी भर नहीं कह सकेगा।" मैंने कहा- "जरूर कह दूँगा। तो मैंने तमाम परनाला गंदगी का खोल दिया और उनको सुनाना शुरू किया।" एक कृष्णकांत मालवीय की किताब थी- "सुहागरात।" उसमें एक वाक्य आया था संसार भर की स्त्रियों के मदभंजन करने का उपाय यह है अश्विनी मुद्रा सिद्ध कर लें। अच्छा ऐसे बहुत से फालतू वाक्य थे। तो इस तरह सुनाया। अच्छा एक माधुरी में चित्र छपा था औरत झूलाझूल रही थी, और नीचे छपा था, (रंगीन तस्वीर थी) रति विपरीति . . . । तो बापू ने कहा– "यह रति विपरीत क्या बला है? मैंने कहा– "बहुत गंदी चीज है। ये मैं आपको बताऊँगा नहीं।" तो ये सब चीजें सुन कर के बापू ने कहा कि- "मुझको पता नहीं था कि-" हिन्दी में इतना गंदा साहित्य निकल रहा है।"

तो उसके बाद कांफ्रेंस हुई थी राष्ट्रभाषा कांफ्रेंस-कांग्रेस के साथ कलकत्ते में-वह एक प्रस्ताव लाने

वाले थे। तो मैंने कहा कि प्रस्ताव मत लाइए। इन बंगालियों के सामने फिजूल बदनामी होगी। गाँधी जी पक्ष में आ गए थे। घासलेट के विरोध में जो मेरा मत था उससे सहमत थे। लेकिन मैंने चाकलेट के बारे में उनसे बहस नहीं की। उन्होंने कहा जो लिख दिया है वह लिख दिया है। तो इतने नाराज हो गए थे हमारे उग्र जी कि उन्होंने अशोक जी से कहा था कि- "मुझे मिल जाए तो मैं उनके जूते लगाऊँ। तो पुराने जूते वह बस्ते में साथ में रखते थे।

अच्छा तो एक मुझे समर्थन मिला था सम्मेलन का भी। सम्मेलन में प्रस्ताव गोरखपुर में पास करा लिया था और इसके साथ ही जो है प्रेमचन्द जी ने लिखा था कि इसका, दुराचारी का मोहक वर्णन जो है वो दुराचारों के प्रति प्रेरणा उत्पन्न करता है। अच्छा इसकी एक कहानी भी चेखव की अक्सर कहा करता था।

चेखव ने एक कहानी लिखी थी कि एक साधु-संन्यासी बड़े नगर से 15-20 मील दूर आश्रम में रह रहे थे। तो वहाँ कुछ नगर के आदमी पहुँचे, कहने लगे कि- "देखिए आप तो प्रलोभनों से दूर रहते हैं, हमलोग अनेक प्रलोभनों में फँसे रहते हैं तो हमारे यहाँ चलिए।" तो साधुजी छोड़ के अपना आश्रम शहर को आए और यहाँ शहर में जो दुर्दशा देखी उन्होंने, तो भागकर के अपने आश्रम में पीछे पहुँचे और किवाड़ बंद कर लिए और रोने लगे। तो उनके असिस्टेंट साधुओं ने कहा कि- "रोते क्यों हैं?" तो उन्होंने वर्णन करना शुरू किया कि– "ऐसी खूबसूरत औरतें थीं, उनके अंग ऐसे थे, लाल-लाल चीज पीती थीं, ऐसा मनमोहक वर्णन किया कि असिस्टेंट साधु भी आश्रम छोड़ के शहर को भाग गया। तो असल में अनाचारों का जो मनमोहक वर्णन है, वह भी बहुत गलत चीज है।

प्रेमचन्द जी ने यही समर्थन किया कि कोई चोर कहे कि मैंने ताली इस तरह डाली ताले में, यह तरकीब की, चोरी करने की आदत पड़ जाएगी। तो घासलेट विरोधी आन्दोलन जो मैंने किया वह ढाई बरस चला। लेकिन उसका मेरे मस्तिष्क पर भी कोई खराब असर नहीं पड़ा। सजनीकांत दास हमारे विशाल भारत, मॉडर्न रिव्यू ऑफिस में वहां के प्रेस में काम करते थे। तो मैंने "अबलाओं का इंसाफ" नामक किताब उनको पढ़ने को दी। अबलाओं का इन्साफ रामगोपाल मेहता के, जो समधी होते थे हमारे बिरला जी के, वह उनकी लिखी हुई थी। वह बहुत गंदी किताब थी। तो सजनीकांत दास ने कहा कि अश्लील साहित्य तो बंगला में भी है लेकिन हिंदी के अश्लील साहित्य के मुकाबले में हमारा साहित्य तो पूर्ण ब्रह्मचर्य है। तो बहुत गंदी चीजें निकलती रहीं। ढाई बरस तक वो आंदोलन चला। उसके बाद मैंने उसे बंद कर दिया, लेकिन अब जो हालत है– सच्ची कथाएँ निकलती हैं, वे और भी खराब हालत में हैं।

प्र०: और फिल्में?

उ०: जी हाँ, फिल्में।

प्र० जो आपने कहा कि फिल्मों में चोरी करते हैं, अपहरण करते हैं, डाके डालते हैं। दादाजी, एक बात और पूछना चाहता हूँ 'विशाल भारत' में ऐसे कई साहित्यकारों को प्रकाश में लाए आप जो बाद में अब बहुत बड़े-बड़े साहित्यकार हो गए। उन की कुछ चीजों के बारे में जैसे-अज्ञेय . . .।

उ०: हाँ, विशाल भारत ने कई साहित्यकार दिए। एक हजारी प्रसाद द्विवेदी, सत्यवती मलिक, कमला चौधरी, स्वयं अज्ञेय जी–ये सब विशाल भारत की देन हैं और दिनकर जी, महाकवि दिनकर जी। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने खुद कहा था कि– "जो लेख मेरे विशाल भारत मे छपे उनकी जितनी चर्चा

हुई और किसी की नहीं हुई।" द्विवेदी जी के करीब दो सौ लेटर्स मेरे पास थे। डेढ़ सौ तो मैंने जमा करा दिए अभिलेखागार में। उसके बाद 20 और भेजे। और भी निकल आते हैं। द्विवेदी जी ने, विशाल भारत के प्रति उनका जो भाव था बहुत स्पष्ट शब्दों में प्रकट किया था।

दिनकर की कविताएँ विशाल भारत में छपी थीं। मैं सन् 33 में पटना गया था तो मैंने वहाँ कहा था कि– "अगर दिनकरजी अफ्रीका में होते तो मैं वहाँ उनसे मिलने जाता।" इस कथन का काफी प्रचार हुआ और बहुत से आदमी दिनकर जी से ईर्ष्या करने लगे। दिनकर जी विशाल भारत के लिए खासतौर से लिखते थे और उनकी यह बड़ी कृपा थी।

सत्यवती मलिक उन्होंने विशाल भारत से ही लिखना शुरू किया और कमला चौधरी की भी मनोवैज्ञानिक कहानियाँ बहुत अच्छी बन पड़ी थीं और अभी एक सज्जन प्रकाशक आए थे मेरठ के, तो मैंने कहा कि उनकी किताबें क्यों नहीं छापते? बोले कि– "उनकी वहाँ बहुत अच्छी रैपुटेशन नहीं है।" बात यह है कि जो स्त्रियाँ पुरुषों से पत्र-व्यवहार करती हैं वे भी आशंका के रूप से देखी जाती हैं। कमला चौधरी बहुत अच्छा लिखती थीं और मनोवैज्ञानिक कहानियाँ उनकी हमने छापी थीं वो काफी पसंद की गई थीं।

प्र०: पत्रकार के संबंध में दादाजी अपने श्रीभाई चिंतामणि का, पंडित सुन्दरलाल, गणेश शंकर विद्यार्थी, मालवीय जी, पराड़कर जी गर्देजी इन सब की थोड़ी-थोड़ी-सी कोई और आपको याद आ रही हो कोई बात, तो बताएँ।

उ०: सी. वाई. चिंतामणि का जैसा मैंने आपसे कहा था प्रोत्साहन देने वालों में वो शिरोमणि थे। एक उनका किस्सा मुझे मालूम है। एक बहुत बढ़िया लेख मौलाना मोहम्मद अली के बारे में लीडर में छपा। तो उस वक्त लॉर्ड रीडिंग ने सप्रू साहब से पूछा कि- "इस लेख का लेखक कौन है मुझे पता लगा के बताओ।" चिंतामणि जी इतने विनम्र आदमी थे उन्होंने कहा था- "यह लेख जो है विश्वनाथ प्रसाद जो हमारे मैंनेजर हैं, का लिखा हुआ है। ही कैरीज राइट विजडम ऑन यंग सोल्डर्स।" विश्वनाथ प्रसाद अंग्रेजी बहुत अच्छी लिखते थे और मैं तो बराबर उन्हीं के पास ठहरता था, तो उनकी बड़ी तारीफ चिंतामणि जी करते।

चिंतामणि का एक किस्सा तिवारीजी ने सुनाया। तिवारी जी को बुलाया कहा कि– "इस विषय पर एक लेख लिखो। तिवारी जी ने कहा कि इस विषय में मैं तो कुछ ज्यादा जानता नहीं। तो वे बोले- "बातचीत कर रहे हैं हमलोग। बातचीत करने में इतने फैक्ट्स एण्ड फिगर्स उन्होंने दे दिए और उन्होंने कहा कि- "अब लिखो और वह लेख चिंतामणि जी का लिखाया हुआ था और उन्होंने तिवारी जी ने लिख दिया और उसकी बहुत तारीफ की है, स्वयं चिंतामणि जी ने की। चिंतामणि जी ने हजारों लेखकों को प्रोत्साहित किया था। तीस रुपये पर उन्होंने नौकरी शुरू की थी। मैंने जो लेख लिखा था, चिंतामणि जी का स्कैच लिखा था उसमें मुझको उन्होंने लिखा– "वाइव्ज आफ इमीनेंट जर्नलिस्टस वान्ट्स टु रीड प्रेजेज आफ देयर हजबैंड' नाओ लैट मी नो वाट यू हैव रिटन एबाउट मी?" तो मैंने उसमें वे सब बातें लिखी थीं। तो चिंतामणि जी दरअसल 30 रुपए पर नौकर हुए थे। मैंने 35 लिख दिया था तो उन्होंने कहा – "ये 35 नहीं 30 लिखो।" 30 लिखा मैंने। तो चिंतामणि जी का तो प्रोत्साहन देने वालों में वह शिरोमणि थे। यह चीज गणेश शंकर जी की थी। गणेश शंकर जी विद्यार्थी ने मेरे लेख 1914 में प्रताप में प्रवासी भारतीयों का लेख छापा था, बहुत-से लेख छापे थे और मुझे लिखा था कि- "दूसरों के लिए अखबार के पारिश्रमिक की रेट यह है। लेकिन तुम्हारे

लिए करेंगे।" जब मैं आउट ऑफ इम्पलायमेंट बैठा था तो उन्होंने मुझे लिखा कि- "पंडित सुन्दरलाल जी की, मेरी राय यह हुई है कि मेजर बी. डी. वामन बसु जी के साथ आप हिस्ट्री के काम में उनके सहायक होके रहिए।" और चूँकि इतिहास के बारे में मुझे ज्ञान नहीं था और मैं जा नहीं सका। लेकिन गणेशजी ने अपने पत्र में इस बात की कोशिश की थी कि मुझे काम मिल जाए।

उनके आठ पत्र (नौ थे लेकिन) आठ ही रह गए थे, जो मेरे नाम थे, वे नेशनल आर्काइब्ज में सुरक्षित हैं। द्विवेदी जी का भी यहीं था। पं० पद्म सिहं जी का भी यही था। प्रोत्साहन देने में पं० पद्म सिंह जी का नाम अक्सर आता है। उनके करीब कम से कम 500 लेटर्स मेरे पास थे। वे मैंने सब जमा करा दिए।

प्र०: उनके पुत्र को आपने प्रोत्साहित किया तो जीवनी छप गई। उनके शर्मा जी के पुत्र को आपने ही प्रेरणा दी थी?

उ०: पद्मसिंह शर्मा के . . . ?

प्र०: जी हाँ।

उ०: उनकी चिट्ठियाँ, पत्रों का संग्रह आत्माराम एण्ड संस ने प्रकाशित किया।

प्र०: आपकी प्रेरणा से वह हुआ था।

उ०: पद्मसिंह शर्मा पत्र लेखकों में शिरोमणि थे। जैसे उर्दू में गालिब हैं, हिन्दी में पद्मसिंह शर्मा थे। और मैंने एक चिट्ठी उसमें लिखी थी कि- "अरबी में कहावत है कि- "लम्बे आदमी अहमक होते हैं और चौबेजी लम्बे हैं। मेरे ऊपर ही लिखा, उन्होंने छाप दिया उसको। बहुत अच्छे राइटर थे।"

प्र०: आपने आर्यमित्र का तो जिक्र किया था पर शायद अभ्युदय में भी सम्पादकीय में आपने काम किया था कुछ?

उ०: काहे में?

प्र०: अभ्युदय में।

उ०: हाँ, अभ्युदय में, मैं 21 रोज रहा था। हुआ यह था कि कृष्णकांत मालवीय जी बीमार पड़ गए। किसी बगीची में रह रहे थे। तो मदन मोहन मालवीय जी के नाम का तार आया। हमारे पास तार तो उन दिनों कम ही आते थे। तो हम समझते थे कि सीरियसली इल, कम सून, इस तरह के तार आने की ही संभावना थी। हम समझे नहीं कि क्या हुआ। मैं चल पड़ा वहाँ और मालवीय जी चले गए थे तब तक इलाहाबाद, मैं मिला। उन्होंने कहा- "अभ्युदय का काम करो।" तो 21 रोज अभ्युदय का काम-मुझे डेली अभ्युदय का करना पड़ा। अब एक दिन तो प्रवासी भारतीयों पर लेख लिख दिया। वह हमारा विषय था। एक दिन साहित्य सेवियों की कीर्तिरक्षा पर था, वह लिख दिया। एक दिन जनपदों पर लिख दिया। तीन दिन के बाद हमारा दिमाग बिलकुल खाली। डेली पेपर्स का संपादन जो है एक बड़ा भयंकर काम है। तो 21 रोज से ज्यादा मैं वहाँ नहीं रह सका और छोड़ के चला गया।

नीर भरी दुःख की बदली : महादेवी वर्मा

आधुनिक हिन्दी काव्यधारा के रहस्यवादी भाव-चिन्तन की अन्यतम प्रतिनिधि वाणी-विन्यास के रूप में तो महादेवी जी अविस्मरणीय रहेंगी ही, अपने श्रेष्ठ सशक्त गद्य-लेखन एवं उदात्त मानवीय संवेदनाओं में अद्वितीय रचनाकार के रूप में भी इतिहास-अमर लोक-कंठहार बनी रहेंगी। आधुनिक हिन्दी, भारत और विश्व-साहित्य को अपनी महान् काव्यकृतियों से महिमा मंडित करने वाली कवयित्री महादेवी वर्मा जी ने कभी, प्रायः रेडियो के बारे में ही कहा था कि– "अतीत की बात करना ऐसा ही है जैसे चले हुए मार्ग पर फिर लौटना।" और यह मूल्यवान संयोग कम नहीं था कि कृति यश और उम्र तथा जीवन-अनुभव के उच्च शिखर पर स्थित, इस कवयित्री की कई दिनों तक घंटों रिकार्डिंग करने में हमने सफलता पाई। उसी लम्बी ऐतिहासिक धरोहर-रिकार्डिंग के कुछ एक प्रसंग यहाँ प्रस्तुत हैं।

यह रिकार्डिंग 17-सी अशोक नगर, इलाहाबाद में महादेवी जी के निवास पर, श्री गोपालदास (अनुभव सिद्ध ब्रॉडकास्टर तथा साहित्य मर्मी) पूर्व केन्द्र निदेशक, डॉ० राम जी पाण्डेय (साहित्यानुरागी एवं विचारक) तथा श्री नर्मदेश्वर उपाध्याय (कवि एवं श्रेष्ठ प्रसारण कर्मी) के द्वारा 18 जुलाई, 1983 ई० को संपन्न हुई थी। ❑

।।नीर भरी दुख की बदली।।

इन्दौर में एक स्मृति है हमारी, शायद हमारे जीवन को उसने प्रभावित किया। हम लोग जाकर के पहले छावनी में नहीं रहे, जगह नहीं थी। तो जहाँ जावरा के नवाब रहते थे उनके पास एक मकान मिला जिसमें रहे हम लोग। एक ही कम्पाउण्ड था। तो जावरा के नवाब की नवाबी चली गई थी, बेगम थी उनकी, दो लड़कियाँ थीं और एक लड़का था। उनसे हमारे परिवार का बिलकुल अपनो जैसा संबंध हो गया। हम उनको ताई बेगम कहते थे और उनकी लड़कियाँ हमारी माँ को चचीजान कहती थीं। और बिलकुल परिवार जैसा हिसाब हो गया। यहाँ तक कि राखी के दिन बेगम कहलवाती थी- "बहनें राखी बांधने नहीं आएँगी? भाई भूखा बैठा है। उस वक्त तक भूखा रखती थीं उसको जब तक कि राखी बांधी नहीं जाती थी। राखी बांधते थे तो हमें लहरिया मिलता था और क्या मिलता था कपड़े-अपड़े।

मोहर्रम आता था तो हरे दुपट्टा और क्या बनते थे। और कहती थीं कि उसके ताजिए के नीचे से निकाल दो बच्चों को, यह अच्छा होता है। और जब हमारा छोटा भाई हुआ, तब तो वह रोज टोपी, गोटे की बनाती थीं और कपड़े बनाती थीं, और वह कहती थीं माँ से- "दुल्हन देखो, जिसके ताई चाची नहीं होती हैं; वह माँ अपने लड़के को पहनाती है, और जिसके ताई-चाची कोई होती है, तो वह बना कर देती है। छह-छह महीने बच्चे और कोई कपड़े नही पहनते—अपनी ताई के, अपनी चाची के पहनते हैं। तब हमारी माँ कहती थी- "अच्छा।" बाबूजी भी रहते थे और हमारे यहाँ कढ़ी-बढ़ी बनती थी। तो उनकी लड़की,एक का नाम था पाल्सा बेगम, एक का आफताब बेगम। तो आ कर कहती थी- "चची जान अब्बा हुजूर भूखे बैठे हैं, कहते हैं- "तुम्हारी चची जान ने जरूर कढ़ी बनाई होगी, तो जाओ कटोरा ले के मेरे लिए ले आओ और दस्तरखान बिछाओ।"

तो उस परिवार ने एक प्रकार से साम्प्रदायिकता जो थी वह हमारी समाप्त कर दी। हमें यह बोध ही नहीं हुआ। और नवाब साहब को पाला था एक धाय ने। उनको अण्णा जी कहते थे। वो अन्धी हो गई थीं। अच्छा, वह इतना चाहती थीं हमको कि हम लोग जब चले गए छावनी में तो देखने आती थीं, और अंधी थी तो हम उनसे पूछते थे- "अण्णाजी कैसे आईं। तो कहा- "बेटी तुमको देखने आई।" तो हमने कहा- "आपको तो दिखता नहीं है। "कहने लगीं- "नहीं मुझको अन्दर की आँखों से दिखता है।" पहले यह लगा कि अन्दर की भी आँखें कुछ होती हैं। यह अंधा आदमी कैसे देखता है। उनसे फिर पूछा आप बिलकुल मुझे देख लेती हैं। कहा— "हाँ बिटिया, मैं देख लेती हूँ और छू लेती थीं। कहती मैं बिलकुल देख लेती हूँ। कैसी हो तुम, मुझे पता है। तो हमने पूछा पहले अपनी माँ से कि— अण्णाजी कहती हैं कि अंधे हम हैं पर तुम्हें देख लेते हैं। तो उन्होंने कहा कि— हाँ जरूर। देखो मैं फिर से सूरदास के पद गाती हूँ सूरदास देखते थे कि नहीं? आँखें नहीं थीं लेकिन दिखता था। यानी दो अनुभव ऐसे हुए कि जो बिलकुल नए-नए थे अपने हिसाब से।

अब जब हम लोग छावनी में आए तो हमारा कोई साथी नहीं। राजकुमारों ने हमें एक कुत्ती दे दी। उसका नाम था रोजी। और एक नेवला हम को मिल गया था घायल था ले आए तो उसे बत्ती बना के दूध-वूध पिलाया। पिता जी कहते थे कि– "बच्चों को कोई 'पेट' देना चाहिए। कोई पशु-पक्षी जो उसकी पूरी देखभाल करे और उनके मन में एक स्नेह उनके लिए हो। ऐसा नहीं होने पर ठीक नहीं होता। 'तो वे तो प्रसन्न हुए और उनको अपने-आप अच्छे लगते थे पशु-पक्षी। तो हम अपनी कुत्ती को, नेवले को लेकर के सब आनन्द से रहते थे। और बाहर पेड़ थे, झाड़ियाँ थीं, आम थे और बया के घोंसले थे। हमने पहले नहीं देखे। उल्टे लटके हुए। वे ही हमारे साथी हुए समझिए और पेड़ पौधे। तो उसको हर समय देखते, कहाँ से जाती है, कहाँ से आती है। हर समय। और बिलकुल लगता था जैसे साथिन है।

वहाँ हमारा रामा एक सेवक था। वह हमारी बड़ी चिन्ता करता था। और कभी-कभी हम दोनों के कान भी खींचता था। लेकिन वह हमारा गुरू था। आदि गुरू वह ही थे राम, रामा से खूब बातें होती थीं। तो वह हम लोगों को डाँटता भी और बहुत चाहता था, और हम लोग उसी के काबू में रहते थे। अब हमारी माँ क्या करती थी, हम छह बरस के होंगे कि सवेरे नहा के पूजा करती थीं- पाँच बजे। तो सरदी के दिनों में हम को नहलाकर के बिठा लेती थीं, पूजा पर। हम इतने बड़े थे उनके हिसाब से कि पूजा करें। बड़ी ठंड लगती थी। तो हम ने रामा से कहा कि- "रामा यह बताओ कि ठाकुरजी भी कहें कि ठण्ड लगती है, तो माँ जरूर ध्यान देंगी। हमारे कहने से यह मानती नहीं। तो रामा ने कहा कि– "ठाकुर जी क्या बोलते हैं? "ठाकुर जी क्या गूंगे हैं? हमने कहा वे तो भगवान जी हैं हमने कहा भगवानजी क्या गूंगे हैं, तो हम लोग उनसे बात कैसे करते हैं। जो बोलता नहीं हैं उसकी बात कैसे समझें। खैर अब हमने उनसे कहा कि नहीं भगवान सब समझते हैं, लेकिन बोलेंगे नहीं। भीतर बोलते हैं। फिर आगे चल कर हमने एक बार लिखा भी। अब हम तो बैचैन होने लगे कि क्या करें। तो तुकबन्दी की कि:

ठण्डे पानी से नहलाती
ठण्डा चन्दन इन्हें लगाती
इनका भोग हमें दे जाती
फिर भी कभी नहीं बोले हैं
ठाकुर जी कितने भोले हैं।

तो यह हमारी पहली तुकबन्दी है। एक कविता हो गई।

प्र०: यह किस उम्र में लिखी गई होगी?

उ०: यह छह बरस की उम्र में, उससे ज्यादा नहीं थी।

प्र०: और पहली कविता यह खड़ी बोली में ही लिखी?

उ०: हाँ। बात यह है कि पंडित जी आए तब यह मालूम हुआ कि कविता होगी ब्रज भाषा में। उसके पहले तो जैसे बोलते थे ऐसी ही करते थे। फिर सोचा कि अब कुछ और लिखें। तो लिखते तो थे नहीं बस यह तुक मिलाते थे। लिखना आता ही नहीं था उस समय तक। तो हमने कहा अपनी "बया" पर भी लिखें। तो दूसरी तुकबन्दीः

बया हमारी चिड़िया रानी
तिनके चुन-चुन महल बनाती

और उलटा पेड़ों पर लटकाती,
खेतों से दाना ले आती,
नदियों से लाती है पानी।

अच्छा हो गया। फिर और आगे कहना चाहिए–

तुझको दूर न जाने देंगे, दाने से आंगन भर देंगे,
और-अपने हौज में भर देंगे हम मीठा-मीठा पानी।

इतना हो गया। फिर भी अभी पूरा नहीं हुआ। रामा को सुनाया - "कैसी कविता है? "कविता भी जानते नहीं थे। तो रामा ने कहा, "हाँ, हाँ ठीक है।" फिर वह अण्डे देती है, फिर सेती है, फिर बच्चे होते हैं। वे उड़ जाते हैं। यह ज्ञान तब हुआ। तो फिर हमने लिखा कि -

तू अण्डे सेएगी (हंसी)
निकलेंगे नन्हें बच्चे तब,
हम सब आयेंगे बारी-बारी से
करने को तेरी निगरानी।

उसके बाद अन्त में जोड़ा कि -

फिर जब उनके पर निकलेंगे,

यह तो रामा ने बता दिया ।

जब उनके पर निकलेंगे।
उड़ जांएगे, क्या बनेंगे।
हम तब तेरे पास रहेंगे।
तू रोना मत चिड़िया रानी। (हसंते हुए।)

प्र०: कविता पूरी हो गई।

उ०: कविता पूरी हुई। अब तो हमारी माँ ने देखा यह तो मामला कुछ न कुछ गड़बड़ करती है। तो उन्होंने बाबूजी से कहा। तो बाबूजी से उन्होंने कहा कि- "पंडित कोई रख दीजिए। अच्छा, तो इनको हिन्दी पढ़ा दें। और कुछ, क्योंकि यह तो बहुत कुछ जोड़ती रहती है। और वह सवेरे ही उठ के :

"जागिए कृपा निधान पंछी बन बोले।"

प्र०: मूल प्रेरणा वहीं से मिली?

उ०: और लोरी भी, शाम को सोते वक्त भगवान को सुलाने में गाती थी और उठाने में गाती थी।

प्र०: लोरी याद है आपको उनकी?

उ०: उनकी, वह तो भगवान को सुलाती-जगाती थीं। हम लोगों को तो नहीं सुलाती थीं। लेकिन पूरी तरह कुछ याद नहीं है। तो अब पंडितजी आए। पंडितजी आए तो उन्होंने घुटाई शुरू की। अलंकार, पिंगल, यह मात्रिक है, यह वर्णिक है।" तब हम आठ-नौ बरस के हो गए थे। वह हमको बताने लगे– "कविता ऐसी होगी, इस भाषा में होगी, उस भाषा में होगी। बड़ी उलझन लगती थी। लेकिन फिर वह हमारे काम आया बहुत। उन्होंने जो हमको रटा दिया। उससे हमारे कानों में बड़ी जल्दी खटकता है अगर कुछ ऐसा हो, यति भंग हो, कुछ मात्रा की कमी हो, तो तुरन्त हमारे कान में खटकता है। तो पंडित जी एक समस्या दे जाते थे। तब हम आठ साल के या नौ साल के हो गए। पंडित जी ने एक समस्या जो दी कि कठिन है वह तो "फूलयो"

बांधे मयूखन की डोरिन से।
किसलय के हिंडोरन में नित झूलयो।

फूल से कह रहे हैं। फूल पर यह हमारी पहली कविता है। तो उन्होंने हमको बता दिया– "किरणों को मयूख कहते हैं। हाँ, ठीक है। अब दूसरों से हमारा ज्ञान कुछ अधिक हो ही गया था, पढ़ाने से उनके। वह भी कोई उपाध्याय थे। क्या उनका रामचरित कुछ ऐसा ही नाम था।

जब हम 78 बरस के हैं तो वे सौ बरस के हो गए होंगे। तो हमने लिखा :

बांधे मयूख के डोरिन से,
किसलय के हिंडोरन में नित झूलयो।
शीतल मंद समीर तुम्हें
दुलराय, अंक लगाए कबूलयो।
रीझियों भोंरन के गायन पे,
तितली के नरतन पर बन भूलयो।
फूल तुम्हें तब ही कहें जब
कांटन में धंस के हंस फूलयो।

प्र०: वाह-वाह। चुनौती यहाँ भी है। चुनौती का श्रीगणेश हो गया।

उ०: तो यानी हमारे पंडितजी तो बड़े प्रसन्न हुए। कहने लगे– "आहा कैसी नई बात सोची। आज हमको लगता है कि हमारा विश्वास कहीं से खंडित नहीं हुआ। हम अब भी मानते हैं जो बिना संघर्ष के चलता है, वह चलता नहीं है। जो फूलों पर चलता है, कालीन पर चलता है, वह नहीं चलता। चलने के लिए अपने पैंरो से कांटे तोड़ने होंगे। तो कहाँ तो हम इतने छोटे थे। लेकिन हमने कहा : फूल तुमको तब कहेंगे जब "कांटन में धंस के हंस फूलयो।" इसके बाद इतने बरसों में हमने दूसरी बात नहीं कही। जब कहा है तो वही कहा है कि संघर्ष से बचो मत, कष्ट से मत बचो। कोई उसमें, मखमल में बीज तो नहीं उगाता है। बीज तो धरती के अंधकार में गलेगा, तब ही उगेगा। तो वह बड़े प्रसन्न हुए हमसे। तो यह हमारा पहला छंद है।

प्र०: ब्रजभाषा का?

उ०: और फिर आगे चले तो फिर। पंडित जी एक हमको समस्या दे गए– "बोले नाहिं"। तो उन्होंने बताया कि राधा कृष्ण से बांसुरी मांग रही हैं, वह नहीं देते हैं। वह नहीं देंगे तो नहीं बोलेंगी। अच्छा अब हम लिखने बैठे, लिखने बैठे तो हमने बिलकुल दूसरी बात लिख डाली। हमने लिखा :

मन्दिर के पट खोलत का,
यह देवता तो ह्रदय खोलिए नाहिं।
अक्षत फूल चढ़ाओ भले,
हरसाए कबहों अनुकूलिए नाहिं।।
बेर हजारन शंख हैं फूंक,
ये जागिए ना और डोलिए नाहिं।।
प्राणन में नित बोलत है,
पुनि मन्दिर में यह बोलिए नाहिं।।

अब हमने यह कह तो दिया और पंडितजी इसपर नाराज हुए। उन्होंने कहा– "बहूजी देखिए आप कितनी पूजा कराती हैं और यह बिटिया ने पूजा के खिलाफ लिखा है।" तो उन्होंने पूछा कि– "यह

क्यों लिखा है? हमने कहा हमें मालूम नहीं क्यों लिखा है, हमने लिखा है। "मंदिर के पट खोलत काहे, देवता तो हृदय खोलिए नाहिं।" तो इसमें पंडितजी बहुत नाराज हुए। लेकिन अब क्या करते। देखिए हम कहते हैं न कि नियति अपने आप होती है। अब इतने दिनों के बाद भी हमने लिखा तो :

'क्या पूजा क्या अर्चन रे।'

वह उस दिशा में हम गए नहीं। हालांकि देखिए हमारी माँ की स्मृति है। कितनी मूर्तियाँ हम रखते हैं, हमें अच्छा लगता है, ये प्रतीक अच्छे लगते हैं। लेकिन हमारे अपने ध्यान में जो आती है वह दूसरी बात है। तो कभी-कभी ऐसा भी होता है कि हम किस दिशा में जाएँगे यह एक नियति है हमारी।

देखिए हमारे युग में कितने आन्दोलन हुए। कविता को लेकर कितने आंदोलन हुए। छायावाद था ही और बहुत सम्पन्न विधा थी। हमारे साथी सब वही लिखते थे और देखिए उसके बाद प्रगतिवाद आया, पूरे जोर से शंखनाद करता हुआ, तूर्य बजाता हुआ। वह भी समाप्त हुआ। और देखिए प्रयोगवाद आया तो उसकी कितनी ख्याति रही। और उसके बाद देखिए अब नई कविता आई, फिर नवगीत आया और न जाने न कहीं नकेनवाद तक कितने वाद आ गए, लेकिन हम कहीं इधर-उधर हुए नहीं। वहीं हैं जहाँ थे। तो हमें लगता है कि हमको वही लिखना था, और कुछ हम लिख ही नहीं सकते थे। तो दर्शन भी बना था, दिशा भी बनी थी, रास्ता जरूर हमने अपने आप बनाया और बड़ा विकट बना है। फिर इसके बाद यह हुआ, यानी हम बहुत छोटे थे, नौ बरस के। तो बुद्धू तो थे हम। हमारे बाबा बीमार हुए, अब बाबा को यह सूझा कि भई कन्या की तो हमने प्रार्थना की थी कन्या हो गई, तो दान करो इसका। हमने कहा आदमी का दान कैसे करते हो?

हमने हर एक से यह कहा आप दान नहीं कर सकते। क्या वह सम्पत्ति है, जो आप दान कर दें? जीवित व्यक्ति का दान आप कैसे करेंगे? लेकिन उस वक्त यह था। तो बाबा ने कहा कि- " भई, हम तो कन्यादान करेंगे। "अच्छा"। हमें अपने आप कुछ याद नहीं है ज्यादा। तो यह हुआ कि हमारी बारात-वारात आई। तो हम सब जाकर के बारात में देखने लगे। आनन्दपूर्वक। हमारे मामा ढूँढते-ढूँढते गए, हमें पकड़ कर ले आए। फिर कहा खाना नहीं है आज? तो हम मिठाई के घर में घुसे और जितनी खा सकते थे उतनी खाई और खाकर सोने लगे। अब सोने लगे, तब उठा कर हमें लगता है नायन ने या किसी ने हमको चक्कर कराए होंगे। क्योंकि हम सो ही रहे थे। और बहुत दुबले-पतले थे बचपन में, मोटे नहीं थे। तो चक्कर-अक्कर कराए उन्होंने। फिर उसके बाद जब सवेरे नींद खुली तो देखा हमारी गाँठ कहीं बंधी है। बैठे-बैठे हमने खोल डाली। खोल कर भागे। बड़ा तमाशा हुआ। खैर, उसके बाद हमारे जो बाबा थे उन्होंने कहा- "भई देखो, लड़की-लड़के को पढ़ाना चाहिए। पढ़ेंगे ये। अभी छोटे हैं। तो यह हुआ पढ़ने लगे। तो वह डाक्टर तलक आगे पढ़ते रहे। फिर लखनऊ पढ़ते रहे और हमको वहीं पढ़ाते रहे।

हमने कहा कि हमको पढ़ने भेजिए। तो ऐसा उस समय नहीं होता था। लड़कियों को अपने परिवार के बाहर छात्रावास में भेज देना बहुत बुरा मानते थे। हमने हठ किया कि नहीं हम तो जायेंगे पढ़ने जाएँगे क्योंकि यहाँ यह था कि एक मिशन स्कूल था इन्दौर में, तो उसी में हम पहले भेजे गए। न जाने क्या-क्या पढ़ायें। और हम अपने उस नेवले को साथ ले गए।। तो ले गए तो एक बार जब क्लास में ले गए सब जितनी पढ़ाने वाली थीं शोर मचाने लगीं- "अरे इसको निकालो-निकालो।" अब हम बड़े दुखी हुए क्या करें। तो फिर हम क्या करने लगे कि उसको वहाँ तक ले जाते थे और फिर पत्तों में उसको बिठा देते थे। एक लता थी फूल वाली वहाँ बिठा देते थे। बैठा रहता था (हंसी) और फिर जब हम निकलते थे तो फिर कन्धे पर। लेकिन हम बड़े परेशान हुए कि इस जगह हम

नहीं पढ़ेंगे। तो हमने माँ से कहा कि- "यहाँ हम नहीं पढ़ेंगे। तो उसने पूछा– "क्या है?" तो हमने कहा कि यहाँ हम नहीं पढ़ेंगे। जाने क्या-क्या पूजा कराते हैं, क्या गवाते हैं, क्या कराते हैं और असल बात यह थी कि निक्की जो हमारा नेवला था, उसको घुसने नहीं देते थे। उसको देखते ही सब शोर मचाने लगते थे। तो फिर यह हुआ बाबूजी को याद आया, वह प्रयाग में रहे थे, पढ़े थे। तो प्रयाग में का, उनका मोह तो था ही प्रयाग से। तो यहाँ हमको भेजा। आए हम तो सुभद्राजी थीं, यहाँ।

प्र०: किस उम्र में आप प्रयाग आई होंगी?

उ०: अरे भाई छठे दर्जे में आए यहाँ। तो छोटे तो थे और सुभद्रा जी हमसे चार-पांच बरस बड़ी थीं लेकिन बेचारी बहुत चाहती थीं हमको। वह कविता लिखती थीं। यहाँ आकर के देखा।

प्र०: अच्छा, उनका विवाह हो चुका था।

उ०: हाँ। नहीं उनका बाद में हुआ। तो कोई जानता थोड़े ही था कि हमारा ब्याह हुआ। न हमको पता।

प्र०: लेकिन बाबा कन्यादान कर गए थे।

उ०: कोई पता नहीं था। अच्छा हुआ हम दोनों थे यहाँ। वह लिखती थीं खड़ी बोली में। ब्रज भाषा में यहाँ कोई लिखता नहीं था। तो हमने देख-देखकर उनका शुरू किया कि जब कोई नहीं लिखता तो हम कैसे लिखें। तो हम लिखने लगे। इसमें और भी कुछ वर्ष बीते। फिर उसके बाद सन् 19 में आए पन्त जी। 19-20 में।

प्र०: 1919 में अल्मोड़ा से इलाहाबाद।

उ०: और उस समय तक हिन्दी का बड़ा प्रचार होना था, होता ही था। हर छात्रावास में कवि सम्मेलन होता था। और कवि जितने थे, छोटे-बड़े तो सब गोष्ठी में जाते थे, श्रीधर पाठक के पास। वह तो बिलकुल ऐसा था कि बस गए और मानों एक कविलोक में आ गए।

प्र०: यानी उस युग की नई पीढ़ी का वही तीर्थ था।

उ०: वहीं, वहाँ पतंजी भी थे। वहाँजाती थीं सुभद्राजी भी और जितने भी थे। तो सब वहीं थे और हम भी वहीं जाते थे। तो हमारी बहुत सी कविताएँ वह देख लेते थे श्रीधर पाठक। उन्होंने बहुत सी देखी थीं। वैसे कम हमने दिखाई हैं। लेकिन कवि सम्मेलन में "हरिऔंध" जी आते थे कभी, अपनी नुकीली दाढ़ी लिए।

प्र०: रत्नाकर जी?

उ०: और कभी रत्नाकरजी आते थे गोटे की टोपी, सलमे-सितारे की टोपी लगा के। तो कुछ समझ में नहीं आता था। इतना बड़ा आदमी ऐसी टोपी लगाए हमने तो देखा नहीं था। अरे लड़कों को देखा था ऐसी टोपी लगाए। लेकिन इतना बड़ा व्यक्ति ऐसी टोपी लगाए आता था।

प्र०: असल में महाराजा अयोध्या के यहाँ रहते थे न, तो उसी भाव से जैसे महाराजा रहते थे, वह रहे।

उ०: और सभी को देखा था, उसी में देखा और जाते थे, हमें बहुत पदक मिलते थे। तो उसी में ऐसा होता था कि जब गाँधी जी आए, तो गाँधी जी पर हमने एक कविता लिखी थी। वह तो खड़ी बोली में ही है :

धरती ने पुत्र निज बनाया है कण-कण से
माटी को गूँध-गूँध ममता के पानी में।
करुणा दी सागर की, नभ का आलोक दिया

अंग-अंग में अशेष दीप्ति दी, निशानी में।
अपनी ही रचना में अपने को देखती है
अपने ही दानों में अपने वरदानी को।
आंखों में गंगा और यमुना लहराती है।
बोलता है हिमालय भी आज इस दीवानी में।

अच्छा तो हमको एक चाँदी का कटोरा मिल गया। बहुत नक्काशीदार, अच्छा। बहुत खुश हुए। लौट के आए। सुभद्राजी से कहा– "हमको यह कटोरा मिला।" उन्होंने कहा– "बस महादेवी खीर बनाओ और इस कटोरे में खिलाओ मुझको।"

प्र०: यहाँ होस्टल में रहते थे कासिद में?

उ०: होस्टल में हम लोग स्टोव रखते थे, जो वहाँ नहीं मिलता तो हम बनाते थे। उसी बीच बापू आए एक बार स्वराज भवन में। तो हम लोग बच्चे सब हमेशा जाते थे। और मिस मान कर थीं महाराष्ट्री, बड़ी देशभक्त थीं। फिर तुला शंकर आईं, वह भी बड़ी देशभक्त थीं। तो हम लोगों को जाने देतीं और ले जाती थीं। गाँधी जी के दर्शन करो। दर्शन की बात थी। तो हम भी गए, उसमें बस्ते में रख कर कटोरा। तो बापू अपने कातने में लगे थे। हमने कहा- "बापू हमने आपके लिए कविता लिखी है। "बापू ने कहा "हूँ" और कातते रहे। अब हमें, बड़ी खीज हुई हमको। फिर हमने कहा- "बापू हमको एक चाँदी का कटोरा मिला है।" कहने लगे– "हां, दिखा।" तो हमने कटोरा निकाल कर दिखाया। उन्होंने देखा, कहा– "अच्छा है। मेरे को देने लाई यह?" हमने कहा- "हाँ" सिर हिलाया। अब बैठे राह देख रहे हैं, वह कहें कविता सुना। काहे को सुनाएँ? बापू तो सुनना ही नहीं चाहते, हम कैसे सुनाएँ। जबरदस्ती कैसे सुनाएँ। खैर, उन्होंने नहीं सुनी। चले आए निराश होके। उनको बताया कटोरा तो गया और उसपर बापू ने कविता न सुनी।

प्र०: आपने खीर खाई नहीं कटोरे में?

उ०: तो उन्होंने कहा कोई बात नहीं तुम खीर बनाओ, हम तो पीतल के में ही खा लेंगे। खराब नहीं होती खीर। और फूल के में ही खा लेंगे। तुम दही चिड़वा खाती हो, काहे में खाओगी। तुम कठौती में खाओ चाहे पथ रौटी में खाओ। खैर, खीर-वीर का समाप्त हो गया।

फिर यह हुआ हम जाने लगे आनन्द भवन। तो तब ही हमने जवाहर लाल जी को देखा। बाहर से नए-नए आए थे वह। बापू के बड़े भक्त वह हो ही गए थे। तो वह जाती थी मानकेकर। वह तो जाती थीं बात करने, करने लगती थीं कुछ और। हम उनके साथ जाते थे और घूमते रहते थे। आनन्द भवन-स्वराजभवन। तो हम अपना बस्ता ले गए। वह रखकर के भूल गए। अच्छा जब चलने लगे तो जवाहर भाई बस्ता हिलाते हुए पूछ रहे थे- किसका है, किसका है? हमने कहा- "हमारा है।" बस वह तो नाराज होते थे बात बात पर। कहा –"क्या पढ़ती है। अरे बस्ता-किताबें फेंकती घूमती है तो क्या पढ़ती होगी।" हम रोने लगे। क्या करते हमें बड़ी रुलाई आई। क्योंकि किसी ने डाँटा नहीं था पहले, पढ़ने के लिए। फिर उन्होंने देखा कि भई अरे हमने इस लड़की को रुला दिया। और उन्होंने कहा- "नहीं-नहीं, कोई बात नहीं है। पर किताबों को संभाल कर रखते हैं, किताबें लेकर ऐसे नहीं घूमते हैं।" असल में हम क्लास से भाग आए थे, उनको जाते देख कर बस्ता ले आए। तो फिर उनके यहाँ हम बार-बार जाने लगे। जवाहर भाई चाहते ही हम लोगों को बहुत थे।

फिर हम टैन्थ में पहुँचे तब हमको कृष्णा मिली। पढ़ने आई तो हमारी सहपाठिनी थी। और हमारे पास बैठा करती थीं। न जाने कितनी चिट्ठियाँ हमको पढ़ाती रहती थीं। खोलकर के यहाँ रख देती थी नीचे और महादेवी यह देखो- वह देखो। अच्छा, जहाँ कोई टीचर पूछे- "क्या कर रही हो" तो

अपने-आप तो चुप हो जाएँ और डाँट हम पर पड़े कि हम क्या पढ़ रहे हैं। लेकिन वह भी अच्छी थीं। वह दिन तो बहुत अच्छे बीते।

प्र०: पढ़ाई के साथ -साथ कविता लिखने का सिलसिला भी चलता रहा?

उ०: आखिर फिर कविता का तो यह रहा कि कुछ दिनों तक हमारी उसी तरह कविता चली। ब्रज भाषा में नहीं खड़ी बोली में। लेकिन वह ही सवैया, छप्पय, सवैया। वह ही छन्द चला।

प्र०: सवैया, छंद बहुत प्रिय रहा आपको?

उ०: हाँ, हमको प्रिय है। क्योंकि बचपन से वैसा ही लिखते आए हैं न। और उसके आधार पर हमने बहुत गीत जो बनाए वे लोक धुन पर भी हैं और उसके मांत्रिक छंदों के अनुसार भी है। बहुत कुछ उसका वह है। हमने जब हिमालय लिखा, तो हिमालय की उस समय तक ऐसी कल्पना नहीं थी। वह हमने कैसी की है कल्पना, पता नहीं। वह है तो ब्रज भाषा में :

नभ की परछाई न छाए तुषार पे
श्वेत तुषार पे नीलम रंग भरे।
और-बहुरंगी धनावली सोहत है यों।
मनो शीश पे मोर पखाज है रे।
परिधानी पीत सौ आतप को।
गिरि आज पीताम्बर सौ पहरे
बंसी हु समीर की गूंज रही,
गिरिराज . . . .

लेकिन वह कल्पना हमारी आज तक अकेली है। क्योंकि हिमालय में किसी ने कृष्ण की कल्पना नहीं की है। लेकिन यह कि अभी आप हिमालय देखें तो आकाश की छाया, जो बर्फ जमी है उस पर पड़ती है, और नीली हो जाती है, और जहाँ धूप पड़ती है, धूप, तो पीली हो जाती है। पीताम्बर जैसा लगता है। हवा जब उसमें देवदारु के बीच में चलती है पत्तों में तो बाँसुरी जैसी आवाज आती है। पर वह कल्पना हमारी अकेली तो है। तो उस समय की बहुत कविताएँ थीं, जिनको हमने फेंक दिया। हमें याद ही नहीं रही। हमारी कविता जो कुछ नीहार की है, नीहार की समझ लीजिए, तब हमने टैन्थ नहीं पास किया था।

प्र०: ब्रजभाषा की कविता और खड़ी बोली दोनों कविताएँ आप लिखती रहीं, उस उम्र में . . . .

उ०: नहीं, ब्रजभाषा की तो वहाँ समाप्त हो गयी।

प्र०: नहीं, यह जो हिमालय पर आपने कविता सुनाई यह . . . .?

उ०: यह भी पहले की है। फिर यहाँ आकर के तो हमने खड़ी बोली में ही लिखा, जो कुछ लिखा।

प्र०: सुभद्रा जी के सान्निध्य में?

उ०: फिर यह था कि हमारा स्वतन्त्रता का संग्राम चला। तो उसमें हमने बहुत लिखा है। ऐसा नहीं है, कम नहीं है। और बहुत गाया भी गया। लेकिन हमने संग्रह नहीं किया उसका। वह कभी समझा ही नहीं, आवश्यक है। जैसे-

''बन्दिनी जननी तुझे हम मुक्त कर देंगे।''

तो यह बहुत गाया गया। या . . . .

"सरिता सरोवर में बहता प्रलय हो।"

बहुत-सी फिर-

"मस्तक देकर आज खरीदी है यह ज्वाला।।"

तो बहुत से ऐसे गीत हैं जो उस समय गाये गए और कोई जानता नहीं था कि किसी लड़की ने लिखे हैं, छोटी। न हमने कभी कहा और न अभी तक संग्रह किया। अब इनमें थोड़ी सी हमारी माँ की रामायण बाल्मीकि में रखी. रखी . . .।

प्र०: नहीं यह जो राष्ट्रीय गीत आपने लिखे होंगे, तो वे लोगों के पास कैसे पहुँचे होंगे बिना प्रकाशन हुए?

उ०: नहीं, बस ये कभी लड़कियाँ गातीं और उनसे वो कर लेते नोट - लड़के गाते।

प्र०: वह प्रकाशित नहीं हुई पहले?

उ०: नहीं कुछ कविताएँ प्रकाशित हुईं ऐसी "दर्पण" में, "मर्यादा" में, प्रभुदत्त ब्रह्मचारी पहले सम्पादक थे। तो उन्होंने कुछ छापीं। लेकिन हमने कभी भेजी नहीं उस समय। फिर "चाँद" जब निकला सन् 22 में। तो चाँद की संचालिका थीं विद्यावती। वह हमारी गुरू थीं, पढ़ाती थीं। तो वह हमारी कविता ले जाती थीं और उन्होंने "चाँद" में छापीं। उसके पहले कोई जानता नहीं था।

प्र०: सरस्वती से कोई संबंध नहीं था?

उ०: अब छापने का हिसाब यह कि तोरन देवी शुक्ल हमारी बड़ी अच्छी कवयित्री थी। उन्होंने एक कविता सुकवि में भेज दी। और सुकवि में छप गई। तो लोगों का ध्यान गया। सब ब्राह्मण इकट्ठे हुए। उन्होंने कहा लड़की का नाम छप गया अखबार में अब इससे कौन ब्याह करेगा? तो सोचिए आप, ऐसा समय। तो उसमें सुभद्रा जी का नाम छपता था। सब उनको बुरा कहते थे। कोई अच्छा नहीं मानता था किसी लड़की का नाम अखबार में, चाहे जित्ती अच्छी बात हो। लेकिन ऐसा था कि फिर हम लिखने भी लगे। और यहाँ हमारा एक निबन्ध जब हम शायद आठवें में रहे होंगे, तब वह पुरस्कृत हो गया। वह था पर्दा प्रथा पर।

तो असल में हम तबसे लिखने लगे, और बोलने में हम कम बोलते थे। लेकिन जब मंच पर जाते थे तो बोलते ही थे। लेकिन कुछ तो अजीब बात थी हममें। एक वह मैस्मराइज करने आए। उन्होंने कई लड़कियों को बेहोश किया, क्या किया, उनसे बुलवाया। फिर उन्होंने जाने कैसे हमसे कहा कि इस लड़की को भेजिए। हम गए। वह हमें देखने लगे। हम भी उन्हें यूँ देखने लगे। जितना वह घूरें उतना ही हम उनको घूरें। और भई कुछ नहीं हुआ। न बेहोश न कुछ। तो उन्होंने कहा- यह ठीक नहीं है।

प्र०: उनका मैस्मरिज़्म फेल हो गया।

उ०: उन्होंने कहा माध्यम ही ठीक नहीं है। तो हमें लगा बड़ी अजीब बात है। बाकी सब ठीक है, हम ठीक नहीं हैं। लेकिन लगता यह कि बहुत जल्दी प्रभाव हम पर नहीं पड़ता। अगर है तो वह यह है कि या तो हम सम्प्रदाय नहीं मानते हैं, हमारे मन में वह चीज नहीं है। वह कहें लोग तो कहें, अच्छा कहें बुरा कहें। ऐसा है कि देखिए हम सोलह-सत्रह बरस के थे तब उन्होंने कहा कि आधुनिक मीरा है। हम पर कोई असर नहीं पड़ा और न उसको उसका अहंकार हुआ। न कुछ हुआ। आज तक भी कुछ नहीं,उस समय भी नहीं था। लेकिन उस समय भी डर नहीं था और आज भी डर नहीं है।

अच्छा अब फिर उसके बाद यह हुआ कि न जाने कैसे बुद्ध भगवान पर हमारी बहुत भक्ति है एक करुणा की जो है वह वास्तव में हमें उन्हीं में मिलती है और किसी में नहीं मिलती। तो हमारे मन में आया अगर हम भिक्षु हो जाएं तो कितना अच्छा होगा। यहाँ-वहाँ सब जगह घूमेंगे बस, अपनी बात कहेंगे, कविता पढ़ेंगे।

प्र०: लेकिन बौद्ध धर्म का प्रभाव या बौद्ध धर्म के बारे में आपको ऐसे क्यों लगा? इसके पीछे कोई . . . . .

उ०: यह कहना बड़ा कठिन है कि कैसे प्रभाव पड़ा। बुद्ध भगवान को हमने पढ़ा ही। लेकिन पढ़ने पर उनकी करूणा हमको कैसे खींचे, यह बताना मुश्किल है। यह असल में कौन-सा प्रभाव, संस्कार में इतना मिला है रक्त में, बताया नहीं जा सकता। आदमी का एक तो स्थूल मन है जिसमें वह वस्तुओं का अन्तर देखता है। एक उसका सूक्ष्म मन है जिसमें वह ईश्वरीय एकत्व देखता है। यानी अभी यह काठ है, कुर्सी है, मेज है, यह हम देख पाते हैं और यह स्थूल मन की बात है। सूक्ष्म मन में हम जानते हैं कि काठ है वह पेड़ का है। एकत्व है और फिर कारण मन है जो इन दोनों को मिला कर के एक नया दृष्टिकोण देता है। नई दृष्टि देता है, निष्कर्ष देता है। और इसी तरह एक हमारा अवचेतन है, एक चेतना है, एक पराचेतन है, कई स्तर हैं चेतना है तो, यानी ये तीन मिलकर के, वे तीन मन के स्तर मिलकर के एक बिन्दु पर कभी-कभी आ जाते हैं और आदमी तब एक दर्शन भी पा लेता है और सृजन भी कर लेता है। नया रूप पा लेता है कला का भी, दर्शन का भी, साहित्य का भी। यह कहा नहीं जा सकता। और वह कहाँ मिलेंगे हम नहीं कह सकते। कहीं मिलते होंगे।

प्र०: एक बात बताइये, कविता के भाव कैसे फूटते रहे? उनके पीछे क्या प्रक्रिया होती थी, कुछ ध्यान आता है?

उ०: नहीं यही होता है। देखिए जिस समय कोई अनुभूति आती है अनुभव, तो हम बाहर के इस में करते हैं। और वह अनुभूति कहाँ अवचेतन में रह जाती है। कभी-कभी ऐसा होता है कि ऊपर आ जाती है चेतना में। अज्ञात रूप से और तब हम लिखते हैं। मालूम नहीं, उसी समय जिस समय हम अनुभव करते हैं तब लिखने नहीं बैठते हैं। अगर लिखें भी तो लिखा नहीं जाएगा।

प्र०: यह आप तब सोचने लगीं थी नीहार के पहले? नीहार के प्रकाशन के पहले आपका मन इन बातों में उलझने लगा था?

उ०: हाँ, बिलकुल। नीहार में बहुत कुछ ऐसा आया है कि एक तो लगा यह कि अगर हम बौद्ध भिक्षु हो जाएं, किस को देखा था हमने देखा होगा किसी को जिसकी हमें याद नहीं है, क्योंकि बाद में तो हमने राहुलजी को देखा। लेकिन पहले ही से हम सोचते थे और सोचते रहे, सोचते रहे फिर उसके बाद जब इंटरमीडिएट कर चुके, बी०ए० भी कर चुके तब हमने प्रयत्न किया कि हम भिक्षु हो जाएँ। उनको लिखा लंका में, अनुराधापुर के महास्थविर, कि हम भिक्षु, होना चाहते हैं तो हम लंका आएँ कि आप यहाँ दीक्षा देंगे। उन्होंने लिखा कि- " हम आ रहे हैं नैनीताल और ब्रुकविले में ठहरेंगे तुम वहाँ मिलो हमको।" तो हम गए वहाँ। उनके यहाँ सब अंग्रेजी मामला था बहुत। आए। महास्थविर। वे एक पंखा लकड़ी का, इतना गोल लिए थे-ऐसे रखते थे हम उनका इधर से देखना चाहें, यों कर लें, उधर से देखना चाहें, इधर कर लें। तो जब वहाँ ये तय हो गया कि सारनाथ में दीक्षा देंगे वे हमको, तो हम बाहर निकले तो उनसे पूछा सचिव से कि- "ये पंखा क्यों रखते हैं महास्थविर? उन्होंने कहा- "स्त्री का मुख-दर्शन नहीं करते।" पता नहीं कौन संस्कार एकदम आ गया, यह तो बड़ी छोटी बात है। यानी लगता है कि इस आदमी को इतना भय है, भय तो है ही उनको।

तो हमने कहा कि इतने दुर्बल को हम गुरू नहीं बनायेंगे और चले आए। लेकिन कोई संस्कार हमारे भीतर था, विद्रोह जगा देता हमारा एकदम। तो इसी तरह समाज का हुआ। हम समाज में कभी यानी परिवार के हम उस तरह के प्राणी हो ही नहीं सकते थे। हमको अच्छा नहीं लगता। तो क्या करते हम। तो अंत में तो विद्रोह करना ही पड़ा।

फिर देखिए अब बापू के पास गए, रवीन्द्र के पास गए और रमण महर्षि के पास गए, सब जगह हो आए और हमारा मन कहीं लगा ही नहीं। रवि बाबू को हम इतना मानते थे, लेकिन देखा कि हमारे मन को संतोष नहीं है। अत्यंत कराह है, कराह है तो जीवन तो है ही नहीं। लगा ये कि इसमें कर्मठ नहीं हो सकते हैं। करुणा तो बहुत है। फिर जब गए रमण महर्षि के वहाँ एक दिन सवेरे का वक्त था कुछ काटाकुटी हो रही थी। जाकर देखा तो कद्दू काट रहे थे वे, क्या कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि- "मैं अपने हिस्से का काम कर जाता हूँ।" फिर गुफा में जाते थे वे ध्यान करने। तो हमें बड़ा आश्चर्य हुआ। हमने कहा कि कद्दू काटना होगा तो हम अपने घर में काटेंगे। हम इसके लिए यहाँ क्यों आयेंगे? फिर बापू के यहाँ गए।

बापू से हमको बहुत मिला यह सही है। लेकिन पूरी तरह हम समर्पित नहीं हो सके। उस प्रकार उनके यहाँ जितने थे कला के नाम से वे सब डरते थे। जितने आप बुरी तरह रह सकें उतना रहें, तब आप महान् हैं। तो हमारी समझ में आती जो आती।

कला के नाम से डरते। कला की बात करते ही यह तो साधना ही नहीं है, एकदम सब के सब, एक की बात ही नहीं है। तो हमने कहा- "खाने में नीम की पत्ती, चटनी नहीं खाते है फिर। लगता है पूरा जीवन ही नीम की चटनी है। भई गुलाब भी तो खिलते है (हंसी)। वे खिलते हैं और अन्न भी पैदा होता है। लेकिन अन्नमय कोष ही है सब कुछ और कुछ नहीं है, यह कैसे माना जाए। गुलाब का खाली आप एक गुलकन्द बनायें, गुलाब को देखना न चाहें, खाली वह दवाई हो, तो यह समझ में नहीं आता। लेकिन यह था कि वे मानते थे और उन्होंने फिर ऐसा किया कि हम विद्यापीठ में आए जब हम एम०ए० कर चुके। बापू ने पहले कहा- "कॉलेज छोड़ो," सबसे कहा कॉलेज छोड़ो। और एक मीटिंग में पंत जी भी थे, हम थे सब, और पंत जी के भाई देवीदत्त जी भी थे। तो उन्होंने कहा– "हाथ उठाओ कौन-कौन कॉलेज छोड़ेगा? तो देवीदत्त जी ने पंतजी का हाथ उठा दिया और पकड़े रहे जब तक इनका नाम नहीं लिखा गया। पंतजी ने नहीं उठाया था, उन्होंने उठा दिया देवीदत्त ने। अच्छा हमने तो नहीं उठाया था, बापू ने फिर हमसे कहा कि- "तू नहीं छोड़ेगी?" तो हमने कहा- "बापू छोड़ने की बात ऐसी है कि हम लोगों को पढ़ने का अधिकार ही नहीं है। तो पहले तो हम लड़ेंगे पढ़ने के लिए। जब अधिकार मिलेगा तो छोड़ेंगे। जब अधिकार नहीं है हमको तो हम क्या छोड़ें। जिसके पास है नहीं उससे आप कहें कि त्याग करो।" तो फिर उन्होंने हमसे नहीं कहा।

जब एम०ए० कर चुके हम फिर उनके पास गए कि बापू अपने साथ हमको रख लीजिए। बापू ने कहा- "जो काम करते हैं, ठिकाना बना के बैठते हैं। और जो निठल्ले हैं मेरे साथ घूमते हैं। तू क्या होगी? "हमने कहा- "हम काम करेंगे।" तब उन्होंने कहा- "अपनी मातृभाषा के माध्यम से अपनी गरीब बहनों को शिक्षा दें।" तो जहाँ आप कहेंगे वहाँ बैठूँगी। तो हम,विद्यापीठ हमारे पास, और जवाहर लाल जी कुलपति।

प्र०: प्रयाग महिला विद्यापीठ की स्थापना हो गई। यह आपके जीवन में इतनी कर्मठता रही और विद्रोह का भाव रहा। तो फिर आपकी कविता में एक विरह या वियोग, छटपटाहट, यह कैसे आई। मतलब आपकी बातचीत से या फिर कर्म से लगता है बराबर?

उ०: देखो, भाई, कर्म तब आनन्द देता है जब उसके पीछे अनुभूति हो। हमारे यहाँ तीनों को महत्व दिया गया है। बुद्धि को भी। महत्व दिया है, हृदय को भी महत्व दिया है, कर्म को भी। सत्यं, शिवं, सुन्दरम क्या है? सत्य तो आपकी बुद्धि में है ही। शिव आपके कर्म में है और सौन्दर्य आपके हृदय में। तो आप किसी से मिलना चाहें, किसी विराट सत्ता से मिलना चाहें, तो खाली कर्म से नहीं मिल सकते हैं, कर्म तो जीवन में बहुत थोड़ा है। उसमें से अधिकांश अपने लिए। दिनभर सोचिए तो, अपना कर्म कितना आप देंगे। तो विद्रोह जो आता है शिव को लाने के लिए आता है, अशिव को हटाने के लिए आता है। लेकिन शिव क्या है और क्यों लाना चाहिए यह आपका सौन्दर्य का बोध देता है। अन्यथा अशिव क्या है और शिव क्या है ? वह सौन्दर्य बोध आप में न हो तो आप दोनों में कोई अन्तर नहीं कर सकते। अशिव भी उतना ही अच्छा है और शिव भी उतना अच्छा है तो उसके लिए आपको सौन्दर्य चाहिए। और सौन्दर्य को एक तर्कसम्मत बिन्दु पर रखने के लिए छाया की तरह बुद्धि भी आपको चाहिए, सत्य भी आपको चाहिए। केवल सत्य भी आपको विकलांग कर देगा, अकेला कर देगा। केवल सौन्दर्य भी आपको विलासिता की ओर ले जाएगा। केवल कर्म भी आपको यन्त्र बना देगा। और यह आजकल जो हर जगह यन्त्र चलते हैं। इतने हथियार बन रहे हैं वह कर्म नहीं हैं क्या? बहुत बड़ा कर्म है। पूरे विश्व को मार डालने के लिए कर्म है। इस कर्म को बुरा आप क्यों कहेंगे? कहेंगे! क्योंकि आपको सौन्दर्य का बोध है।

तो एक जो विराट सत्ता है उससे एक होने के लिए या तो प्रेम का संबंध होगा या तर्क का होगा। तर्क से एकता नहीं होती, जब होगी तब स्नेह से होगी। चट्टान, चट्टान से नहीं मिलती चाहे वह कहीं पड़ी रहे। एक चट्टान दूसरे पर गिर जाए तो टूट जाएगी, मिलेगी नहीं। और अगर रेत का कण भी हो जाएगा तो भी नहीं मिलेगा रेत से। जब मिलेगी तो जल की धारा ही जल की धारा से मिलेगी। तो अगर आपको किसी विराट सत्ता से मिलना है तो अनुभूति के अतिरिक्त और रास्ता ही नहीं। और मनुष्य से मिलने के लिए भी अनुभूति का रास्ता है। मनुष्य से भी आप कैसे मिलेंगे?

प्र०: यह अनुभूति का संबंध स्थूल से कुछ नहीं है?

उ०: क्यों नहीं है?अवश्य है। स्थूल है, लेकिन स्थूल तो अन्तर भी देता है न। एकता तो फिर दूसरी चीज है, वह अनुभूति उसे देती है। आँसू की भाषा सब समझते हैं। सब आँखों के आँसू उजले, आँसुओं का कोई और रंग नहीं होता। एक ही है चाहे क्रूर आदमी रोए तब भी वह रोता ही है, फिर और कोमल रोए तब भी! तो वास्तव में अनुभूति का सूक्ष्म संबंध है, लेकिन स्थूल में अन्तर है, उसमें भिन्न होता है। लेकिन अनुभूति में भिन्नता नहीं है। मान लिया कि हम एक नाटक देख रहे हैं। जिसमें एक बच्चा नहीं रहा, माँ रो रही है। मान लिया आप माँ नहीं हैं तो भी उसका दुख, उसकी वेदना आपको छूती है, उतनी देर के लिए आप माँ के स्थान में हैं।

तो यह एक करने की बात है वह वास्तव में अनुभूति में अन्तर की बात स्थूल में है। स्थूल केवल हमें भिन्नता देता है क्या करना चाहिए और चित्र देता है, और विवेक देता है, यह सब देता है। लेकिन अनुभूति जो है दूसरी है। पूरा युग आज कुंठित है। अनुभूति का अभाव है। अनुभूति जिस दिन हो जाए, तो वह तो समुद्र की तरह तरंगायित हो जाएगा फिर एकता के लिए कुछ कहना ही नहीं। लहर ऊँची हो, नीची हो समुद्र की ही तो लहर है, और कहीं तो नहीं होती। ☐

गाँधी विचार-परम्परा के प्रतीक पुरुष : पं० द्वारिका प्रसाद मिश्र

भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के योद्धा और स्वाधीन भारत को ठोस दिशा देने वाले यशस्वी राजनेताओं में आप, अक्षुण्ण कीर्ति के अधिकारी बन चुके हैं। मिश्र जी का संपूर्ण जीवन स्वयं में एक गाथा है। रेडियो आत्मकथा क्रम में हमने इनकी लम्बी रिकार्डिंग कर पाने में सफलता पाई जो जबलपुर में दिनांक 4 दिसम्बर से 13 दिसंबर, 1985 के बीच हुई थी।

हिन्दी के वरिष्ठतम कवियों में स्थापित, स्वतंत्रता संग्राम के दिनों का बहुत कुछ स्वयं भी अनुभव रखने वाले श्री रामेश्वर शुक्ल अंचल ने श्री द्वारिका प्रसाद मिश्र से यह भेंट की।

यहां उनके कुछ हृदय स्पर्शी अनुभव हैं। ❑
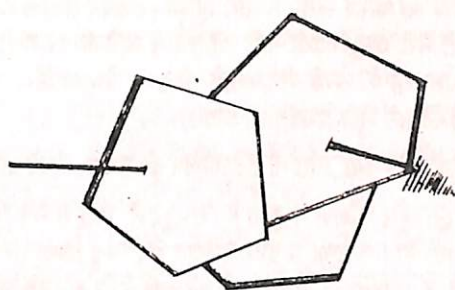
।।गाँधी विचार-परम्परा के प्रतीक पुरुष।।

प्र०: आपका सम्पूर्ण जीवन देश की स्वाधीनता सेवा और तद्हेतु कारावास के लिए अर्पित रहा है। अपने बहुआयामी व्यक्तित्व के कारण आप साहित्य और राजनीति में एक आख्यानक चरित्र बन गए हैं। आपके जीवन को आत्मोसर्ग की दिशा देने में कौन सी प्रेरक परिस्थितियाँ रही हैं? अपने बचपन की कुछ ऐसी घटनाएँ सुनाइए जो आपके जीवन को सुख सुविधापूर्ण पथ से खींचकर, देश-सेवा के कंटकाकीर्ण-पथ पर ले आईं।

उ०: जैसा कि मेरे निकट के मित्र जानते हैं, मेरा जन्म उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के परली ग्राम में हुआ था। मेरी दादी का बचपन लालपुर में बीता था जहाँ कि वे पैदा हुई थीं। गाँव लालपुर उन्नाव से बल्कि यों कहना चाहिए कि कानपुर से उन्नाव और उन्नाव से लखनऊ जो सड़क जाती है उसके पास पड़ता है। मैं अपनी विधवा दादी के पास अपनी माँ से भी अधिक रहता था और वे मुझे बहुत प्यार करती थीं। उन्होंने 1857 के विद्रोह की जो कथा मुझे सुनाई उसका मुझ पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। उनके कहने के अनुसार उन्नाव जिले के ग्रामीणों ने 1857 के विद्रोह में बहुत भाग लिया था। कई इतिहासकारों का भी यह मत है कि भारत के अन्य स्थानों में चाहे वह सिपाही विद्रोह मात्र रहा हो परन्तु जहाँ तक अवध का सम्बन्ध है, वहाँ वह जनता का विद्रोह हो गया था।

जब अंग्रेजों ने सफलता प्राप्त की और विद्रोह को दबा दिया तब मेरी दादी के कथनानुसार, उन्नाव से लखनऊ जो सड़क जाती है उसके वृक्षों पर मार-मार कर विद्रोही टांग दिए गए थे और चीलों ने धीरे-धीरे उनका मांस खाया। इस कथा को मैं अपने जन्म में कभी नहीं भूला और इसने मेरे बचपन में ही मुझे अंग्रेजों का शत्रु बना दिया। यही एक ऐसी घटना है जिसने मुझमें देश-प्रेम जागृत किया और उम्र के बढ़ने के साथ ही स्वराज्य प्राप्ति के लिए मैं बेचैन रहा।

आगे चलकर मैंने जो अपने जीवन में खड़ी बोली की प्रथम कविता लिखी, जब मैं कानपुर में इंटरमीडिएट में पढ़ता था तो कविता भी भारत माता के प्रति ही थी। उसका शीर्षक ही था "भारत माता के प्रति" इस प्रकार ज्यों-ज्यों मेरी आयु बढ़ती गई, त्यों-त्यों मैं अंग्रेजी का विरोधी और जो लोग स्वराज्य प्राप्ति के लिए प्रयत्न कर रहे थे, उनके पीछे चलने की इच्छा से सदा प्रेरित रहा। बचपन की सबसे महत्वपूर्ण घटना यही है जिसने मुझे प्रभावित किया।

प्र०: आपके छात्र-जीवन की स्थितियाँ कैसी थीं? क्या असहयोग आंदोलन के कारण आपने कॉलेज छोड़ा?

उ०: मेरा ज्यादातर अध्ययन मिशनरी स्कूल और कॉलेज में हुआ है। रायपुर में, जहाँ से मैंने मैट्रिक परीक्षा पास की,सैंट पाल हाई स्कूल में पढ़ता था। कानपुर से इंटरमीडिएट मैंने पास किया तो क्राइस्ट चर्च कॉलेज से। केवल बी०ए० के लिए मैं इलाहाबाद आया जहाँ सरकारी कॉलेज, मेयो सैंट्रल कॉलेज में भर्ती हुआ। और वहाँ का जो वातावरण (मेयो सैंट्रल कॉलेज का) था, वह देश-प्रेम को प्रेरित करने वाला नहीं था। अधिकांश लड़के वहाँ ऐसे आते थे जोकि या तो तालिबदारों जमींदारों के लड़के थे या उन लोगों के थे जो सरकारी नौकरी में लगे हुए थे और अपने पुत्रों को भी सरकारी नौकरी में लगाना चाहते थे। वहाँ का वातावरण तो प्रतिकूल था परन्तु वहाँ कुछ ऐसी परिस्थितियाँ पैदा हुईं कि जिसके कारण मुझे कॉलेज छोड़ना पड़ा। उसमें सबसे बड़ी परिस्थिति जो थी वह यह कि जब महात्मा गाँधी ने असहयोग आंदोलन प्रारम्भ किया तो उस समय नरम दल के कहे जाने वाले जो नेता थे उन्होंने उनका विरोध किया और सबसे अधिक विरोध श्रीमती एनी बेसेंट ने किया। उन्होंने इसके पहले बहुत बड़े-बड़े त्याग किए थे, अतएव उनके प्रति मेरे मन में श्रद्धा थी। जिन दिनों मैं इलाहाबाद में पढ़ता था, वह वहाँ पर आईं और उन्होंने गाँधीजी के असहयोग आंदोलन के विरोध में भाषण दिया। सभा में बहुत बड़ी संख्या में विद्यार्थी उपस्थित थे। उन्होंने श्रीमती एनी बेसेण्ट को बहुत तंग किया। वे भाषण करतीं। तो इधर से आवाज विद्यार्थियों की आती- 'सिम्पली थियेट्रिकल" उनके ऊधम से मैं बहुत अप्रसन्न हुआ। यद्यपि वह जो कुछ कह रही थीं, वह गाँधी जी के विरुद्ध था, इसलिए मैं प्रसन्न नहीं था परन्तु फिर भी उन्होंने पहले जो त्याग किए थे उसके कारण मैं चाहता था कि उनकी बात सुन ली जाए और इस प्रकार का विरोध न किया जाये।

उस समय "लीडर" पत्र वहाँ से निकलता था जिसके सम्पादक सी.वाई. चिन्तामणि थे। उन्होंने विद्यार्थियों की अपने अग्रलेख में निन्दा की और "इल ब्रीडिंग" इन शब्दों का उपयोग किया उनके लिए। इसी समय पं० मोती लाल नेहरू ने "इंडिपेन्डेण्ट" नाम का एक पत्र प्रारम्भ किया था जिसके सम्पादक जार्ज जोजफ थे। वहाँ पर जार्ज जोजफ की अध्यक्षता में एक सभा आयोजित की गई। उसमें भी बहुत विद्यार्थी मौजूद थे। तो लीडर के विरुद्ध वहाँ बहुत बड़ा वातावरण बना और उसकी निंदा प्रारम्भ हुई। मैं भी खड़ा हुआ सुन रहा था। मैंने बहुत जोर से कहा कि– "लीडर ने बहुत ठीक लिखा है, विद्यार्थियों का जो रुख रहा वहाँ, वह निन्दनीय था। इस पर जार्ज जोजफ ने मुझे कहा कि आप अगर कुछ कहना चाहते हैं तो मंच पर आकर कहिए। वहाँ पर मैंने कहा कि मैं गाँधीवादी हूँ, असहयोग के पक्ष में हूँ। परन्तु श्रीमती एनी बेसेंट ने जो पहले त्याग किए हैं उसके कारण उनकी बात को शांति से सुनना मैं उचित समझता था। इस पर कुछ विद्यार्थी बोले- "यदि आप गाँधीवादी हैं तो कॉलेज क्यों नहीं छोड़ते? तो मैंने उन लोगों को चुनौती देते हुए कहा कि आप में से चार निकल कर यहां पर आ जाएं तो मेरा नाम पाँचवां लिख लीजिए कालेज छोड़ने वालों में। कोई लड़का सामने नहीं आया।

उस घटना के पश्चात अलीगढ़ विश्वविद्यालय को बन्द करवा कर महात्मा गाँधी इलाहाबाद आए और पंडित मोतीलाल नेहरू के आनन्द भवन में विद्यार्थियों की एक सभा की गई और उसमें महात्मा

गाँधी ने विद्यार्थियों को कॉलेज छोड़ने की प्रेरणा दी। वहाँ पर जो विद्यार्थी थे उन लोगों को ऐसा लगा कि सरकार के प्रति तो असहयोग बाद में करना पड़ेगा, पहला असहयोग तो अपने माता-पिता के साथ करना पड़ेगा। तो बहुत कम विद्यार्थी कॉलेज छोड़ने के लिए राजी होते दिखाई पड़े। मैं उस सभा से जब बाहर निकल रहा था तो जार्ज जोजफ मुझे मिल गए। और उन्होंने कहा आप क्या करने वाले हैं? तो मैंने कहा कि– "उस दिन मैंने अपने भाषण में कहा था चार विद्यार्थी आ जाएं तो मैं पांचवा होऊगाँ, लेकिन अब मैंने निर्णय कर लिया है कि कोई दूसरा कॉलेज न छोड़े, लेकिन मैं जरूर छोड़ दूँगा। वे बड़े संतुष्ट हुए।

उसके बाद जिन लोगों ने कॉलेज छोड़ा उसमें हिन्दी के जो आगे चलकर सुप्रसिद्ध कवि हुए, सुमित्रानन्दन पंत भी थे। और वहीं उनके साथ मेरी मैत्री भी हो गई थी। जब मैं आगे चलकर श्री शारदा का सम्पादक हुआ तो उनकी पहली कविताएँ मैंने यहीं से प्रकाशित कीं। और जो उनका संकलन निकला (प्रथम संकलन कविताओं का), उसमें उन्होंने श्री शारदा का उल्लेख भी किया था। ये परिस्थितियाँ थीं जिनकें कारण मुझे कॉलेज छोड़ना पड़ा।

प्रः देश की सबसे पहली केंद्रीय संसद इंडियन लेजिस्लेटिव एसम्बली के सदस्य आप जब चुने गए उस समय गाँधी जी के कट्टर असहयोगी अनुयायी संसदीय कार्यक्रम के विरुद्ध थे। तब आपने क्या सोच कर कांग्रेस के द्वारा संसदीय सहयोग का समर्थन किया? उस समय जिस आशा और आकांक्षा के आप जैसे प्रखर राष्ट्रवादी तरुण ने संसद में प्रवेश किया था, क्या उसकी कीर्ति हुई? और कहाँ तक हुई?

उ०: चौरीचौरा प्रकरण के कारण महात्मा गाँधी ने सत्याग्रह असहयोग आंदोलन को समाप्त कर दिया था। और उसके बाद ही उनकी गिरफ्तारी हुई और उन्हें सजा हुई। इस सब का परिणाम यह हुआ कि देश में एक प्रकार की निराशा छा गई। उसी समय पं० मोती लाल नेहरू और देशबंधु दास ने संसद में जाकर सरकार का विरोध करने का निर्णय किया। यह बात सच है कि गाँधीजी के कट्टर अनुयायी, जिसमें उस समय श्री राजगोपालाचारी, राजेन्द्र बाबू इत्यादि थे, उन लोगों ने उसका विरोध किया। परन्तु इलाहाबाद में पढ़ते हुए, मैं पं० मोती लाल नेहरू से काफी प्रभावित हो चुका था और धीरे-धीरे मेरे मन में बात बैठ गई कि किसी न किसी प्रकार सरकार का विरोध तो जारी रहना ही चाहिए और चूँकि बाहर कुछ नहीं किया जा सकता है इसलिए संसद में जाकर सरकार का विरोध करना, उचित होगा। इस प्रकार विरोध की जो अग्नि महात्मा गाँधी ने सुलगाई थी वह किसी न किसी रूप में जीवित रहेगी।

जो लोग इसका विरोध कर रहे थे, उनके पास कोई खास काम सरकार के विरोध के लिए नहीं था, वे जिसे कन्स्ट्रक्टिव प्रोग्राम कहा जाता है, उसकी चर्चा करते थे,मुझे ऐसा मालूम हुआ कि विरोध को जारी रखने का एक मात्र उपाय संसद में जाना ही है, इसलिए मैंने उसका समर्थन किया। अब रह गई यह बात कि वहाँ सफलता कहाँ तक प्राप्त हुई, तो मैं यह कहूँगा कि अधिक से अधिक जो कुछ भी सरकार का विरोध किया जा सकता है वह संसद के द्वारा किया गया। और जब तक 1930 का सत्याग्रह महात्मा गाँधी ने नहीं प्रारम्भ किया, तब तक सरकार का विरोध अगर कहीं होता रहा तो संसद के अन्दर ही। इसलिए सफलता और असफलता का उत्तर देना तो कठिन है, लेकिन यह कहना पड़ेगा कि बराबर विरोध की अग्नि जलती रही। इसे अगर सफलता माना जाए तो मैं यह कहूँगा कि संसद में प्रवेश सफल हुआ।

प्र०: अभी आपने पं० मोती लाल नेहरू का नाम लिया। वे तब केन्द्रीय संसद में आपके नेता थे। उनका आप पर क्या प्रभाव पड़ा। क्या इसी समय आप पं० जवाहर लाल नेहरू जी के सम्पर्क में भी आए?

उ०: पं० मोती लाल नेहरू को मैं अपना प्रथम नेता मानता हूँ। पंडित जी का व्यक्तित्व बहुत प्रभावी था। और मेरे मत से अंग्रेजी में जिसे स्टेट्समैनशिप कहा जाता है, तो मैं उनको प्रथम स्टेट्समैन मानूँगा और उसके बाद फिर सरदार बल्लभ भाई का नाम लूँगा।

पंडित मोती लाल नेहरू हमारे नेता थे। अकेले हम संसद के कांग्रेस पार्टी के सदस्य ही उनका सम्मान नहीं करते थे, मैं देखता था कि जब वे संसद भवन में प्रवेश करते थे तो अंग्रेज तक उठ कर खड़े हो जाते थे और उनका आदर करते थे। उनके व्यक्तित्व का इतना बड़ा प्रभाव था। असैम्बली के अन्दर भी वे जब कभी भाषण देते थे तो उसका पर्याप्त प्रभाव पड़ता था। यद्यपि उनको वक्ता नहीं कहा जा सकता, परन्तु वे सुप्रसिद्ध वकील थे, और वह अपने केस को इतने अच्छे ढंग से पेश करते थे कि उससे संसद में बड़ा प्रभाव पड़ता था।

जहाँ तक पंडित जवाहर लाल का सम्बन्ध था, मैंने उनको पहली बार, जब मैं इलाहाबाद में पढ़ता था, तब पं० सुन्दर लाल का जो दैनिक पत्र था उसके दफ्तर में मैंने उनको देखा था। जहाँ वे पं० सुन्दर लाल के साथ कुछ चर्चा करने आए थे। उस समय मेरे ऊपर ये प्रभाव पड़ा कि वे राजनीति में अपने को अभी बहुत छोटा समझते हैं और जो लोग तब तक कि प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे इनके पास आते-जाते रहते हैं और राजनीति सीख रहे हैं। पंडित मोती लाल नेहरू, अपने पुत्र जवाहर लाल जी के संबंध में बड़े चिन्तित रहा करते थे क्योंकि वे जवाहर लाल जी को बहुत ही भावुक मानते थे और उन्हें सदा ही डर रहता था कि यह कहीं एक्सट्रिमिस्ट, अतिवादी न हो जायें। कहा जाता है कि पं० जवाहर लाल के ही कारण पं० मोती लाल गाँधी जी के साथ आए। यह सच हो सकता है। परन्तु एक बार आने के बाद वे गाँधीवादी ही रहे, इसमें कोई संदेह नहीं है। और हर आंदोलन में, जब तक वह जीवित रहे, गाँधी जी का उन्होंने साथ दिया। परन्तु जवाहरलाल जी के ऊपर लैफटिस्ट लोगों का प्रभाव धीरे-धीरे बढ़ता गया।

कानपुर कान्सप्रेसी केस में जब कुछ कम्युनिस्ट पकड़े गए तो जवाहर लाल जी ने उनका समर्थन किया और थोड़ा-बहुत महात्मा गाँधी और अपने पिता को भी वह अपनी तरफ खींच लाने में सफल हुए। परन्तु उन कम्युनिस्टों के साथ कितनी दूर तक सहानुभूति दिखानी चाहिए, दिल्ली में डा० अन्सारी के मकान पर एक बैठक हुई। मैं भी उसमें मौजूद था। सभा के समाप्त हो जाने के बाद पं० मोती लाल नेहरू डा० अंसारी से बात करने लगे और बात-बात में उन्होंने कहा कि– "जवाहर लाल जी जितनी दूर तक जा रहे हैं, आप उनको रोकने की चेष्टा कीजिए।" चूँकि मैं और किदवई साहब संसद में पार्टी के सचेतक यानी व्हिप थे, अतएव पं० मोती लाल के साथ हम लोगों का बहुत निकट सम्बन्ध हो गया था। कहना न होगा कि उनका मुझपर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा, परन्तु जहाँ तक जवाहर लाल जी का संबंध था, पंडित जी जो उनके संबंध में सदा चिन्तित रहा करते थे, उसका मेरे ऊपर भी प्रभाव पड़ा।

प्र०: एसैम्बली में आपके डिस्क्वालिफिकेशन की घटना के बाद की स्थितियों के बारे में थोड़ी चर्चा करना चाहेंगे?

उ०: एसैम्बली में प्रवेश करने के लिए मेरा डिस्क्वालिफिकेशन दूर नहीं किया गया था। जब यह समाचार पत्रों में छपा तो कुछ लोगों ने कहा कि क्योंकि हमारे एक साथी के साथ इस प्रकार का व्यवहार किया गया है इसलिए अब इंडियन लेजिस्लेटिव एसैम्बली में जाने की बात ही छोड़ दी जानी चाहिए। इसी आशय का एक वक्तव्य बम्बई के कांग्रेस में नेता श्री नरीमन ने दिया। इस पर मैं महात्मा गाँधी द्वारा वर्धा बुलाया गया। मेरे साथ पंडित रविशंकर शुक्ल और सेठ गोविन्द दास जी गए। मेरा डिस्क्वालिफिकेशन न दूर होने से गोविन्द दास जी ने तय किया था कि वे भी अब एसैम्बली में प्रवेश

नहीं करेंगे। बहुत मेरे समझाने पर भी वे नहीं माने थे। तो वह भी मेरे साथ वर्धा गए। वर्धा में गाँधी जी के साथ जमना लाल बजाज जी भी बैठे हुए थे और मुझसे पूछा गया कि सारे देश में आप ही के साथ ऐसा किया गया है और इसके कारण कांग्रेस में यह विवाद उठ खड़ा हुआ है कि अब लोगों को एसैम्बली में प्रवेश करना चाहिए कि नहीं। तो चूँकि इस मामले का संबंध आप से है इसलिए मैंने उचित समझा कि आप की खुद की क्या राय है यह मैं जान लूँ। तो मैंने कहा- "बापू, अगर आप एसैम्बली में लोगों को रसगुल्ले खाने के लिए भेज रहे हैं तो मेरे साथ यह बड़ा अन्याय होगा कि मैं ही रसगुल्ले से वंचित रह जाऊँगा। परन्तु यदि एसैम्बली में लोगों को भेजने का आपका उद्देश्य यह है कि वहाँ जाकर जो लड़ाई बाहर बंद हो गई है, वह एसैम्बली में की जाये तो इस प्रकार के युद्ध में अगर एक कोई कार्यकर्ता, सिपाही घायल हो जाता है तो इसके कारण युद्ध तो नहीं रोका जाता। तो आप जब वहाँ लड़ाई लड़ने के लिए लोगों को भेज रहे हैं, तो मेरे डिस्क्वालिफिकेशन न दूर होने के कारण सभी लोग न जाएं और लड़ाई बंद कर दी जाए जो वहाँ होने वाली है, तो यह तो बड़ा अनुचित होगा।" मेरे उत्तर को सुनकर महात्मा जी प्रसन्न हुए, कुछ हँसे भी। तब पास में बैठे हुए जमना लाल जी ने कहा कि- "बापू, मैंने पहले ही आपसे कहा था कि मिश्र जी इस प्रश्न पर व्यक्तिगत दृष्टि से विचार न करके, देश की दृष्टि से ही विचार करेंगे। यह एक महत्वपूर्ण घटना थी जिसका उल्लेख करना मैं भूल गया था।

प्र०: उन दिनों की कुछ और स्मृतियाँ?

उ०: 1942 में बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई। जहाँ "भारत छोड़ो" आंदोलन पास किया गया। और उस समय मैं भी वहाँ गया हुआ था, बल्कि जब घर से हम लोग रवाना हो रहे थे, तो घर के लोगों को भी कुछ ऐसा आभास था कि देश का वातावरण ऐसा हो गया है कि हम लोग वहाँ से लौटकर घर वापस आयेंगे या इसके पहले ही गिरफ्तार कर लिए जाएँगे। खैर हम लोग बम्बई पहुँचे और लगभग 12 बजे रात को "भारत छोड़ो" आंदोलन पास हुआ और महात्मा जी अपना भाषण देने के लिए खड़े हुए जिसके अन्त में उन्होंने "डू ऑर डाई", करो या मरो का उद्घोष किया और हाथ जोड़ कर उपस्थित कांग्रेस मैनों और साथ-साथ हजारों की संख्या में जो जनता थी उसको घूम-घूम कर उन्होंने हाथ जोड़े। मेरे पास बैठे हुए पं० रविशंकर शुक्ल से मैंने कहा कि- "उनकी इस मूर्ति को हम लोग अपने हृदय में अंकित कर लें। क्योंकि मालूम नहीं, अब जेलों में क्या-क्या भोगना पड़ेगा। और कितने वर्ष तक। तो यह मूर्ति हम लोगों के हृदय में साहस भरेगी और जो कुछ भी व्यथा हमको मिलेगी उसमें कमी आयेगी।

बारह बजे के बाद हम लोग अपने-अपने निवास स्थान पर लौटे और दूसरे दिन ज्यों ही मैं सो कर उठा तो देखा पं० रविशंकर शुक्ल जो उसी कमरे में मेरे साथ ठहरे थे, वे मुझसे पहले ही उठ चुके हैं और उन्होंने टाइम्स ऑफ इंडिया को दूर से मुझे दिखाया जिसमें बड़े-बड़े हैड लाइन्स में लिखा हुआ था कि रात ही को महात्मा गाँधी और कार्यकारिणी के बहुत से सदस्य कैद हो गए हैं। गिरफ्तार कर लिए गए हैं। इसके पश्चात हम लोगों ने चाहा कि उसकी प्रतिक्रिया बंबई में, शहर पर क्या हुई है, इसको अपनी आँखों से देखें। करीब 9 बजे एक मित्र की मोटर हम लोगों को प्राप्त हो गई। उसमें बैठकर हम लोग निकले। तो देखा पुलिस तो प्रधान सड़कों पर कहीं नहीं दिखाई पड़ती सब तरफ कांग्रेस के वालंटियरों की, कार्यकर्ताओं की भीड़ है और मानो बम्बई शहर पर, कांग्रेस का कब्जा हो गया है। ये लोग मोटरों को रोक रहे थे। जब हम लोग एक नुक्कड़ पर पहुँचे तो हमारी मोटर भी रोकी गई। लेकिन इतने में ही शुक्ल जी ने खिड़की के बाहर अपने मुँह को निकाला तो लोगों ने देखा, शुक्ल जी, उनकी सफेद मूँछ बड़ी-बड़ी थीं। लोग उनके फोटो से परिचित हो चुके थे। तो

लोग सी.पी. प्राइम मिनिस्टर कह कर चिल्लाए और महात्मा गाँधी की जय के साथ हम लोगों की मोटर को जाने का आदेश दे दिया गया। उसके बाद हम लोगों को पता लगा कि शाम को शिवाजी पार्क में कस्तूरबा गाँधी का भाषण होगा। उनको देखने के लिए जब हम लोग निकले तो देखा कि पुरुषों की बात तो जाने दीजिए महाराष्ट्रीय और गुजराती स्त्रियाँ बड़ी संख्या में सभा-स्थल की ओर जा रही हैं। हमें आश्चर्य मालूम पड़ा कि महिला समाज में सारे देश में, सत्याग्रह के आंदोलनों के कारण, काफी जागृति हुई है। वहाँ स्त्रियों की इस निर्भयता को देखकर हम लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। हम जब सभा-स्थल पर पहुँच भी नहीं पाये थे तो पता चला कि श्रीमती कस्तूरबा गाँधी को भी गिरफ्तार कर लिया गया है।

प्र०: गाँधी जी से आप कब और किस-किस प्रसंग में मिले? उनके बारे में कुछ चर्चा करेंगे?

उ०: 1930 में लाहौर कांग्रेस दिसम्बर के मास में हुई थी और 1930 में जब सत्याग्रह आंदोलन प्रारम्भ हुआ और गाँधी जी ने डांडी की पदयात्रा प्रारम्भ की, उसी समय अहमदाबाद में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक हुई। मुझे मालूम था कि गाँधी जी डांडी के मार्ग पर हैं तो मैंने जबलपुर वापिस आने के पहले यह ठीक समझा कि कहीं न कहीं मैं उनके मार्ग में दर्शन कर लूं। बहुत पता लगाने के बाद एक गांव में, जहाँ तक मुझे स्मरण है उसका नाम जमनीसर था, मैंने महात्मा गाँधी को देखा। बड़े छोटे से मकान के बरामदे में एक नाई से अपनी दाढ़ी बनवा रहे थे मुझे कुछ आश्चर्य मालूम हुआ क्योंकि मैं जानता था कि वह सदा अपने हाथ से शेव करते हैं। वे ताड़ गए कि नाई से दाढ़ी बनवाने पर मुझे आश्चर्य हो रहा है। तो फौरन वह बोले कि- "मैं शेव करने की कला को भूला नहीं हूँ। परन्तु अब यह नाई शेव कर रहा है। अब इसके बाद, मैं इसे शेव करूँगा।" मैं समझा नहीं, तो वह हँस कर बोले- "मेरी दाढ़ी बनाने के बाद यह अवश्य सत्याग्रही होकर जेल जाएगा।" इससे पता चलता है कि महात्मा गाँधी कितने बड़े प्रचारक थे।

वे बड़ी-बड़ी सभाओं के द्वारा तो प्रचार करते ही थे, लेकिन अपने व्यक्तिगत सम्पर्क से भी वे जहाँ तक बनता था, अपने मत में लाने का प्रयत्न करते रहते थे। जमनीसर के पश्चात जब मैं नागपुर में मंत्री हुआ उस समय सबसे अधिक उनके सम्पर्क में आया। नागपुर से सेवाग्राम पचास मील से भी कम पड़ता है और हम लोगों का यह सौभाग्य था कि मध्यप्रदेश का कांग्रेस शासन और उसके मंत्री जो भी काम करते थे वह महात्माजी के पास पहुँच जाता था और हम लोगों को भी इस बात का अवसर मिलता था कि जब कभी भी किसी संबंध में कोई उनसे सलाह चाहे तो हम वह प्राप्त कर सकते थे। इस तरह से तीन वर्ष के काल में सन् 37 से 39 तक हम लोगों को और मुझे कई बार उनसे मिलने का अवसर प्राप्त हुआ।

1939 के पश्चात व्यक्तिगत सत्याग्रह प्रारम्भ हुआ उसमें मैंने भी भाग लिया। महात्मा गाँधी ने केवल उन्हीं लोगों को जेल जाने की आज्ञा प्रदान की जिनके संबंध में उनको विश्वास था कि वे पूर्ण रूप से सत्याग्रह के नियमों का पालन करेंगे। इस संबंध में मुझे एक घटना याद आ रही है। हमारे प्रदेश के एक मुसलमान कार्यकर्ता श्री सैयद अहमद को उन्होंने जेल जाने की आज्ञा नहीं दी। इस पर उन्होंने महात्माजी के पास जाकर स्वयं आज्ञा मांगने का प्रयत्न किया परन्तु वे सफल नहीं हुए। इस पर उन्होंने महात्मा जी से कहा कि- "बापू आप तो पक्षपात करते हैं।" इस पर महात्माजी कुछ गंभीर होकर बोले- "आपको किसने बताया कि मैं पक्षपाती नहीं हूँ। मैं सत्य का पक्ष लेता हूं, अहिंसा का पक्ष लेता हूं, मैं तो पक्षपाती हूं।" यह एक विचित्र कथन था जिसका जब मुझे पता लगा, तो मैं कभी भूला नहीं।

प्र०: गाँधी जी के विषय में और कोई घटना . . . .

उ०: मैंने एक पुलिसमैन को वहाँ पर नियुक्त कर रखा था। जोकि सिविलियन क्रपड़े पहन कर वहाँ रहता था। एक बार महात्माजी ने उसको पहचान लिया और बुलाकर पूछा कि तुम यहाँ क्यों आए हो, कैसे आए हो? वह बेचारा घबड़ाया और उसने कहा कि मुझे मिश्रजी ने हुक्म दिया है आपकी रक्षा का ध्यान रखने के लिए। तो महात्माजी हँसे और बोले कि- "अरे मैं तो भूल ही गया था कि मिश्रजी के राज्य में रहता हूँ।" और उसके बाद फिर उसको अपने साथ ले गए और उसको एक तकली दी और कहा- "इधर-उधर मत घूमो यहाँ बैठकर तकली काता करो।

'मेरे अन्तिग दर्शन उनकी हत्या के लगभग 4-5 दिन पूर्व हुए। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता कराने के लिए जो खून-खराबा चल रहा था उसको बंद करने के लिए जो उपवास किया था उसके पश्चात हम लोगों ने समाचार-पत्र में पढ़ा कि वे सेवाग्राम आने वाले हैं। तो शुक्लजी ने मुझसे कहा कि मैं दिल्ली चला जाऊँ और वहाँ देखूँ कि उनकी रक्षा का क्या प्रबंध है और उसी प्रकार का प्रबंध यहाँ सेवाग्राम में जब आएँगे तो अच्छा प्रबन्ध किया जाये। इसलिए मैं वहाँ गया और स्वभावतः महात्माजी से मिला। जब मैं उनके कक्ष में प्रवेश कर रहा था तो सुहरावर्दी महोदय सबसे पहले मुझे दीख पड़े। मुझे आश्चर्य मालूम हुआ क्योंकि कलकत्ता के हत्याकांड की जिम्मेदारी उन्हीं पर लोग डालते हैं। अन्दर जाने के बाद मैंनें महात्माजी से पूछा कि- 'सुहरावर्दी महोदय यहाँ कहाँ से टपक पड़े? तो वह हँसकर बोले कि वह तो कहता है अब मैं यहीं पड़ा रहूँगा।"

मेरा महाकाव्य "कृष्णायन" जब छपकर निकला था तो मैंने एक मित्र के द्वारा उसको गाँधी जी के पास भिजवाया था, जब कि वे आज के बंगलादेश और उस समय के पूर्वी बंगाल में खून खराबा रोकने के लिए भ्रमण कर रहे थे। पुस्तक मिलने के कुछ दिन बाद ठक्कर बापाने का मुझे एक पत्र प्राप्त हुआ कि महात्मा जी को आपकी पुस्तक बहुत पसंद आई। स्वभावतः मैंने गाँधीजी से कहा कि अब आप सेवाग्राम आ रहे हैं और मैंने कृष्णायन के अन्त में जीवनवृत्त के संबंध में कुछ लिखा है और अगर आप आज्ञा देंगे तो मैं इसको पढ़ कर आपको सुनाऊँगा। इसे सुनते ही उन्होंने मुझसे पूछा- "आपने कभी किसी जीवनमुक्त को देखा है? इसके उत्तर में मैंने अपनी आँखें उन्हीं पर गड़ाईं वे समझ गए और मुझसे बोले- 'मैं अभी जीवनमुक्त नहीं हूँ। जीवन मुक्त होने की कोशिश कर रहा हूँ।"

यह गाँधी जी की मेरी अन्तिम मुलाकात थी। आपने यह पूछा है कि क्या गाँधी जी का स्थायी प्रभाव मुझ पर पड़ा। इसका उत्तर मैं केवल हाँ में ही दे सकता हूँ। इसका प्रधान कारण तो यह है ही कि हमें स्वाधीनता प्राप्त हुई उसका प्रधान कारण, और भी दूसरे फैक्टर्स भी रहे हैं, वह बात अलग है, लेकिन अगर गाँधीजी और उनके आन्दोलन न हुए होते तो हमें 15 अगस्त 1947 को स्वराज्य नहीं प्राप्त होता। ☐

आज के बिछुड़े : पंडित नरेन्द्र शर्मा

आधुनिक हिन्दी गीतधारा के गिने-चुने कोमलतम शब्द-शिल्पियों में पं० नरेन्द्र शर्मा, अपनी मौलिक पहचान रखते हैं। अपने समय और अग्रज पीढ़ी के प्रायः सभी उल्लेखनीय कवि व्यक्तित्वों, एवं स्वतंत्रता सेनानियों के स्नेह संरक्षण में पनपे, विकसित हुए और राष्ट्रीय इतिहास के बड़े ही कठिन दौर को समीप से समझा, सोचा और कहा।

अपने गीतों के लिए व्यापक पाठक-श्रोता समाज के जाने-माने हुए कवि ने, अपनी मौलिक प्रतिभा और साधना के बल पर पं० नरेन्द्र शर्मा ने फिल्मी गीत विधा को साहित्यिक दर्जा दिलवाया और उसे अनूठी भंगिमा दी।

'विविध भारती आकाशवाणी का पंचरंगी कार्यक्रम" जैसा योगदान पं० नरेन्द्र शर्मा की उन्नत कल्पनाशीलता एवं सृजनात्मक पहल का एक विशिष्ट उदाहरण है जिसकी लोकप्रियता से व्यापक श्रोता समाज परिचित है।

1913 ई० की 28 फरवरी, रात्रि के प्रथम प्रहर में इनका जन्म उत्तर प्रदेश के जहाँगीर पुर नामक गाँव में हुआ। स्वगत रेडियो-शैली में उनकी यह अनूठी आत्मकथा रिकार्डिंग, 29 मार्च, 1988 से बम्बई में की गई।

रोचक जानकारी भरी हुई उनकी जीवन-यात्रा के ऐतिहासिक संदर्भ से कुछ एक संस्मरणीय अंश, यहाँ दिये जा रहे हैं। □

।।आज के बिछुड़े।।

हमारा घर गाँव के दक्षिण छोर पर एक बहुत बड़े पोखर के किनारे पर था। पोखर का संस्कृत स्वरूप बहुत अच्छा है। लोग उसको पुष्करिणी कहते हैं। लेकिन पुष्कर तो कमल को कहते हैं जहाँ कमल खिलते हैं तो कमल तो वहाँ थे नहीं। लेकिन वह पोखर भी बहुत बड़ा। तो जिस हवेली में मेरा जन्म हुआ उस जन्म का स्थान उसके नैऋत्य कोण में बताया जाता है। और मैं इस बात में थोड़ा सा आनन्द का अनुभव करता हूं कि जो उस समय शुरू-शुरू हुए थे हमारे यहां लकड़ी से बनाये हुए अक्षरों के आकार थे और उन अक्षर के आकारों के हिसाब से हम जो हैं वर्णमाला सीखते थे। इस प्रकार मैंने वर्णमाला सीखी। फिर अपना स्लेट तो नहीं था लेकिन पट्टी हुआ करती थी लकड़ी की काले रंग की। उस पर गोटे से वह शीशे का होता था उससे चिन्ह बनाये जाते थे। उन चिन्हों के आधार पर अनुकरण करते हुए हम वर्णमाला लिखते थे। तो पढ़ना और लिखना आरंभ में इस तरह से हुआ।

सबसे पहली पुस्तक जो मैंने पढ़ी वह घर पर ही पढ़ी थी। वह कोई ऐसी प्राथमिक पुस्तक नहीं थी जिसे प्राइमरी कहते हैं जिसमें "राजा आता है और रानी जाती है" लिखा हो। वह थी "बाल सत्यार्थ प्रकाश"। ये बच्चों के लिए सत्यार्थ प्रकाश को सार रूप में प्रस्तुत करती थी। ये पुस्तक और मुझे जहाँ तक स्मरण है, यह इलाहाबाद में छपी थी और बहुत ही सुबोध थी। सत्यार्थ प्रकाश के प्रणेता स्वामी दयानन्द सरस्वती थे। लेकिन उसको तो पढ़ने का सौभाग्य मुझे बहुत बाद में प्राप्त–हुआ आरंभ मैंने बाल सत्यार्थ प्रकाश से किया।

मुझे तो यह बताया गया कि जब मैं नौ महीने का हो गया, तब से मैं हवेली में न रहकर के बड़े बैठक खाने में ही रहा पुरुषों के साथ। तो मेरा लालन-पालन पुरुषों के बीच में हुआ। इन में महत्व के थे मेरे पिता जी के दो बड़े भाई। मेरे पिताजी की मृत्यु हो गई थी मेरे पाँचवें ही वर्ष में। लेकिन मैं आज सत्य ही कह रहा हूँ कि मैंने पिता का अभाव कभी जाना ही नहीं। क्योंकि मुझे इतना प्यार मिला, मेरी ओर उनका इतना ज्यादा ध्यान रहता था। मेरे पालन-पोषण और शिक्षण के प्रति वे लोग इतने सचेत और इतने अधिक प्रेम से प्रभावित रहते थे कि मुझे कभी इस अभाव की अनुभूति नहीं हुई कि मैं पितृहीन बालक हूँ।

मैं क्योंकि गाँव में पैदा हुआ हूँ इसलिए मैंने यह अच्छी तरह से जान लिया कि गाँव का मतलब है कि निसर्ग के साथ मनुष्य का संबंध निरंतर बना रहता है। प्रकृति के साथ मनुष्य का, मनुष्य के मन का संबंध निरंतर जुड़ा रहता है। मैंने गाँव के सान्निध्य में रह के, बिना जाने ही कुछ बातें जान ली थीं।

वे बातें आज मैं आप से विचार करके कह रहा हूँ। लेकिन उस समय विचार से मैंने उनका अनुभव नहीं किया था। वह यह है कि प्रकृति और मनुष्य का संबंध ऐसा है कि प्रकृति एक तरह से हमारी व्यापक माता है। घर की माता तो होती है, वह तो एक व्यक्ति है, लेकिन एक व्यापक माता के रूप में प्रकृति है जो हमें अन्न देती है, जो जल देती है, जिसके दृश्यों को देख करके हमारे मन में अनेक भावनायें जागती हैं, अनेक अनुभूतियाँ फिर हमें उपलब्ध होती हैं।

जब मैं थोड़ा बड़ा हुआ तो तीसरी क्लास में, प्राइमरी स्कूल में मेरा दाखिला हुआ - चौथी क्लास में। उसको लोअर प्राइमरी कहते थे। वह मैंने वहीं से पास कीं और एक आश्चर्य की बात बताऊँ, कि वह समय उन्नीस सौ इक्कीस का था जब असहयोग आंदोलन आरंभ गाँधी जी ने किया था। फिर उस असहयोग आंदोलन का क्या प्रभाव पड़ा गाँव-गाँव में लोग जाग पड़े। तो हम बच्चे जो चौथी क्लास के थे एक जलूस ले करके पुलिस की चौकी तक गए। वहां पर थाना तो नहीं था लेकिन पुलिस की एक चौकी थी। अब पुलिस वाले भी देख करके मुस्कुराये ही होंगे, उन्होंने यह तो नहीं जाना था कि बहुत बड़े क्रांतिकारी आ गए थे और हम लोगों ने भी यह नहीं जाना था कि हम कोई राजनीतिक कार्य कर रहे हैं, लेकिन ऐसा हुआ था, मुझे याद है। उसमें हम तीन लड़के जो थे, वे थोड़ा-सा आगे थे। तो एक पहले हट गये, पुलिस चौकी के पास जाने से, एक फिर थोड़ी देर बाद हटकर चले गए। लेकिन मैं गया था।

तो मेरे मन पर क्या प्रभाव पड़ा कि वे दोनों तो फेल हो गए चौथी क्लास में, मैं अकेला पास हो गया। तो मैंने महात्मा गाँधी के प्रताप को उस बाल्यकाल में ऐसा माना कि यह तो बड़ा अमोघ है। देखो मैं तो पास भी हो गया। फिर जब छुट्टियाँ हुईं गर्मी की, मैंने अंग्रेजी सीखनी शुरू की। अंग्रेजी मुझे गाँव के ही एक सुशिक्षित व्यक्ति थे, उन्होंने सिखाई। उनका नाम था श्री मुरलीधर जी। और बहुत ही प्रेम से मुझे अंग्रेजी सिखाई और मैं यहाँ तक कहूँगा कि उनकी शिक्षा थी उसी के बल पर मैंने एम० ए० अंग्रेजी साहित्य में किया।

फिर मैं पास की तहसील का कस्बा था खुर्जा वहाँ पढ़ने के लिए चला गया और रहता था अपनी बुआ के पास। हमारे यहाँ उत्तर भारत में बुआ का दर्जा बहुत बड़ा होता है। बुआ कहते हैं पिताजी की बहन। तो वह बड़ी बहन थीं पिताजी की और उनका बहुत ज्यादा अधिकार भी घर पर माना जाता था। लेकिन उस अधिकार की जगह मुझे प्यार ही प्यार मिला। एक बार क्या हुआ कि मेरी बुआ मुझे बहुत प्यार करती रही होंगी, उस समय मैं अचेत और अबोध था मैं भी शायद उनसे बहुत ज्यादा हिल गया होऊँगा तो उन्होंने कहा कि- "देखो अब मैं खुर्जा जा रही हूँ। तो मुझे क्या मालूम कि खुर्जा में उनकी ससुराल थी। तो मैंने कहा कि- "मेरे से तो तुम भाड़ में जाओ।" अब बाद में वह कहती थीं कि - "तुमने ऐसी बात कही कि बाद में मैं भाड़ में ही पड़ गई।" वह विधवा हो गयी और उस घर में कोई नहीं रहा सिवाय उनके। तो फिर मैं उनके साथ खुर्जा रहने लगा और बड़े प्यार से उन्होंने मेरा लालन-पालन किया। बहुत ही प्यार से उन्होंने मुझे रखा।

आज मैं यह स्मरण करता हूँ कि हमें औरों से कितना मिलता है। मैं और कह रहा हूँ वह तो आत्मीय जन थे कितना मिलता है और उसके बदले में हम कितना कम दे पाते हैं? सच पूछिये तो मुझे जितना मिला है अपनों से, बाद में फिर जब मैं और आगे बढ़ता चला गया तो दूसरों से भी बहुत कुछ मिला।

हमारे स्कूल के हैड मास्टर साहब थे बाबू लक्ष्मी नारायण जी माथुर। वह बड़े ही सुधारवादी विचारों के आदर्शवादी व्यक्ति थे और अपने शिक्षण के कार्य में इतना रस लेते थे, उनको इतनी लगन थी कि वह अपने विद्यार्थियों और छात्रों को भी बच्चे ही जैसा मानते थे। मुझ पर उनका विशेष प्रेम था,वे मुझे अपने पुत्र के समान ही मानते थे। उनके पुत्र जगदीश चन्द्र माथुर आकाशवाणी के किसी समय महानिदेशक भी

हुए। वे आइ.सी.एस. हुए थे तो हम लोग बाल-मित्र थे। उस स्कूल में मैं पढ़ा और वहीं से पहली पत्रिका हिन्दी की हस्तलिखित थी, हम लोगों ने निकाली थी, और नवीं और दसवीं कक्षाओं में हैडमास्टर साहब ने हम को जिस शैली से शिक्षित किया उसको कहते थे वह "डाल्टन प्लान" के अनुसार थी।

एक बार वह पटना गये। उन दिनों खुदाई नई-नई पटना की हुई थी। तो मौर्य काल चन्द्रगुप्त मौर्य के काल के जो महल थे वहाँ के भी कुछ पत्थर उठा लाये थे तो हमारे मन में ऐसी भावना उसी समय पैदा हो गयी थी कि भारत का भी कोई इतिहास था। भारत गौरवशाली परम्पराओं का देश है, यह हो गया था। अब समाज सुधार की प्रेरणा भी मुझे उनसे मिली और उस समय अछूतोद्धार का आन्दोलन आरंभ हो गया था तो हम लोग सहभोज में भी शामिल होते थे। जगदीश चन्द्र माथुर, मेरे बाल मित्र थे, उम्र में मुझ से छोटे थे। इलाहाबाद पढ़ने के लिए वह भी गए। और बाद में जाकर आई.सी.एस. हो गए। तो ऐसा सान्निध्य मुझे मिला अपने शिक्षकों से। एक हमारे शिक्षक थे पं० विजय शंकर जी। उनका भी मैं बड़ी ही कृतज्ञता के साथ स्मरण करता था। वह पौराणिक शैली के पंडित जी थे और मेरे मन में आर्य समाज के संस्कार थे। तो देखिये मेरी धृष्टता कि मैं उनके साथ शास्त्रार्थ करता था और वे मुस्कुराते थे। इतना उनका प्यार मुझे। तो आज मैं उसके महत्व को जानता हूँ जो मुझे मिला इन लोगों से।

उन्नीस सौ उन्तीस में मैंने हाई स्कूल पास किया। लेकिन परीक्षा से पहले ही लाला लाजपतराय जी का देहान्त हुआ था। उस समय हममें से कुछ विद्यार्थियों ने यह प्रण किया था कि अब हम स्वदेशी का उपयोग करेंगे और अपने देश के प्रति जितना भी हो सकेगा हम अपनी सेवा का योगदान भरसक देंगे।

उनमें से एक मेरे साथी थे। वह कांग्रेस में सक्रिय बने। और उन्होंने बहुत काम किया। मैंने नौजवान भारत सभा, उसे भी ज्वाइन किया और मैं उसका सदस्य था जब सुभाष बाबू नेताजी उसके सभापति बने। जब बहुत बड़ी सभा हुई थी। नौजवान भारत सभा के तत्वाधान में मथुरा में, मैं भी उस सभा में सम्मिलित हुआ था। और मथुरा का स्मरण मैं इसलिए कर रहा हूँ कि मैं ठहरा था वहाँ? एक छावनी में जहाँ मेरे संबंधी थे और उस छावनी में गोरे भी बहुत थे। तो मैंने गोरों को भी निकट से देखा। ये गोरे जो सिपाही होते थे जिनको कि आमतौर पर सब टामीज कहते थे। तो मैंने देखा कि वे कितने उद्धत होते थे। तो हमारे मन में संकल्प और भी सुदृढ़ हुआ कि हमको देश के प्रति कुछ अधिक जागरूक, कुछ अधिक सक्रिय होना चाहिए। इस तरह से हाई स्कूल की परीक्षा मैंने पास की।

एक और घटना यहाँ पर मुझे याद आ रही है। मैं उस समय नौजवान भारत सभा की जो जिला कमेटी थी, उसका मंत्री था। तो हम लोगों ने उन दिनों सर माल्कम हेली का बहिष्कार करने के लिए बहुत बड़ा जुलूस जिले के सदर मुकाम बुलन्द शहर में निकाला था, बुलन्दशहर का मेरे जीवन में एक बड़ा महत्व है। क्योंकि जैसा मैंने कहा न, आरंभिक वर्णमाला का शिक्षण मेरा उसी नगर, उसी कस्बे में हुआ था जो जिला का मुख्य केंद्र था बुलंदशहर और मुझे आरंभिक शिक्षण देने वाले थे, वह पंडित जसराम जी। तो उसी बुलंदशहर में यह जुलूस भी निकला। उस जुलूस के ऊपर लाठीचार्ज भी हुआ। मैंने यह भी देखा कि जुलूस में शामिल होने वाले बहुत से लोग तितर-बितर भी हो गए। कुछ लोग नहीं भागे और वहाँ पर काली नदी है, तो काली नदी के पुल पर लेट गए थे। क्योंकि उधर से निकलने वाली थी सवारी "सर माल्कम हेली" की। तो उस सवारी में वे अवरोध पैदा करना चाहते थे, जुलूस के लोग। तो उनको उठा-उठा कर नदी में भी पटका गया। तो मैंने कोई अपनी वीरता का विशेष प्रदर्शन नहीं किया, लेकिन इसका मेरे मन में बहुत गहरा प्रभाव पड़ा कि - देखो दमन भी हम लोगों को सहना पड़ता है इन विदेशियों के द्वारा। और मेरी राजनीतिक चेतना जागृत हुई।

लेकिन उसी समय मेरे मन में एक संक्रान्ति उपस्थित हुई। वह क्या थी कि जब मैं इंटरमीडिएट में उसी खुर्जा के इंटरमीडिएट कॉलेज में था उसमें पढ़ने गया। पहले तो वहाँ मेरा दाखिला ही नहीं होता

था क्योंकि उसके जो प्रिंसिपल थे वह थोड़ा सरकारी खैरख्वाह तरह के आदमी थे। लेकिन बाद में फिर उनको मानना पड़ा कि नहीं, विद्यार्थी हैं, ठीक है कर लो किसी तरह से। कुछ करेंगे तो बाद में निकाल देंगे।

तो जब मैं पढ़ने गया तो वहाँ दो मेरे शिक्षक ऐसे थे जो इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पढ़े हुए थे और बहुत ही सज्जन और बहुत ही विद्वान थे। उनमें से एक ने तो वक्तृता की ओर मुझे उत्प्रेरित किया, प्रोत्साहित किया। उनका नाम था श्री विद्याधर चतुर्वेदी। और दूसरे थे श्री महेश प्रसाद जी शुक्ल। वह रहने वाले तो जबलपुर के थे लेकिन बहुत सा समय उनका प्रयाग में ही बीता था। और वह कुछ कवियों के, "जो महान कवि छायावाद के हुए," उनके संपर्क में भी आये थे। महादेवी जी के विशेष प्रशंसक थे और पंत जी के भी। उनके द्वारा मुझे काव्य की प्रेरणा मिली। जब मैं हाई स्कूल में या उसके पहले ही मैं हिन्दी साहित्य सम्मेलन की प्रथम परीक्षा पास कर चुका था और उस पास करने के कारण हिन्दी साहित्य और विशेष कर काव्य के प्रति थोड़ी बहुत अभिरुचि जागृत हो चुकी थी। लेकिन उस समय समाज सुधार और राजनीतिक आंदोलन मेरे मन पर प्रबल थे।

अब धीरे-धीरे काव्य का अंकुर जागने लगा। तो जब इंटरमीडिएट में था तो मैं परीक्षा पास कर ही रहा था उसके थोड़े ही पहले पंडित महेश प्रसाद जी शुक्ल, जो हमें अंग्रेजी पढ़ाते थे और विद्याधर जी पालिटिक्स पढ़ाते थे तो जो अंग्रेजी के हमारे शिक्षक थे उनसे अंग्रेजी काव्य और आधुनिक हिन्दी काव्य में उस समय छायावाद ही आधुनिकतम था, तो उसके बारे में मुझे कुछ प्रेरणा मिली। और पंतजी की "वीणा" पुस्तक और महादेवी जी की "नीहार", ये मुझे देखने को मिलीं। सच पूछिये तो समझा तो मैं क्या होऊँगा। लेकिन समझ के परे कोई चेतना होती है वह जागृत अवश्य हो गयी थी। और मैं कविता की ओर झुकने लगा। मेरा रुझान इस दिशा में निरंतर बढ़ता रहा। फिर मैं बी.ए. में दाखिला पाने के लिए प्रयाग विश्वविद्यालय में इलाहाबाद युनीवर्सिटी में गया और वहाँ वह काव्य का जो स्वर था, वह प्रबल होता चला गया। वहीं पर सर मैकडानल हिन्दू बोर्डिंग हाउस में रहता था जिसकी स्थापना पंडित मदन मोहन मालवीय जी ने की थी। अनन्तर उन्होंने काशी विश्वविद्यालय की भी स्थापना की थी। वह तो बहुत बड़ा उनका स्मारक है। उनके कार्य का बहुत बड़ा गौरव चिह्न है। लेकिन यह हिन्दू बोर्डिंग हाऊस भी उन्हीं का बनाया हुआ था। इस छात्रावास में और वहाँ मुझे तीन ऐसे साथी मिले, जो बहुत अच्छे कवि थे। मुझसे बहुत आगे थे। मुझसे कहीं अधिक उनका अभ्यास था। मुझसे कहीं अधिक उनकी उपलब्धि थी। वह थे शमशेर बहादुर सिंह, केदार नाथ अग्रवाल जो आज भी बहुत बड़े कवि हैं। और उस समय जो हम सब में सबसे बड़े कवि थे - वीरेश्वर सिंह। वह कहानियाँ भी लिखते थे। हम सब में वह अधिक प्रौढ़ थे और उनकी उपलब्धि भी हम तीनों की उपलब्धियों से कहीं अधिक थी। मुझे बहुत खेद है कि बाद में उनका साहित्यिक कार्य धीरे-धीरे क्षीण होता चला गया।

तो निरंतर मिलते रहना, एक दूसरे की कृतियों को सुनना और सुनाना। इस तरह से जो प्रोत्साहन मिला तो काव्य के क्षेत्र में मेरा प्रवेश निरंतर आगे ही बढ़ता चला गया।

जब मैं एम०ए० प्रीवियस में पढ़ता था तो मेरा पहला काव्य संग्रह स्वीकार किया गया प्रकाशन के लिए। वह बहुत बड़ा प्रोत्साहन था। तो उस समय तक दो विभूतियाँ ऐसी थीं कि जिनसे निकट का सम्पर्क स्थापित हो चुका था। पं० सुमित्रानन्दन पंत जो पहले ही मेरे प्रेरणा स्रोत बन चुके थे और श्री भगवती चरण वर्मा, जिन्होंने मुझे बहुत प्रोत्साहन दिया और बाद में श्रीमती महादेवी वर्मा। उन्होंने तो मुझे संस्कृत सिखाने का भी प्रयत्न किया। पहले भी मैं थोड़ी बहुत संस्कृत जानता था संस्कृत पाठ्य पुस्तक से। तो उन्होंने भी सिखाने का उपक्रम किया। लेकिन मैं बहुत आगे नहीं पढ़ सका क्योंकि उन दिनों अभिरुचि काव्य में बहुत बढ़ गयी थी और अभ्यास भी बहुत करता था। लेकिन इनके सान्निध्य से मुझे बहुत बड़ा लाभ हुआ। फिर श्री प्रफुल्ल चन्द्र ओझा "मुक्त" जो आकाशवाणी में रह चुके हैं एक प्रोग्राम के अधिकारी, उनके साथ

संपर्क हुआ। उनके माध्यम से बच्चन जी से भी संपर्क हुआ। और प्रयाग में तो उस समय इतना सुन्दर वातावरण था साहित्यक कि किसी भी व्यक्ति को प्रोत्साहन पाने के अवसर मिल सकते थे।

यहाँ भी मैं इस बात की आज अनुभूति बहुत प्रबल रूप में कर रहा हूँ कि मुझे बड़े साहित्यिकों से बहुत ही प्रोत्साहन मिला। उन्होंने ध्यान भी मेरे ऊपर दिया। उन्होंने कृपा भी मुझ पर की और यद्यपि मैं योग्य पात्र था, ये तो मैं नहीं कह सकता लेकिन मुझे उनसे बहुत मिला। और प्रयाग में फिर मैं एम०ए० करने के बाद, मैं वहाँ रह गया।

सबसे पहले मैंने एक साप्ताहिक पत्र में उप संपादक का कार्य आरंभ किया जिस साप्ताहिक पत्र को किसी समय पंडित मदन मोहन मालवीय जी ने स्थापित किया था।

पंडित कमलापति त्रिपाठी क्योंकि साहित्य प्रेमी हैं, स्वयं भी साहित्यिक हैं, राजनीतिक नेता तो हैं ही वह, बहुत पुराने और बहुत बड़े। लेकिन साहित्य में भी उनका बहुत प्रेम है और उनकी साधना भी अपनी है। तो कभी वह कविता सुनाने के लिए आग्रह करते थे मुझसे तो मैं सुनाता था। बड़ा आन्नद भी लेते थे।

तो जो मरदाना साहब जिनका जिक्र मैंने किया था। चन्द्रमा पर एक कविता थी। तो कहने लगे कि "व्हाई शुड वी फूल अवरसेल्फ एबाउट मेनिंग आल दिस टाइम" वो अंग्रेजी में बोले। क्योंकि, हालांकि हम अंग्रेजो से लड़ रहे थे लेकिन जब गुस्सा आता था तो अंग्रेजी में ही उसकी अभिव्यक्ति होती थी, तो उन्होंने कहा। अब पंडित कमलापति त्रिपाठी से रहा नहीं गया और उन्होंने उनको ऐसा डांटा कि- "तुम बड़े भारी क्रांतिकारी अपने को समझते हो और कविता के बारे में इतने नीरस हो, बस तुम चुप रहो, बोलो मत।" और बेचारे फिर ठंडे हो गये वह। तो कविताएँ भी होती रहती थीं।

एक और संस्मरण है बड़ा विचित्र सा। मेरी चारपाई और बाबू सम्पूर्णानन्द जी की चारपाई बराबर-बराबर ही थी। तो एक दिन मैंने देखा कि वह नींद में बड़ी जोर से चिल्लाए। और चिल्लाने के बाद में . .वय . . .वय . . . कुछ इस तरह से किया उन्होंने, जैसे चौक रहे हों बहुत ज्यादा। तो मैंने कहा- "बाबूजी क्या बात है।" तो बस उन्होंने उस समय इतना ही कहा- "नाइटमेयर-नाइटमेयर" अब उनसे ज्यादा बात करने की क्षमता वहाँ किसी में थी नहीं, इसलिए हम चुपचाप उस समय रह गए। फिर बाद में मैंने पूछा नाश्ते के समय कि- "बात क्या थी?" तो उन्होंने बताया कि- "मैंने एक विचित्र स्वप्न देखा।" स्वप्न यह था कि मैं हवाई जहाज से सफर कर रहा हूँ और मैं हवाई जहाज से गिर गया हूँ। तो मैं गिरते हुए वह सब कह रहा था "तो मैंने कहा कि- "अब देखिए न थोड़ी बहुत अपनी जान-पहचान फ्रायड और युंग और एडलर, यानी जो बड़े साइकोलोजिस्ट थे, उनके साहित्य से हो चुकी थी। तो एक नौसिखिये की तरह मैंने- "साइको एनेलिसिस" यानी मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने का प्रयत्न किया। तो मैंने कहा- "कहीं ऐसा तो नहीं है कि यह जो मिनिस्ट्री से अभी त्यागपत्र दिए गए हैं और जो नई मिनिस्ट्री बनी थी कांग्रेस की वह सब जो है, क्या अब समाप्त हो गयी तो उसका तो कुछ यह नहीं है प्रभाव? "कहने लगे- "नानसेंस-नानसेंस 'उन्होंने बस इतना ही कहा और बात यहाँ पर खत्म हो गयी।

अब वहाँ पर पंडित कमलापति त्रिपाठी ने कहा- "देखो तुम जो है न इसके पास तो रहते हो, लेकिन बहुत ज्यादा वाद-विवाद में मत इनसे पड़ना। यह थोड़ा-सा कभी नाराज भी हो जाते हैं। लेकिन कभी ऐसा मौका नहीं आया कि वह बहुत नाराज हों। बड़े प्रेम से समय कटता जाता था।

एक दिन हुक्म आया सरकारी कि मेरा तबादला काशी के जिला जेल से, आगरा के सेंट्रल जेल को कर दिया गया है। यानी जैसे कि हमारा प्रमोशन हो गया। हमारा स्टेट्स और भी ऊँचा हो गया कि जिला जेल से अब हम सेंट्रल जेल में चले गए। तो वह केन्द्रीय कारावास जो आगरे का था वह बहुत बड़ा माना जाता था। तो एक दिन, रात को हम वहाँ से गए। और गाड़ी का समय शायद नहीं था वहां बहुत

देर तक रहना पड़ा। तो वहां खुले आकाश के तले हम रहे। तो स्टेशन पर रात बितायें या पुलिस चौकी में बितायें, रात कहाँ बितायें, सवाल यह था। स्टेशन पर पड़े-पड़े अच्छा नहीं लगता था तो हमने कहा कि हम तो किसी एकांत स्थान में रहेंगे। तो उन्होंने कहा कि- "अच्छा तो फिर एकांत स्थान आपके लिए पुलिस चौकी के पास ही रहेगा।" वहाँ रखा।

इतने दिनों के बाद में खुले आकाश में तारे देखने का अवसर मिला। बहुत अच्छा लगा। अब मैं सोचता हूँ कि मनुष्य का एक मूलभूत अधिकार है, स्वतंत्र रहना, स्वाधीन रहना कि वह आकाश के तारों को देख सके। चारों ओर की प्रकृति का निरीक्षण कर सके। उस सौन्दर्य से अपने आपको रसान्वित कर सके। खैर एक जेल यात्री के नाते थोड़ा-सा ही अवसर मिला था। सवेरे को गाड़ी आयी और हम आगरे के लिए चले।

सफर का दिन था। मौसम लगभग यही मार्च यानी वसंत का। तो रास्ते में मैं क्या देखता हूँ कि सरसों के खेत रेल पथ के खूब फूले हुए थे। बहुत आन्नद आया। ऐसा लगा कि जैसे पीली ओढ़नी धरती माता की पुत्रियों ने धो कर के सुखा दी है। बहुत सुन्दर लगे और उसका आन्नद लेते हूए हम लोग आगरा पहुँच गए।

आगरा सेंट्रल जेल तो बहुत बड़ा था। वहाँ एक गोरा बैरक किसी समय में हुआ करती थी। यानी शायद एंग्लों इंडियन कैदियों के लिए रही होगी वह। तो वह खाली थी उस समय। तो हम को वहाँ रखा गया पहले।

यहाँ पर सम्पर्क मेरा हुआ बाबू शचीन सान्याल से। शचीन्द्र नाथ सान्याल बहुत बड़े क्रांतिकारी थे। और रास बिहारी बोस जो बाद में जापान चले गए थे और इनका देहली के बम कांड से भी संबंध माना जाता था। वह बहुत ही, यानी जिसको कहना चाहिए कि विश्वविख्यात क्रांतिकारी थे, तो यह उनके साथ रह चुके थे, उनके सहयोगी थे। इनसे बहुत से संस्मरण सुनने को मिले। और उन्होंने एक दिन अकेले में कहा कि- 'देखो मैं तुम को एक पता बताना चाहता हूँ एक चीज का कि हम लोगों के पास कुछ गुप्त धन भी रहता है। और उसको हम सुरक्षित किसी गुप्त स्थान में रखते हैं। तो मैं अबकी बार जीवित निकलूँ या न निकलूँ, मैं तुमको बता देना चाहता हूँ।" तो शचीन बाबू से मैंने कहा कि- 'देखिए न तो मैं आपके पथ का दावेदार हूँ और न मुझे इस रास्ते चलना है और न मुझे यह जानना है। उसका कारण है कि क्या मालूम कब नीयत खराब हो जाये। और मैं उस-धन का दुरुपयोग करूँ। तो मुझे आप बताइये मत। और इस विषय में अब फिर कभी मुझसे कुछ बात मत कीजिएगा।" वह तो साहित्यिक भी थे। लेखक भी बहुत बड़े थे। तो मैंने कहा कि- "हमारी साहित्य-चर्चा ही तक बातचीत सीमित रहे या आत्मीय संबंधों के बारे में या पारिवारिक, वह तो ठीक है लेकिन और कुछ नहीं।" तो वह थोड़ा-सा शायद मन में असंतुष्ट भी हुए होंगे। रुष्ट भी हुए होंगे, लेकिन प्रेम उनका रहा। अब उनके साथ ज्यादा दिन तक इसी तरह से रहने में, थोड़ा सा मुझे, ऐसा लगा कि कुछ अड़चन हो रही है।

और उधर एक बहुत बड़ी बैरक थी जिसमें कि दूसरे कैदी थे, राजनीतिक कैदी थे, जिन में से अधिकतर कम्युनिस्ट थे। और उनसे मेरा परिचय बहुत पुराना भी था। तो उन लोगों ने कहा कि- "वाह भई तुम तो गोरा बैरक में रहते हो जैसे मालूम होता है कि "ए" क्लास से भी सुपीरियर आनन्द से रह रहे हो। हम यहाँ पर पड़े हैं बैरक्स में। तो यहीं आ जाओ, अपना तबादला यहाँ करा लो।" मैंने अवसर देखा और मैं वहाँ चला गया। हालाँकि गोरा बैरक के एकांत में रह कर मुझे लिखने में बहुत सुविधा होती थी। बहुत-सी कवितायें मैंने वहाँ पर लिखी थीं। लेकिन अब उन लोगों का आग्रह था और मेरे मन में भी एक अड़चन पैदा हो गई थी, तो मैं वहाँ चला गया।

वहाँ मैं आपसे क्या कहूँ बहुत बड़ी बैरक थी। लेकिन वह भरी हुई थी बिलकुल। दो कतारें थीं चारपाइयों की और एक से एक सटी हुई चारपाई थी। एक करवट ले तो दूसरे की चारपाई हिल जाती थी। लेकिन वहाँ भी समय बहुत अच्छी तरह कटा। तो जिस रात को मैं वहाँ पहुँचा उन्होंने मुझे कहा कि वह कविता सुनानी चाहिए "आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे।" तो मुझे आश्चर्य हुआ। मैं तो राजनीति में पूरी तरह से दीक्षित भी नहीं हुआ था उस पथ को भी मैंने अपनाया नहीं था। वह तो एक मेरी भावुकता के कारण, मेरी संवेदना के कारण और साहित्य और स्वतंत्रता का क्योंकि अक्षुण्ण संबंध है इसलिए मैं राजनीति में था। देश में उस समय यही होना चाहिए और यही होता था। लेकिन मैं कोई राजनीति में रहने वाला प्राणी नहीं था। तो मैंने कहा कि ये लोग तो उसी में दीक्षित हुए हैं और जिसको कहना चाहिए कि बिल्कुल उसमें घुटे हुए हैं। इनको ऐसी भावुकता क्या आज सूझ गई कि मुझसे कह रहे हैं कि- "आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे, यह कविता अपनी सुनाओ।"

लेकिन आज मैं यह अनुभव करता हूँ कि मानवीय पक्ष, कोमल भावनाओं का पक्ष, हरेक के हृदय में होता है। और मैं आज कह सकता हूँ कि मेरा कविता पाठ जितना प्रभावपूर्ण उस रात को हुआ, शायद मेरे जीवन में फिर कभी नहीं हुआ। मैंने अनुभव किया कि जब मैं कविता सुना चुका, उन दिनों मैं जरा गा के सुनाता था, हाँ, लोगों को अच्छा भी लगता था। आज तो मैं सोचता हूँ मैं कैसा गाता होऊँगा क्योंकि अब तो मैंने बड़े-बड़े गाने वाले देखे हैं और उनके सामने तो आवाज भी नहीं खुल सकती और आज तो संकोच होता ही है। मैं गा के पढ़ता ही नहीं। उन दिनों मैं गा कर सुनाता था, खूब उच्च स्वर में खूब दिल खोल कर के खूब कंठ खोल कर के। तो वह कविता सुनने के बाद मैं लगभग पाँच मिनट तक निस्तब्ध मौन रहा। जिसको पिन ड्राप साइलेंस कहते हैं न बिलकुल वैसा और मैंने देखा कि न जाने सब कहाँ खो गए थे। खैर यह तो पाँच मिनट की बात थी, समाप्त हुई। फिर नियमित जीवन चला।

वहाँ से फिर हमारा तबादला हुआ राजस्थान में, आजकल अजमेर जिले में एक देवली जगह है। वहाँ पर पहले नजरबंद कैदियों के लिए शिविर थे। तो वे युद्धबंदी हुआ करते थे, इटैलियन उस समय। जब इटैलियन युद्ध से निकल गए, इटली निकल गया युद्ध से तो इटेलियन जो राजबंदी थे वहाँ से हटाये गए। तो हम लोगों को देवली डिटैंशन कैम्प में फिर रख दिया गया। यह कैम्प बहुत बड़ा था। भारत भर के बंदी जो थे, राजनीतिक, जो थोड़ा सा उग्र स्वभाव के और उग्र विचारों के और क्रांतिकारी माने जाते थे, वहाँ थे। उसमें तीन कैम्प थे। वहाँ पर बहुत से क्रांतिकारियों से अपना साथ रहा, जिनमें साहित्यिकों में सिरमौर महापंडित राहुल सांकृत्यान थे। बाबू जय प्रकाश नारायण जी भी वहाँ थे। और वहाँ पर अनेक लोग थे जिनसे कि संपर्क हुआ। लेकिन सबसे अधिक प्रभावित हुआ मैं उन क्रांतिकारियों से जो सिख थे और किसी समय गदर पार्टी के सदस्य थे। मेरी उमर अठाईस की पुरी नहीं हुई थी, हो रही होगी। लेकिन उनमें से अनेक ने छत्तीस-छत्तीस वर्ष जेल में अपना जीवन बिताया था। और कैसे लोग थे? अत्यंत मानवीय, अच्छे हृदय के, सच्चे, मधुर बोलने वाले। और जब उन लोगों से मैंने निकट का अपना संपर्क बनाया तो यह पाया कि यह साधारण लोग कितने महान थे। उनका नाम शायद इतिहास में न हो। लेकिन मैं आपसे कहूँगा कि उनके चरित्र का, उनके व्यक्तित्व का मेरे मन में आज भी एक स्थायी प्रभाव रह गया है।

जब एक बार अनशन हुआ, "हंगर स्ट्राइक" तो वे लोग भी शामिल हुए। उनसे हम लोगों ने प्रार्थना की, कि "आप वयोवृद्ध हो चुके हैं। पहले ही छत्तीस-छत्तीस साल और अट्ठाईस-अट्ठाईस साल और तीस-तीस साल आप जेल में रह चुके हैं। बाबा बैसाखा सिंह, बाबा रूढ़ सिंह, बाबा काबुल सिंह ऐसे लोग हैं। तो हमने कहा कि- "आप मत शामिल होइए हंगर स्ट्राइक में। हम नौजवानों को ही करने दीजिए।" तो उन्होंने कहा कि- "क्या हम अब सिपाही नहीं रहे?" और उन्होंने अनशन में सम्मिलित होने का अपना संकल्प कार्यान्वित किया। और वे शामिल हुए।

पन्द्रह दिन तक हमारा यह अनशन चला। और उस अनशन के दिनों में मैंने यह अनुभव किया कि अगर हम न खायें तो हम अस्वस्थ नहीं होते बल्कि अधिक स्वस्थ हो जाते थे। पानी हम पीते थे और रोज स्नान भी करते थे और नित्य क्रिया भी रोज होती थी। सब कुछ अच्छी तरह से चलता था। खाली डर एक ही चीज का लगता था कि कहीं ये दुष्ट "फोर्स फीडिंग" न करें। क्योंकि लिटाकर के चार आदमी चढ़ बैठते थे हाथ के ऊपर और चार आदमी पाँव पकड़ते थे और एक आदमी छाती पर बैठता था और नाक में से नली डाल करके फोर्स फीडिंग करने पर आमादा होते। तो हममें से कई तो भाग जाते थे। एक डाक्टर साहब थे। वह जानते थे कि बड़ा जोखिमपूर्ण कार्य है। तो वे कहते थे कहीं फूड पाइप में न जाकर विंड पाइप में चला गया और उसी में भोजन चला गया तो तत्काल मृत्यु हो जाती है। तो उन्होंने तो साइंस के अनुशासन के अनुसार कह दिया कि अगर तुम को करना ही हो फोर्स फीडिंग तो चुपचाप करवा लेना। लेकिन न करो तो अच्छा है। हमको करना ही है तो कहा- " अच्छी बात है मैं लेट जाता हूँ।" लेकिन हम लोग तो इतने वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले नहीं थे, तो भाग जाते थे।

खैर किसी तरह से मैं एक दिन काबू में आ गया। पन्द्रहवां दिन था। और मेरा फोर्स फीडिंग हुआ तो चार आदमी मेरे दोनों हाथों पर बैठ गए, चार आदमी पाँवों पर बैठ गए, चार-चार आदमी और एक आदमी छाती पर चढ़ गया और नली डाली और मुझे फोर्स फीडिंग कर दिया गया। उस समय मैं कितना अपमानित अनुभव करता था अपने आपको, कितना मुझे क्रोध आया मैं कह नहीं सकता और सौभाग्य से अगले दिन सरकार ने हमारी मांगें मान लीं और हम को फिर अपने-अपने जिलों में भेज दिया गया। यानी "भेज दिए जायेंगे", ऐसा निर्णय हो गया।

देवली में बड़ा अच्छा समय बीता क्योंकि वह राजस्थान में है। चारों ओर थोड़ा-सा, राजस्थान में रेगिस्तान का भी प्रभाव है चारों ओर तो बड़े अच्छे सुंदर पक्षी आते थे। वहाँ मैंने यह देखा कि यहाँ पर प्रकृति ने एक रंग की कमी कर दी है, उसे अपने परिधान के द्वारा पूरा करते हैं। वहाँ के पक्षी बड़े रंग बिरंगे होते हैं। वहाँ के पक्षी बहुत मधुर बोलते है और बाद में तो मुझे मालूम हुआ कि वहाँ की मेंहदी भी बहुत रंग लाती है। तो इस प्रकार अभाव की कैसे पूर्ति, प्रकृति और मनुष्य परस्पर करते हैं, यह मैंने वहाँ पर देखा। बहुत आनन्द से समय बीता। वहाँ पर मैंने लिखा भी बहुत। बहुत लिखा। और दो तीन मेरी पुस्तकें जो हैं वहाँ लिखी गयीं। बाद में वे प्रकाशित हुईं। जिनमें 'मिट्टी और फूल" एक "मनोकामना" खण्ड काव्य है। बहुत अच्छा समय बीता। उसके बाद हम जिले में भेज दिये गए।

अब मैंने जैसा कहा था कि हैडमास्टर साहब जो हमारे थे बाबू लक्ष्मीनारायण माथुर, उनके सुपुत्र आई० सी० एस० हो गए थे, उनका चुनाव हो चुका था। बस पूर्वाभ्यास के लिए उनको थोड़ा शिक्षण लेना था। तो जब मैं खुर्जा में नजरबंद था जहां मेरी आरंभिक जो हाई स्कूल तक की, इंटरमीडिएट तक की पढ़ाई हुई थी, वहीं मुझको रखा गया था और पुलिस जो है, देख-रेख रखती थी कि कौन मिलने आता है ? क्या है ? तो एक रात को जगदीश चन्द्र माथुर आ गए। बातचीत हुई बड़े पुराने हम मित्र थे। उस समय तक तो सच कहूं कि हमको स्वराज प्राप्त होगा ऐसी कल्पना भी नहीं थी तो मैंने कहा कि –"भई मन नहीं माना। इतने पुराने मित्र हैं, हम लोग, तुम यहाँ हो तो मैं मिलने को चला आया।"

वहाँ की एक और बड़ी बढ़िया घटना आपको मैं बताता हूं कि जो सी. आई. डी. का सिपाही मेरे पीछे लगाया था वह बेचारा अंग्रेजी नहीं जानता था। लेकिन अंग्रेजी न जानने के अपने इस दोष को वह छिपाये हुए था। और वह बताता नहीं था कि उसको अंग्रेजी नहीं आती। लेकिन उसको जो हिदायतें आतीं थीं वे अंग्रेजी में आती थीं। तो वह बेचारा मुझी से पढ़वाता था। तब मुझे यह मालूम हो जाता था कि मेरे विषय में क्या लिखा गया ? इसको क्या आदेश दिया गया है ? इत्यादि इत्यादि। और मैं अपने लगभग दो वर्ष का यह जेल जीवन अपने और इस जेल जीवन के विषय में मैं यही कहूंगा कि मैं तो एक साहित्यिक

अभिरुचि का, साहित्य का अभ्यास करने वाला, भावुक प्रकृति का नौजवान था। मुझे कुछ ज्यादा ही महत्व सरकार ने दे दिया कि इतने दिनों नजरबंद रखा और जेल में डाले रहे और कुछ जानें क्या समझा ?

खैर, अब जब उन्नीस सौ तैंतालीस का समय आया तो सरकार ने उन लोगों को छोड़ दिया जो "सोवियत रशा' के प्रति थोड़ा-सा प्रेम का, और अनुराग का रुख रखते थे,। उनमें मुझको भी समझा गया क्योंकि मैं प्रगतिशील लेखक संघ का जरा-सा उच्चाधिकारी बन चुका था पहले ही, उन दिनों। और एक पत्र भी "रूपाभ" निकाल चुके थे पन्त जी के साथ में हम लोग। मैं और पन्त जी, हम उसके संपादक थे। और उसमें प्रगतिशील रचनाएं बहुत छपती थीं। हालांकि मेरा तो प्रयत्न यही था कि वह सब को मिला जुला एक राउंड टेबुल जैसा मंच हों जिसमें सब लोग कह सकें। और मैंने इस दिशा में प्रगति भी की। और कुछ उपलब्धि भी मुझे मिली। सबको मिला कर के रखते थे। लेकिन उसको प्रगतिशील पत्र माना जाता था। यह इलाहाबाद में जब मैं रहता था उन्हीं दिनों की बात है। तो मुझे भी यह समझा गया यह प्रोग्रेसिव में से है तो अब इतना खतरनाक नहीं है क्योंकि रूस की और इनकी संधि हो गयी थी, मित्र राष्ट्रों की। तो हमको छोड़ दिया गया। उन्नीस सौ तैतालीस की बात है।

अब भगवती चरण वर्मा, जो बंबई पहले ही आ चुके थे बाम्बे टाकीज में संवाद लेखक के रूप में, कहानी लेखक के रूप में और यह तो मैं बताने की जरूरत नहीं रखता कि वह कितने बड़े साहित्यिक थे, वह तो बहुत बड़े साहित्यिक थे। उनको किसी तरह से यह पता चला कि मैं अब नजरबन्दी से रिहा कर दिया गया हूं और इधर बाम्बे टाकीज को किसी कवि की आवश्यकता थी जो गीत-लेखन कर सके। तो उन्होंने मेरा नाम सुझाया होगा और यहा के लोगों ने कहा "बस आप जा कर के उनको ले आइए। अपने आप तो ये लोग आयेंगे नहीं आप जाके ले आइये।" तो भगवती बाबू मुझे लेने के लिए इलाहाबाद आये। उन दिनों में बनारस चला गया था कुछ दिनों को। तो बनारस आये। बनारस से इलाहाबाद आये और मैंने कहा कि – 'फिल्में" ? तो भगवती बाबू कहने लगे –"हम भी तो हैं, और बाम्बे टाकीज का वातावरण ऐसा ही है जैसा यूनिवर्सिटी में था, तुम्हारे होस्टल का वातावरण था। तो तुम डरते काहे को हो चलो।" मैंने कहा - "कभी लिखा नहीं फिल्म के लिए" तो कहते लगे, "अरे सब हो जायेगा। चलो।" तो मुझे वह लाये। क्योंकि उस समय स्वराज भवन पर भी सरकारी ताला लगा हुआ था। काशी विद्यापीठ पर भी ताला लगा हुआ था तो और कुछ करने के जो दो विकल्प हो सकते थे ये दो वे दोनों ही मेरे सामने नहीं थे। तो मैं भगवती बाबू के साथ, बम्बई चला आया। यहाँ फरवरी के महीने में मैं बम्बई पहुँचा।

तो सत्रह फरवरी को हम लोग पहुँचे थे, दोपहर बाद के समय करीब तीन बजे-ढाई बजे। पहुँचे वहाँ पर बम्बई टाकीज मलाड, तो बातचीत के लिए मुझे बुलाया गया। श्रीमती देविका रानी उस समय, उसकी निदेशिका, पूरी संचालिका थीं। तो उनसे बातचीत हुई और उन्होंने मुझे बातचीत के बाद कहा कि –"एक बात, कब चले थे आप ? सत्रह तारीख तो आज है, लेकिन आप चले कब थे, हमारे बुलावे पर ? " तो मैंने कहा "पन्द्रह से चले थे हम लोग।" तो कहने लगीं –"पन्द्रह से आपकी नियुक्ति हो गयी।"

तब मैं बम्बई टाकीज में आया। और वहाँ पर इस तरह से फिल्म जगत में प्रवेश मुझे मिला। गीत-लेखन का अवसर मिला। और गीत-लेखन के इस कार्य में बहुत कुछ सीखने को मिला। क्योंकि कविता तो हमारी अपनी भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति होती थी। इसमें तो हम अपना ही निवेदन करते थे। आत्मनिवेदन होता था। अपनी बात कहते थे। लेकिन फिल्म के गीत में तो हम किसी चरित्र के लिए, किसी पात्र के लिए, किसी परिस्थिति के लिए, कहानी के किसी मोड़ के लिए, लिखते हैं। और वह गीत जो है, केवल वैयक्तिक नहीं होता है। वह तक तो जैसे नाटक के लिए कोई गीत लिखा जाय इस तरह का गीत होता है। तो यह सीखने को मिला कि भई अब तक तो हम केवल वैयक्तिक अभिव्यक्ति का अभ्यास करते थे लेकिन अब ऐसी अभिव्यक्ति भी सीखनी चाहिए जो किसी और की हो सकती है स्वाभाविक रूप से। तो यह फिल्म सम्बन्ध हुआ।

साहित्यिक कार्य चलता ही रहा। यहाँ भी "नया साहित्य" एक पत्र निकलता था और यह भी प्रगतिशील लोगों का पत्र था और बम्बई से ही निकलता था। तो संपादक मंडल में इसका भी मैं संपादक था, बम्बई में। यह कार्य मेरा निरंतर होता रहा। यहाँ आकर के भी कविताओं के संग्रह मेरे छपते चले गए। और इस तरह साहित्य-कार्य कभी रुका नहीं।

फिल्म में कई जगह काम करके, बहुत सी जगह काम करके, बहुत से संवाद भी लिखे, लेकिन अधिकतर गीत लिखे।

उन्नीस सौ तिरेपन का समय आ गया। उन्नीस सौ तिरेपन में यहाँ पर जो मैंने कहा था, यह केन्द्रीय कार्यालय था स्वराज भवन में, वहाँ हमारे सहयोगी डा० केसकर भी थे। तो डाक्टर केसकर तब प्रसारण और सूचना के जो मंत्री थे उस समय तो उन्होंने कहा कि –"आप फिल्म में बहुत दिन रह लिये। अब आकाशवाणी को आपकी आवश्यकता है। आप आकाशवाणी में आ जाइये।" तो आकाशवाणी में मैं जून आठ उन्नीस सौ तिरेपन में आया और उसी दिन से मेरी नियुक्ति हो गई। और पहला काम जो मुझे सौंपा गया वह यह था कि सुगम संगीत का मैं प्रोड्क्शन संभालूं। क्योंकि गीत-लेखन का अनुभव हो चुका था और मेरे कई कविता संग्रह भी छप चुके थे। इसलिए मुझे इसके उपयुक्त माना गया। लेकिन सच बात तो यह है कि मैं संगीत में निष्णात नहीं था। लेकिन कई संगीत जानने वालों के सहयोग से आकाशवाणी में काम करने का अवसर पाकर और इस अवसर के कारण मुझे सुगम संगीत के प्रोड्क्शन का भी अनुभव हो गया और उन दिनों काफी काम किया।

तो उन्नीस सौ तिरेपन से जो आकाशवाणी से सम्बन्ध स्थापित हुआ वह निरंतर और घनिष्ठ होता चला गया। मैं दिल्ली भी गया इस कार्य के लिए। और फिर जब यह सोचा गया कि 'विविध भारती' नाम का कार्यक्रम आरंभ किया जाय, जो एक सामान्य श्रोता के लिए जो, जो कि विशेष वर्गो के लिए न हो बल्कि एक सामान्य श्रोता के लिए हो, जो हरेक क्षेत्र में पाये जाते हैं, तो एक ऐसा आरंभ करना चाहिए। तो बड़ी कृपा थी मुझ पर, उन दिनों डा० केसकर तो मंत्री थे। उन दिनों सचिव थे, मुख्य सचिव थे इस मिनिस्ट्री में, लाट साहब,—पी. एम. लाट साहब, और जगदीश चन्द्र माथुर थे महानिदेशक। तो उन्होंने कहा कि –"यह काम हम आपको सौंपते हैं। आप योजना बनाइए, अपनी सब तैयारियां कीजिए।" और यह एक कार्यक्रम 'विविध भारती" शुरू होने की परिकल्पना सामने आ गयी।

उस समय तक "विविध भारती" नाम नहीं सामने आया था। "आल इंडिया वेराइटी प्रोग्राम" कि जो एक "आल्टरनेट प्रोग्राम" होगा सब रीजन के लिसनर्स का। ऐसा प्रोग्राम होना चाहिए। इसमें अधिक मनोरंजन बीच-बीच में थोड़ा बहुत बोध का भी पुट रहे, थोड़ी बहुत सूचना भी रहे। इस तरह का एक कार्यक्रम हो जो सामान्य श्रोता के लिए हो। इसकी योजना थी। "आल इंडिया वेराइटी प्रोग्राम" के रूप में यह परिकल्पित पहले किया गया था। फिर सोचा गया "भई यह नाम तो नहीं चल सकता तो क्या किया जाय ? इसलिए 'विविध भारती' नाम मैंने जो सुझाया वह स्वीकार कर लिया गया। और इस नाम से यह कार्यक्रम जो है आरंभ यहाँ पर बम्बई में पहले हुआ।

उन्नीस सौ इकहत्तर तक और भी कई तरह के कार्य करते हुए आकाशवाणी में, उन्नीस सौ इकहत्तर, इकत्तीस दिसम्बर को मैं आकाशवाणी की सेवा से निवृत्त हुआ। मैंने अवकाश लिया और इतने दिनों का संबंध जो आकाशवाणी के साथ रहा इसके लिए विषय में मै कहूँगा कि मुझे इतना अवसर मिला सीखने का, इतने लोगों के साथ काम करने का मुझे अवसर मिला, उसमें भी बहुत कुछ सीखने को मिला। और मेरे जो सहयोगी रहे वे बहुत ही अच्छे सहयोगी थे और उन सहयोगियों के कारण ही, मैं इस कार्य को पूरी तरह निभा सका। □

भारतीय विद्या विशारद :
पं० जनार्दन भट्ट

हिन्दी गद्य के निर्माण में अपने अद्वितीय योगदान के लिए स्मरणीय स्वर्गीय पं० बालकृष्ण भट्ट के भारतीय विद्या विशारद सुपुत्र स्वर्गीय जनार्दन भट्ट की जीवनगाथा, अनेक मर्मस्पर्शी घात-प्रतिघातों से भरी-पूरी है, जिन्होंने अपनी साधना और कृतित्वों के अनुपात में अपने समय और समाज से बहुत थोड़ा ही प्रतिदान पाया, परन्तु बिना किसी दुविधा के आगे-आगे कार्य करते गये, कहीं पछताये नहीं। इनका जन्म 25 दिसम्बर, 1989 ई० को, इलाहाबाद में हुआ। और निधन 12 सितम्बर, 1990 ई० में।

भट्ट जी हमारी प्राचीन कार्य-संस्कृति की शेष प्राय कड़ियों में से एक थे। और प्रेरित करने वाली जानकारी है कि आपने 95 वर्ष की उम्र में "भारतीय संस्कृति" जैसे गंभीर विषय पर मूल्यवान ग्रंथ लिखा।

"अशोक के धर्मलेख" (1923), अपने विषय पर लिखित हिन्दी की पहली पुस्तक तो है ही आपको आर्कियोलोंजी के क्षेत्र में विश्व-समाज में भी प्रतिष्ठित कराया। 1927 में बौद्धकालीन भारत प्रकाशित हुई। 'संस्कृत' कवियों की अनोखी सूझ' एवं 'गीता सार' जैसे ग्रंथों के भी आप प्रणेता हैं। भट्ट जी भारतीय विधा के ज्ञाता के रूप में आदरपूर्वक याद किये जाएँगे। भारतीय संस्कृति के प्रति अटूट आस्था के आप मानो प्रतीक ही थे।

उनकी यह अनुभवपूर्ण विस्तृत रिकार्डिंग, श्री सी० डी० त्रिपाठी, संस्कृति-स्नेही, विचारक एवं भारतीय प्रशासनिक अधिकारी तथा डा० राजेन्द्र कुमार माहेश्वरी, आकाशवाणी के उपमुख्य प्रोड्यूसर उच्चरित शब्द, साहित्य-सेवी के साथ हुई बातचीत के रूप में 21 तथा 22 अक्तूबर, 1988 को दिल्ली में की गई थी, और हमारे संग्रहालय में संरक्षित है। ❑
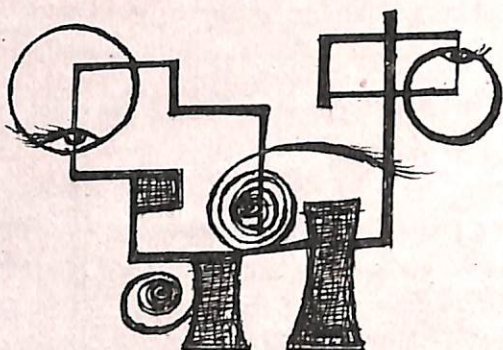
।।भारतीय विद्या विशारद।।

❑

प्र० : सबसे पहले हम आपके पूज्य पिता पं० बाल कृष्ण भट्ट से ही आरम्भ करें, जैसा मैं अभी कह रहा था कि वे हिन्दी भाषा के, हिन्दी के, हिन्दी साहित्य के निर्माताओं में उनकी गणना की जाती है और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाद थोड़े से लोगों का जो एक ग्रुप बना उसमें वे बहुत ही विशिष्ट स्थान रखते थे। तो आपके बार में कुछ सवाल पूछने से पहले, आपको उनकी सबसे पुरानी स्मृति क्या है वे आप बतायेंगे?

उ० : पिता जी के मुख से भी और लोगों से भी मैंने सुना कि जब उनकी माता मरणासन्न थीं तो यह उनके बड़े पुत्र थे और हमारे चचा थे यानि दो भाई थे -बाल किशन भट्ट और बाल मुकुंद भट्ट। तो माता ने उनको बुला के कहा कि–"बेटा ऐसा है हमारे परिवार में, हमारे जो पितामह थे और जो चचा थे वे एक व्यापारी थे, दुकान करते थे और अच्छी दुकान थी उनकी। जो मेवा, मसाला है, मेवा के थोक व्यापारी थे वे। लेकिन हमारी जो माता जी, उनकी जो माता जी थीं उनको यह व्यापार का काम पसन्द नहीं था, क्योंकि वे एक बड़े पंडित घराने की थीं। एक विद्वांन घराने की थीं तो वे चाहती थीं कि हमारा लड़का भी विद्वान हो। तो हमारे पिता

जी को बुला कर के उन्होंने कहा कि—"बेटा हम तो जा रहे हैं लेकिन हम तुमको शिक्षा देते हैं, उपदेश देते हैं, हमारी सीख है कि तुम दुकान में नहीं बैठना, विद्या पढ़ना और जहाँ तक हो सके, अपने नाना के घर में रहना क्योंकि वहाँ का वातावरण जो है वह शिक्षा का है, विद्या का है तो वह अच्छा रहेगा। तो उन्होंने उसका पालन किया जो उपदेश उन्होंने दिया, जो शिक्षा दी जो बात कही उसका उन्होंने अक्षरशः पालन किया। वे नाना के घर में जाकर के रहने लगे और वहीं पर संस्कृत का अध्ययन शुरू किया। संस्कृत का अध्ययन जो है उन्होंने एक गुरु थे-पं० मदन मोहन मालवीय के चचा पं० गदाधर मालवीय . . . . ।

प्र० : इलाहाबाद में ही?

उ० : इलाहाबाद में। तो उनसे पढ़ने लगे और उनको बहुत प्यार के साथ पढ़ाया। जैसे अपने पुत्र को पढ़ाता कोई वैसे ही उनको पढ़ाया। संस्कृत का जो उनको चस्का लगा, जो उनको शौक लगा और उन्हीं की, मालवीय जी की प्रेरणा से और उनके उत्साह देने से वहाँ रहकर के वे संस्कृत का अध्ययन करने लगे। कहने का मतलब यह है कि वे विद्या-अध्ययन करने लगे दुकान की लाइन में नहीं गए।

प्र० : अपनी माता की प्रेरणा से?

उ० : अपनी माता की प्रेरणा से। परिणाम यह हुआ कि जब बहुत लाख के, उस समय कई लाख के आसामी हो गए थे तब उनके पिता जी के पिता ने कहा, हमारे पितामह ने कि—"तुमको इसका कुछ भी हिस्सा नहीं मिलेगा दुकान में बैठो, दुकान में भाग लो और नहीं तो तुमको कुछ भी हिस्सा नहीं मिलेगा। उन्होंने कहा कि हमको हिस्सा नहीं चाहिए। हम विद्या-अध्ययन करेंगे। तो विद्या अध्ययन करते रहे और विद्या प्रेम का एक उदाहरण है कि परवाह नहीं की धन की, और फिर आखिर में कुछ भी हिस्सा उसमें से नहीं मिला। यह अलग अपना शिक्षा ग्रहण करने के बाद, जब कैरीयर-अपना जीवन में प्रवेश किया तो शिक्षक हो गए, टीचर हो गए संस्कृत के स्कूलों में और कुछ ट्यूशन भी करने लगे। मतलब इसका यह हुआ कि विद्या प्रेम उनको इतना था कि धन की उन्होंने परवाह नहीं की।

प्र० : वे संस्कृत के शिक्षक हुए ?

उ० : संस्कृत के शिक्षक हुए।

प्र० : लेकिन हिन्दी की तरफ उनका रुझान फिर कैसे हुआ?

उ० : फिर जब वे बड़े हो गए तो वहाँ पर कुछ विद्यार्थी थे जैसे हर एक जगह पर होता है, कुछ विद्यार्थी इनके मित्रों में से थे, कई मित्र थे उनमें से दो तीन बड़े अच्छे वकील हो गए। मुंशी राम प्रसाद, मुंशी हनुमान प्रसाद, मुंशी ज्वाला प्रसाद और इसी तरह के पं० शिव नाथ मिश्र थे। ऐसे तीन चार आदमियों ने और भी कई, उनका नाम मुझे नहीं मालूम है, मिल कर के उन्होंने एक संस्कृत, हिन्दी प्रवर्धिनी सभा स्थापित की। उसमें यह तय हुआ कि एक पत्र निकाला जाए। इत्तफाक की बात है कि उसमें जो मुंशी हनुमान प्रसाद थे वे बनारस के रहने वाले थे। और बड़े प्रतिष्ठित घराने के थे। इलाहाबाद में हाइकोर्ट की वकालत छोड़ कर के इलाहाबाद में, जहाँ गुड़ की मंडी है, अनाज की मंडी भी है, उसके पास ही उन्होंने एक बड़ा मकान खरीद लिया और गुड़ की मंडी पूरी खरीद ली। वहाँ वकालत करने लगे। तो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जब आते थे तो उन्हीं

के यहाँ ठहरते थे। तो लड़कों ने जाकर, जो उस ग्रुप में थे, वे जाकर के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से मिले कि मैं ऐसा एक पेपर निकालना चाहता हूँ उसका नाम 'हिन्दी प्रदीप" होगा। आप उसके लिए कुछ आशीर्वाद दीजिए। तो उन्होंने कहा "ठीक है।" और उसी समय उन्होंने बनाया उसका जो मोटो था सिद्वान्त रूप से और हिन्दी प्रदीप में पहले पेज पर टाइटल पेज पर वह हमेशा छपता रहा था :

"शिव सरस देश सनेहे पूरित परिणत भए आनन्द भरे
बसि दुसह दुर्जन वायु सौ दीप समतल नहिं टरै
सूझै विवेक विचार उन्नति कुमति सब या में जरै
हिन्दी प्रदीप प्रकाश मूरखता भारत तब हरै।"

यह भारतेन्दु जी ने उसी समय बनाया और बना के दे दिया। और कुछ कविताएँ भी पहले पहले अंक में कुछ भारतेन्दु जी की कविताएँ भी हैं। हिन्दी के सम्बन्ध में, हिन्दी के प्रचार के सम्बन्ध में। शायद इसमें यह भी है कि "काबुल गए तुरक होइ आए, बोले बोल पठानी, आब आब का पुतउ मर गए खटिया टर रहा पानी।' कुछ इसमें औरं भी है।

प्र० : बाबा वह हिन्दी प्रदीप के और आपके पूज्य पिता जी के बारे में हम कुछ बाद में पूछेंगे थोड़ा विस्तारपूर्वक पूछेंगे। लेकिन पहले हम आपकी जो बचपन की कुछ स्मृतियाँ हैं उनके बारे में थोड़ा-सा पूछना चाहते थे जैसे कि आपकी पढ़ाई कहाँ हुई और कैसे शुरू हुई?

उ० : ऐसा है कि वहाँ जब मेरा यानी श्रीगणेश विद्यारम्भ जब हुआ तो पहले पाटी होती थी उसमें श्रीगणेशाय नमः लिखाया जाता था लड़कों का हाथ पकड़कर, ऐसे श्रीगणेशाय नमः। तो हमारा विद्यारम्भ जब हुआ तो पाटी वगैरह खरीदी गई और पिता जी ने अपने हाथ से हमारे हाथ से श्रीगणेशाय नमः लिखा। उसके बाद एक हमारे मोहल्ले में, जहाँ हमारा मकान है, वहाँ हरदेव गुरु का पाठशाला है . . . ।

प्र० : यह किस मोहल्ले में मकान है ?

उ० : अहियापुर में। तो वहाँ पर हरदेव गुरु की पाठशाला बड़ी प्रसिद्व है। मेरा ख्याल है कि पं० मदन मोहन मालवीय भी उसमें विद्यार्थी रह चुके हैं। संस्कृत की पढ़ाई वहाँ पर होती थी और वे हरदेव गुरु बड़े विद्वान भी थे और साथ ही कुछ तपस्वी भी थे। एक खत्री थे वहाँ के एक अच्छे महाजन थे उन्होंने अपना मकान एक छोटा-सा मकान जो है वह उसके पाठशाला के लिए दे दिया। मैं भी गया तो मैं भी विद्यार्थी के रूप में वहाँ पर कुछ दिन पढ़ने लगा उसके बाद फिर घर ही में पढ़ता रहा-पिता जी पढ़ाते रहे। एक पंडित भी आता था वह भी पढ़ा देता था। तो संस्कृत का प्रेम उन्होंने मेरे मन में सुनते-सुनते उनकी बातों को सुनते-सुनते, उन्होंने अमरकोष हमको रटा दिया और भी बहुत-सी चीजें श्लोक बहुत से रटा दिए। संस्कृत का प्रेम मुझ को तभी से लगा। और फिर मैं स्कूल में भरती हो गया। प्राच्य पाठशाला एक स्कूल था वहाँ पर पिता जी जो हैं संस्कृत के पंडित थे, संस्कृत के प्रोफैसर। उस समय इंटरमीडिएट तक था वह कालेज। और रामानन्द चटर्जी उसके प्रिंसीपल थे। हम भी उसी स्कूल में भरती हो गए और अंग्रेजी की पढ़ाई जैसे होती है सबकी और मैट्रिक तक वहाँ पर पढ़ा उसके बाद।

प्र० : मैट्रिक आपने किस सन् में किया होगा? 1905-6...?

उ० : ऐसे ही होगा 5-6 क्योंकि मुझे याद तो नहीं।

प्र० : क्योंकि 1905 में तो आप सोलह साल के रहे होंगे, उसके दो एक साल बाद ही किया होगा।

उ० : मेरा ख्याल है मैं, मेरी उम्र जो है कम लिखाई गई थी तो द्वारका प्रसाद चतुर्वेदी जी अभी पं० चतुर्वेदी जी हैं, इनके बाबा द्वारका प्रसाद चतुर्वेदी वे पिता जी के बहुत अच्छे मित्र थे अक्सर पिता जी के पास आया करते थे और खूब साहित्यिक बातें हुआ करती थीं। तो वे सिविल सर्जन जो था उस समय-अंग्रेज था उसके वे हैड क्लर्क थे, असिस्टेंट जो कुछ भी। तो वे मुझे ले गए और अपने प्रभाव से हमसे पैसा भी नहीं लिया और सर्टिफिकेट दे दिया। "ही इज बोर्न आन सिक्स्टीन–शायद मैं 17 बरस का रहा था या साढ़े सोलह बरस का रहा होऊँगा। तो करीब सोलह और सत्रह के बीच में मैट्रिक पास किया और उसके बाद फिर इंटरमीडिएट में हो गए। पिता जी के यहाँ पढ़ने लगे। रामानन्द चटर्जी, उस समय रिटायर हो चुके थे, रिटायर होने के बाद माडर्न रिव्यू निकालने लगे थे। माडर्न रिव्यू बहुत दिनों तक निकला और ऐसा पेपर हमने आज तक देखा नहीं।

प्र० : वह बहुत बढ़िया निकलता रहा। उस समय इलाहाबाद में कितने स्कूल थे?

उ० : उस समय स्कूल देखिए एक तो गवर्नमेंट स्कूल था और एक क्रिश्चियन का स्कूल था, एक एंग्लो बंगाली स्कूल था, एक कायस्थ पाठशाला और सी ए वी हाई स्कूल। एक शिवनाथन मिश्र थे। वे बड़े प्रतिभाशाली आदमी थे और कुछ न कुछ किया करते थे, उत्साही आदमी थे और उन्होंने एक स्कूल खोला। लोग उसको शिवनाथन स्कूल कहते थे, क्योंकि उन्होंने स्थापित किया था, बल्कि उसका नाम था सी ए वी हाई स्कूल। सिटी एंग्लो वर्नाकुलर हाई स्कूल। इस तरह से उसका नाम था। बाद को अभी वह कालेज हो गया है। आज तो बहुत बड़ा हो गया होगा। एक वह स्कूल था। लेकिन वह इन द मेकिंग था।

प्र० : यानी पाँच या छह ऐसे हाई स्कूल थे। वह मैट्रिक का इम्तेहान होता कहाँ से था?

उ० : यह इलाहाबाद यूनिवर्सिटी करती थी।

प्र० : लड़कियों का कोई हाई स्कूल नहीं था?

उ० : नहीं कोई भी नहीं था। उसकी भी एक हिस्ट्री है कि कैसे लड़कियों का स्कूल स्थापित हुआ। एक गर्ल्स हाई स्कूल था-क्रासेड गर्ल्स, क्रासरेट कोई कलैक्टर वगैरह रहे होंगे उनके नाम से। लेकिन बहुत दूरी पर था। कोई जाता-वाता नहीं था। सिविल लाइन्स के जो कुछ लोग थे, अंग्रेजी ढंग के आदमी वे उसमें अपनी लड़कियों को भेजते थे। बाद में शायद उसमें कुछ और लोग भी जाने लगे। बाकी लड़कियों का कोई स्कूल नहीं था। लड़कियों की कोई पढ़ाई भी नहीं होती थी।

प्र० : यानी लड़कियों को कोई स्कूल भेजता ही नहीं था?

उ० : कोई भेजता भी नहीं था और कोई स्कूल भी नहीं था। बाद को तो कई स्कूल, अब तो कालेज हो गया है लड़कियों का यानी बी० ए०, एम० ए० तक की पढ़ाई होने लगी है कालेज में। लेकिन उस समय लड़कियों का कोई स्कूल नहीं था और लड़कियों की पढ़ाई भी नहीं होती थी।

प्र० : 1905-6 की बात कर रहे हैं।

उ० : जी हाँ 1905-6, 1910-11 तक की।

प्र० : तो माने लड़कियों की शिक्षा होनी चाहिए, ऐसी कोई जागृति थी ही नहीं? कुछ लोग सोचते ही नहीं थे क्या?

उ० : देखिए, विस्तार हो जाएगा। मिशनरी जो थे क्रिश्चियन मिशनरी स्त्रियाँ जो कुछ उसमें से यूरोपियन भी होती थीं कुछ इंडियन भी होती थीं। वे कुछ इंटीरियर में आकर के मोहल्लों में कोई एक छोटा-सा स्कूल खोल देती थीं। उनका ध्येय था ईसाई बनाना। तो बस उसमें हमारी बहनें भी थोड़ी गईं। पढ़ना-लिखना आ जाता था। शिक्षा के लिए लोग भेजते भी नहीं थे और कुछ उतनी पिपासा भी नहीं थी पढ़ाने की लड़कियों को।

प्र० : लोगों में इस तरह की अवेयरनैस या जागृति कब आई?

उ० : इलाहाबाद में एक चंद्रकांत बोस करके थे। वे एकाउंटेंट जनरल के आफिस में हैडक्लर्क थे। या ऐसे ही कुछ थे। उनकी एक बहन थी विधवा। वह ईसाई स्कूल में जैसे मैंने बताया न कि ईसाई स्कूल खोले हुए थे, उसमें जाया करती थीं, पढ़ती थीं, तो ईसाईयों ने उसे बरगला कर के भगा दिया अपने साथ ले गए और उसको ईसाई बना लिया। तो चंद्रकांत बोस को बड़ा धक्का लगा। बहन थी, विधवा थी, तो उन्होंने चाणक्य की तरह . . .। चाणक्य ने चुटिया खोल ली थी, उसका भी किस्सा है. . . । चाणक्य जो थे वे विद्याध्ययन समाप्त करके विवाह करने के लिए जा रहे थे यह किस्सा आपको मालूम होगा . . . ।

प्र० : किस्सा तो मालूम है। बोस का बताइए, चाणक्य का तो मालूम है।

उ० : बोस ने भी प्रतिज्ञा की थी कि हम जितने भी स्कूल हैं इलाहाबाद में मिशनरियों के उनको बन्द कर के रहेंगे। उनको मालूम पड़ा कि हमारे मोहल्ले में भी अहियापुर में एक स्कूल है वह किसी ने हमको बतलाया कि यहाँ के भट्टजी हैं इनके पास जाइए यह आपको सहायता करेंगे। वह आए, अपना परिचय दिया। उन्होंने कहा कि–"ऐसा-ऐसा है, हम यहाँ पर एक स्कूल खोलना चाहते हैं और यह जो मिशनरियों का स्कूल है, इसको मैं बन्द करना चाहता हूँ।" हाँ ठीक है बहुत अच्छा। इत्तफाक से पुरूषोत्तमदास टण्डन उस समय पढ़ा करते थे। स्टूडेंट्स थे शायद लॉ के विद्यार्थी थे कि बी० ए० के थे तो पिता जी ने कहा कि–"देखिए बोस ने तो वही हाल बतलाया कि हमारी विधवा बहन है उसको ईसाई बना लिया है। हम चाहते हैं कि जितने मिशनरी स्कूल हैं सब बंद किए जाएँ और आप के यहाँ भी जो ये हैं इसको भी बंद कराना चाहता हूँ। सो आप इसमें सहायता करें।

प्र० : बन्द कराना चाहते हैं मतलब उसकी जगह अपना स्कूल खोल के ?

उ० : अपना स्कूल खोल के। तो उसका यह हुआ कि नाम क्या रखा जाए। तो पिता जी ने उसका नाम "गौरी पाठशाला" रखा यह गौरी पाठशाला आजकल बी० ए० तक हो गयी है। बी० ए० की पढ़ाई हो रही है और शुरुआत हुई। इसमें मेरी छोटी बहन मुझसे छोटी थी और तीन चार पाँच और जो लड़कियाँ थीं मोहल्ले की वे उसमें पढ़ने लगीं। और हमारे पिताजी, हमारे भाई थे बड़े भाई महादेव भट्ट वे टीचर हो गए, पढ़ाने लगे। फिर धीरे-धीरे क्या हुआ कि एक टीचरेस

मिल गई उसको रखा, इसका खर्चा चंद्रकांत बोस ने कहा मैं दूँगा तो उस समय उनको जो कुछ भी मिलता रहा हो, बहुत बड़ी तनख्वाह नहीं रही होगी लेकिन ऐसे लगन के आदमी थे कि वे अपने पास से जो एक टीचरेस रखी गई उसका 10 रुपये 15 रुपये जो कुछ भी वह देते थे और फिर एक कमरा ले लिया गया छोटा सा उसमें लड़कियाँ पढ़ने लगीं। उसका भी भाड़ा देने लगे। मेरा ख्याल है कोई 25 रुपये 30 रुपये वे अपने पास से देने लगे।

प्र० : उसमें स्कूल चल जाता था?

उ० : हाँ उस समय चल जाता था फिर लड़कियाँ पढ़ने लगीं। पाँच हुईं, दस हुईं पंद्रह हुई 30-40 लड़कियाँ हो गईं उस समय। बाद में और भी टीचर्स आ गईं तो बाहर एडवर्टाइज किया गया। तो और कुछ बाहर से टीचर्स आ गईं। इस तरह से स्कूल जो है वह बढ़ने लगा।

प्र० : यानी इलाहाबाद में भी पहला जो लड़कियों का स्कूल जो बना वह पं० बाल कृष्ण भट्ट के सहयोग से ही बना और उनके घर में ही बना ?

उ० : घर में बना, हमारे मोहल्ले में। इस तरह के कई स्कूल उसने बनवाये। चंद्रकांत बोस ने कई स्कूल खोले। जहाँ-जहाँ उनको मालूम पड़ा कि मिशनरी स्कूल यहाँ पर है उसको बंद करवाना और उसकी जगह पर नया स्कूल खोलना यह उन्होंने एक तरह की प्रतिज्ञा कर ली। तो हमारे मोहल्ले का जो स्कूल था वह पहला स्कूल था हमारे पिताजी के घर में। हमारे पिता जी का कमरा था जहाँ वह बैठते थे वहाँ वह शुरू हुआ। और बाद को वह बहुत उन्नति कर गया और आजकल बहुत उन्नति में है। यह लड़कियों की शिक्षा के बारे में मैंने बतलाया।

प्र० : अब आपके अपने स्कूल में-कायस्थ पाठशाला ,जहाँ से आपने मैट्रिक किया और इंटरमीडिएट भी, उसके बारे में कुछ बताएँ कोई विशेष बात थी उस पढ़ाई में।

उ० : ऐसा है कि जो प्रोफैसर थे बहुत ही इंडीविजुयल केयर करते थे। जैसे कि ऐसे लिखाया। अब आजकल तो मालूम नहीं कि टीचर प्रोफैसर वगैरह उसको कुछ इंडीविजुअल अटेंशन देते हैं कि नहीं, लेकिन उस समय देते थे। हम जो एसे वगैरह लिखते थे उसमें बताते थे—यहाँ पर यह गलती है ऐसा है, वैसा है। गाइड करते थे। वह एक खास बात थी।

प्र० : हिन्दी की पढ़ाई भी होती थी?

उ० : नहीं, हिन्दी की पढ़ाई नहीं होती थी। हिन्दी-मीडियम नहीं था, सब अंग्रेजी मीडियम था।

प्र० : हिन्दी विषय की पढ़ाई होती थी?

उ० : नहीं होती थी। मैट्रिक तक तो नहीं होती थी। लोअर में भी जो कुछ होती थी वह होती थी। उर्दू का बोलवाला था, उर्दू जो है वह कोर्ट लैंगुएज थी और बिना उर्दू के काम नहीं चलता था। इसलिए जो बड़े ब्राह्मण घरानों के लोग थे वे भी उर्दू अपने लड़कों को पढ़ाते थे। इसलिए भी कि गवर्नमेंट सर्विस में और कोर्ट में बिना उर्दू के साथ हिन्दी भी कोर्ट—लैंगुएज हो ऐसा पास करवाया। सटनी मैक्डोनल था—लैफिटनेंट गवर्नर था, तो उसके द्वारा मालवीय जी ने हिन्दी का भी प्रवेश करवाया। उसके पहले कोई हिन्दी जानता भी नहीं, कोई लिखता भी नहीं था, पढ़ता भी नहीं था। और खासकर के वकील वगैरा जो थे वकील ज्यादातर कायस्थ और कश्मीरी ब्राह्मण होते थे वे हिन्दी के दुश्मन थे। माफ करिएगा मैं...।

प्र० : हाईस्कूल इंटरमीडिएट तक तो हिन्दी की पढ़ाई नहीं होती थी लेकिन जिनकी मातृभाषा हिन्दी थी आप अपने आप को छोड़ दीजिए आप तो एक विशिष्ट परिवार से आए थे लेकिन और भी मातृभाषा हिन्दी जिनकी थी उन विद्यार्थियों को उनको उस समय क्या लगता था कि हिन्दी के विषय में कुछ होना चाहिए या इंडिफरेंस थी?

उ० : नहीं इंडिफरेंस थी। इस बात की कोई परवाह नहीं करता था।

प्र० : क्योंकि आजकल बहुत से लोग कहते हैं कि बीसवीं सदी के आरंभ में हिन्दी के बड़े आंदोलन हुए और लोगों ने... ।

उ० : नहीं कोई खास आंदोलन नहीं, जहाँ तक मैं समझता हूँ मालवीयजी और कुछ हिन्दी के जो प्रेमी थे ये ही नागरी प्रचारिणी सभा के लोग थे और कुछ और लोग थे वे ही हिन्दी के प्रेमी थे बाकी इंडिफरेंस था बाकी कोई परवाह नहीं।

प्र० : यानी कि कोई खास उसके प्रति आग्रह रहा हो ऐसा कुछ नहीं?

उ० : नहीं, नहीं, ऐसा कुछ नहीं।

प्र० : तो उसमें तो फिर ये जैसा कि नागरी प्रचारिणी सभा बनी, बाद में हिन्दी साहित्य सम्मेलन तो इन लोगों का काम तो और भी मुश्किल रहा होगा। इनको जागृति पैदा करनी थी।

उ० : हाँ वह तो स्पेड वर्क था एक तरह का पायनीयर वर्क था। यह ऐसे मालवीयजी के कारण से हुआ। पं० मदन मोहन मालवीय, उन्हीं की प्रेरणा से, उन्हीं की चेष्टा से हिन्दी का प्रवेश हुआ।

प्र० : आपकी शिक्षा के बारे में पूछ रहे थे हाई स्कूल, इंटरमीडिएट के बाद आप यूनिवर्सिटी में गए, उसके बारे में भी कुछ बतायें।

उ० : बी० ए० में पं० गंगानाथ झा संस्कृत के प्रोफैसर थे। कई और भी थे। दो तीन अंग्रेज भी थे। प्रायः अंग्रेज कम होने लगे थे। उस समय अंग्रेज भी होते थे। लेकिन हिन्दुस्तानी ज़्यादा होते थे।

प्र० : अंग्रेजी प्रोफैसरों की संख्या घटने लगी थी।

उ० : घटने लगी थी जैसे मि० विलियम्स थे हिस्ट्री का बड़ा वह था... ।उसने लोगों को जैसे रामप्रसाद त्रिपाठी और बेनी प्रसाद कई और भी थे उनको प्रेरणा दी रिसर्च करने के लिए। तो बेनी प्रसाद ने हुमायूँ के ऊपर लिखा, औरों ने अकबर के बारे में इस तरह से मोनोग्राफ उसकी प्रेरणा से लोगों ने, वह अच्छा प्रोफैसर था। उसके बाद जो प्रोफैसर आया वह नहीं टिक सका। वह अच्छा प्रोफैसर था। वह चला गया। लेकिन अच्छे सिवा गंगानाथ झा के हमारे देश में हिस्ट्री में कोई नहीं थे।

प्र० : तो फिर आपको यूनिवर्सिटी में रहते हुए इतिहास की तरफ, हिस्ट्री की तरफ जाने की प्रेरणा कैसे मिली, अगर कोई बहुत अच्छे प्रोफैसर नहीं थे ? क्योंकि आपने फिर अशोक के धर्म लेख लिखे। अशोक के अभिलेखों के बारे में पहली पुस्तक है वह।

उ० : बी० ए० में मैंने हिस्ट्री ली। और ऐंशिएंट हिस्ट्री ली। बी० ए० स्मिथ की एक ऐंशिएंट इंडिया करके पहले किताब थी, पहला पायनयिर वर्क था। हमको अच्छा लगा। उससे हमको प्रेरणा

मिली हिस्ट्री पढ़ने में अच्छा भी लगता था। उसके बाद मैंने और भी किताबें पढ़ीं। और आर० सी० दत्त ने हिस्ट्री की एक किताब लिखी थी, ऐंशियंट इंडिया के बारे में। उसको भी मैंने पढ़ा। तो उसी तरह से उसमें रुचि हो गई और फिर बाद को एम० ए० पढ़ने के लिए मैं आ गया बनारस में तो फिर वहाँ सारनाथ वगैरह जाता था। उससे भी प्रेरणा मिली। प्रोफैसर ग्रेग अच्छे थे उनसे भी प्रेरणा मिली इस तरह से...।

प्र० : तो एम० ए० करने के लिए बनारस क्यों गए?

उ० : एम० ए० की पढ़ाई, संस्कृत की पढ़ाई कहीं नहीं होती थी। जिसको एम० ए० पढ़ना होता था वह बनारस जाता था। इलाहाबाद में भी नहीं था। बल्कि मेरे साथ जबलपुर के जोधपुर के और इन्दौर के दो-तीन विद्यार्थी थे। जिनको संस्कृत पढ़ना होता था वह बनारस जाते थे। क्वीन्स कालेज में। मैं भी वहीं गया एम० ए० प्रीवियस करने के लिए। संस्कृत में। क्वीन्स कालेज में ग्रीनिस करके प्रोफैसर था, प्रिंसीपल था, बड़ा विद्वान था वह। एक तरह से वह भारतीय था।

प्र० : वह उस समय की इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के बारे में कोई विशेष घटना या कुछ याद हो तो बतायेंगे?

उ० : किस प्रकार की?

प्र० : किसी भी तरह की कोई?

उ० : देखिए वह तो एक्ज़ामिनिंग यूनीवर्सिटी थी। आजकल तो रेजिडेंशियल . . . ।

प्र० : जी।

उ० : यूनिवर्सिटी है उस समय वह एक्जामिनिंग यूनिवर्सिटी थीं और इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के दायरे में राजस्थान, मध्य प्रदेश ये सब आता था। हमारे साथ जोधपुर का एक लड़का पढ़ता था। जबलपुर का एक लड़का पढ़ता था, इन्दौर का एक लड़का पढ़ता था।

प्र० : उन विद्यार्थियों में यह क्रांतिकारी बनने की या आजादी के लिए लड़ने की ऐसी बातें होती रहती थीं, चल रही थीं?

उ० : नहीं उस समय नहीं थीं। उस समय नहीं थीं, लेकिन जब से बंग भंग हुआ उसका कुछ असर हुआ। बंग भंग होने के बाद कुछ थोड़ा सा, कुछ विद्यार्थियों में सबमें नहीं। कुछ विद्यार्थियों में, कुछ जोश आने लगा। पालिटिक्स में सुन्दर लाल जी का नाम सुना होगा। बाद को पं० सुन्दर लाल हो गए। लेकिन वे विद्यार्थी थे। ला कालेज में पढ़ते थे और किसी स्कूल में टीचर भी हो गए थे। लेकिन बड़े जोशीले थे। हमारे बड़े पिता जी को बहुत मानते थे। पिता जी के पास बहुत आते थे। हमारे मित्रों में से थे। बहुत दिनों तक हमारे यहाँ भोजन भी उन्होंने किया और उन्होंने कर्मयोगी अखबार निकाला।

प्र० : अच्छा राजनैतिक चेतना के बारे में तो बाद में बात करेंगे, थोड़ा उस टाइम में यानी करीब-करीब नब्बे या सौ साल पहले जिसको कि सोशल कंडीशन कह सकते हैं जिसको कि आपने अपने परिवार में ही देखा हो और अब उस समय में अब में किन चीजों में ज्यादा अन्तर आया है? ऐसे कि एक तो लड़कियों की पढ़ाई के बारे में तो आप बता चुके, उस समय तो करीब-करीब

नहीं के बराबर थी, और बस शुरुआत ही हुई थी। और बहुत-सी चीजें हैं जैसे कि आपसे एक बार बात हुई थी विधवाओं की क्या स्थिति थी और विडो री-मैरिज के बारे में, क्योंकि उसके करीब 80-90 साल पहले से राजा राममोहन राय के टाइम से 19 वीं शताब्दी के शुरू से ही, उन सब की बात तो होनी शुरू हो गई थी, लेकिन 1900 सन् के आस-पास इलाहाबाद के आसपास का जो परिवेश था यानी आपने अपने परिवार में जहाँ भी देखा हो उसके बारे में कुछ बताएँ। यह विधवा विवाह ही ले लीजिए।

उ० : विधवा विवाह की कोई बात ही नहीं करता था। विधवा विवाह क्या होगा कोई देखने में तो उस समय विधवा विवाह कोई नहीं हुआ। मेरे अनुभव में नहीं हुआ और विधवा विवाह कुछ बहुत अच्छा भी नहीं माना जाता था। लोगों में जो भावना थी वह विधवा विवाह के लिए, कुछ लोग तो बोलते थे जैसे ईश्वर चन्द्र विद्यसागर वगैरह थे विधवा विवाह का प्रचार करते थे, नहीं तो कोई खास बात... ।

प्र० : पढ़े-लिखे लोगों में भी कोई एक्सेप्टिबिलिटी नहीं आई?

उ० : नहीं कोई एक्सेप्टिबिलिटी नहीं आई थी उस समय। अब परदा को लीजिए। विवाह को नहीं लीजिए। परदा, भयंकर परदा होता था। मुसलमानों में तो बहुत ही होता था। आपने देखा होगा वहाँ पहले इक्का चलता था, इक्के पर एक परदा पड़ा रहता था। तो एक मुसलमानी, मुसलमान स्त्रियाँ जो हैं बुरका भी पहने रहती थीं और इक्के का परदा भी डाल जाता था, तब वे कहीं बाहर निकलती थीं।

प्र० : हिन्दू औरतें भी वैसे ही निकलतीं थीं?

उ० : नहीं हिन्दू औरतें जो हैं बुरका छोड़ के परदा करती थीं। परदा यानी एक चादर ओढ़ लेती थीं और चादर में घूंघट-सा रहता था देखने के लिए। एक छोटा-सा घूंघट होता था, नहीं तो वह भी... और जो बहुएँ आती थीं शादी होकर के अपने सुसराल में तो वे जो सास होती थीं उससे भी परदा करती थीं। यानी घूंघट काढ़े रहती थीं यानी सास से भी बोलती थीं तो बहुत ही दबकर के। स्त्रियों की हालत अच्छी नहीं थी। ज्वाइंट फैमिली होने से दिन भर स्त्रियाँ जो है अगर बहुत बड़ा परिवार हुआ तो उनको खाना बनाने में घर का काम करने में उनकी उमर गुजर जाती थी।

प्र० : अच्छा विधवा विवाह तो नहीं होता था। जाति के बाहर शादी होने पर?

उ० : वह तो मेरे यहाँ पहला, पहला परिवार मेरा है।

प्र० : इलाहाबाद में?

उ० : इलाहाबाद में। जो अपनी बिरादरी से हट कर के दूसरी में ब्राह्मण थे वे भी, वे सारस्वत ब्राह्मण थे। उनके यहाँ मेरी भतीजी की शादी हुई है। मेरे भाई थे गुरु चाचा कहलाते थे लक्ष्मीकान्त भट्ट। तो उनकी,उनके लड़का कोई नहीं था चार-पाँच लड़कियाँ थीं। तो बड़ी दिक्कत होती थी वर ढूँढ़ने में। कुछ हमने भी सलाह दी, कुछ यह हुआ भई एक किसी ने, किसी के यहाँ गए लड़के के लिए भई हमारे यहाँ, हमारी लड़की की शादी आपके यहाँ हो तो उन्होंने कहा 'यहाँ कहीं नहीं मिलेगा तो आपके यहाँ करेंगे' कुछ उनको धक्का लगा। इन्सल्टेड फील किया उन्होंने और... ।

प्र० : यह कब की, 70-75 साल पहले की बात है या कुछ कम?

उ० : और क्या अस्सी साल पहले की कह लीजिए। वह फिर हमने एडवर्टाइज कर दिया और कई जगह से आया भी।

प्र० : अस्सी साल पहले तो एडवर्टाइज बहुत रेयर चीज थी। 1920 के आस-पास की है तो भी सत्तर साल हो रहे हैं करीब-करीब?

उ० : हाँ 1920, 18-19 के आस-पास की बात होगी। मैं एक सेठ के यहाँ टीचर हो गया था, उस समय की बात है। मेरे ख्याल में 18, ऐसे ही रहा होगा 17-18 मैंने एडवर्टाइज किया। एक तो देहरादून के थे बैरिस्टर रामचन्द्र कुकरेती कर के। उनसे पत्र व्यवहार हुआ और शादी तय हो गई। हमने देखा इलाहाबाद में कुछ झगड़ा-वगड़ा होगा तो हम देहरादून लड़की को लेकर चले गए। वहीं शादी-वादी कर दी।

प्र० : फिर बिरादरी के लोग?

उ० : बिरादरी से हम निकाल दिए गए।

प्र० : शादी में कोई नहीं आए थे?

उ० : नहीं, नहीं, कोई नहीं। शादी में कौन आएगा? बल्कि हम निकाल दिए गए। हमलोग और वह एक तरह से बायकाट हो गया और हमारी माताजी, जब उनका मरण हुआ तो कोई देखने नहीं आया और कोई अरथी के साथ भी नहीं गया। कुछ बाहरी लोग आए हमारे मित्र थे, खत्री थे, और कुछ इतर ब्राह्मण थे जो एक तो कोई माली ब्राह्मण भी आ गया था वह भी ऐसा कि मालूम पड़े कि आए हैं कि नहीं आए हैं कुछ ऐसा दूर से आ गए, मानो आए भी और नहीं आए भी। इस तरह से दो-एक मालवीय ब्राह्मण भी थे बाकी हमारे यहां कोई खाने भी नहीं, कोई मातमपुर्सी करने के लिए भी नहीं आया। सहानुभूति देने भी नहीं आया कोई।

प्र० : यानी बहुत जबर्दस्त बायकाट हुआ।

उ० : बायकाट हुआ यहाँ तक कि जो बहुएँ थीं छोटी-छोटी, वे अपने मायके भी नहीं जाती थीं ससुराल भी जो जहाँ रहा एक तरह का बहुत ही जोर का बायकाट हुआ। लेकिन हम लोगों ने कोई परवाह नहीं की।

प्र० : लेकिन इसमें फिर परिवर्तन कैसे हुआ?

उ० : परिवर्तन यह हुआ कि जो लीडर थे जैसे मालवीय जी के पुत्र थे रमाकान्त मालवीय... ।

प्र० : वह बायकाट के लीडर थे?

उ० : बायकाट के लीडर थे। कुछ तो इंडीविजुअल भी था कुछ हमारे भाई से उनकी पटती भी नहीं थी। लक्ष्मीकांत भट्ट को नीचा दिखलाना चाहिए कुछ यह बात भी थी और कुछ वह पुराने ख्याल भी थे। उन्हीं के घर में फिर दूसरे ब्राह्मणों के यहाँ शादी होने लगी। तो वही मतलब कि 'जादू वह जो सिर पर चढ़ कर बोले' वाली बात हो गई।

प्र० : नहीं तो इसमें शिथिलता आई कैसे?

उ० : हाँ बात यह है कि उनको वर नहीं मिलता था। अब जैसे रमाकान्त मालवीय थे तो उनकी लड़कियाँ पढ़ी-लिखी थीं। पढ़ाया उन्होंने, मालवीय जाति में कोई अच्छा वर नहीं मिला और साधारण के साथ कैसे विवाह करें। तो वह दिक्कत जो होने लगी, दिक्कत को दूर करने के लिए उन्होंने दूसरी जगह वर ढूँढ़ना शुरू किया। हो गया फिर ऐसे ही नेसेसिटी इज द मदर आफ इन्वैनशन वाली बात हुई।

प्र० : तो यानी यह नैसेसिटी के कारण परिवर्तन हुआ?

उ० : नैसेसिटी के कारण हुआ, और कोई सुधार के कारण नहीं।

प्र० : लोग तो कहते हैं कि सुधार आंदोलन बहुत हुए और उसका... ।

उ० : सुधार तो, लेख लिखे जाते थे, वक्तृताएँ होती थीं सब कुछ होता था। प्रचार होता था लेकिन कोई उसका ऐसा नहीं था कि ज्यादा प्रचार रहा हो। कुछ लोग प्रचार भी करते थे।

प्र० : जब आप स्टूडेंट थे, पहले इलाहाबाद यूनीवर्सिटी में और उसके बाद एम० ए० प्रीवियस के लिए बनारस गए क्वीन्स कालेज में . . . ।

उ० : बात यह है कि प्रीवियस करने के बाद आर्थिक परिस्थिति कुछ ठीक नहीं थी, पिता जी बीमार थे। उसी समय पिता जी का देहांत भी हो गया था। तो मैं...

प्र० : यानी फाइनल आपने नहीं किया?

उ० : नहीं आगे बतलाता हूँ।

प्र० : अच्छा, अच्छा।

उ० : प्रेम महाविद्यालय में एक टीचर की जरूरत थी, मैंने एप्लाई कर दिया।

प्र० : मथुरा?

उ० : मथुरा में महेन्द्र प्रताप थे। अच्छा एक पत्र मेरे पास आया कि जो लेख निकला है सरस्वती में, उसी मन्थ में शायद 1913 के जनवरी-फरवरी किसी एक में निकला है और उसमें मेरा एक लेख था "हमारे गरीब किसान और मजदूर" एक तरह की कम्युनिज्म उसमें थी। उस समय कम्युनिज्म का कहीं ठिकाना नहीं था। कम्युनिज्म को कोई जानता भी नहीं था। यह तो बाद की बात है और तो उस लेख में थोड़ा-सा यानी हमारे किसान और मजदूर कैसी बुरी हालत में रहते हैं, कैसी उनको तकलीफ है इस तरह की कुछ मैंने उसमें लिखी थी। लेख अच्छा था, तीन-चार पेज का था। उसको अच्छा स्थान भी द्विवेदी जी ने दिया था। उनका पत्र आया कि "यह लेख आपका है क्या? और आप वही हैं जनार्दन भट्ट, जिसका लेख है?' मैंने लिख दिया–हाँ साहब मेरा ही लेख है। तो आप चले आइए। मैंने आपका एप्वाइंटमेंट कर दिया। मैं गया और हमारा एप्वाइंटमेंट हो गया और हमें लैटर भी मिल गया और महेन्द्र प्रताप जी से मैं मिला। उन्होंने अपने सैक्रेट्ररी से कहा–"इनको जो कुछ सुविधाएँ हैं, इनको दे दो। और यह काम करेंगे। "तो मैं काम करने लगा। तीन-चार दिन के बाद मुझे पता लगा कि महेन्द्र प्रताप जी तो गायब हो गये और वह अफगानिस्तान होते हुए जर्मनी चले गए। उस समय फर्स्ट ग्रेट वार चल रहा था।

प्र० : जी।

उ० : फर्स्ट ग्रेट वार शुरू हुआ था 1914 में। उसके बाद डा० गंगानाथ झा ने अपने यहाँ एम० ए० खोलने का कुछ आर्डर होता है गवर्नमेंट से, वह ले लिया और एम० ए० क्लास खुल गया, तो मुझे पत्र मिला। हमारे भाई ने लिखा कि झा साहब कहते हैं कि—"आप चले आइए और आपको हम स्कालरशिप वगैरह भी दिला देंगे।" इस बीच में हमारे जो चचा थे उनसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं था। वह जो होता है फैमिली फ्यूड लेकिन उनको कुछ ऐसा हुआ वह खर्चा देंगे जो कुछ पढ़ाई-वढ़ाई में खर्चा है उन्होंने वादा किया देने का तो हम चले आए, पढ़ने लगे। प्रीवियस मैंने वहाँ क्वीन्स कालेज से किया था और फाइनल मैंने डा० गंगानाथ झा के अण्डर में किया।

प्र० : तो प्रेम महाविद्यालय में कितने दिन रहे आप?

उ० : तीन-चार महीने। मेरे ख्याल में जुलाई में गया था। कोई अगस्त सितम्बर में मैं आ गया।

प्र० : अच्छा, तो राजा महेन्द्र प्रताप से कोई विशेष सम्पर्क नहीं हुआ?

उ० : नहीं, उन्होंने मुझे कई किताबें दीं। यह पढ़िए, ये पढ़िए। इसके ऊपर लिखिए।

प्र० : किस तरह की किताबें?

उ० : कुछ तो सोशलिज्म पर थीं। और एक जापान के सम्बन्ध में थी। वह किताब अब कहाँ चली गई मुझे पता नहीं। हम तो रोलिंग स्टोन थे इधर-उधर घूमा करते थे। वे किताबें अब नहीं लेकिन अच्छी किताबें थीं। और मैंने पढ़ा-वढ़ा भी उसको लेकिन मैंने लिखने की चेष्टा नहीं की। क्योंकि फिर पढ़ाई, स्टडीज में लग गए। एम० ए० में। तो इस तरह से हुआ। फिर मैंने एम० ए० पास किया। एम० ए० पास करने के बाद जिस तरह जब लोग ढूँढ़ते हैं तो मैं उनको अखबारों में जो एडवर्टिजमेंट निकलते थे वह देखा करता था। तो एक दिन मैंने देखा 'जसवन्त कालेज जोधपुर स्टेट कालेज जोधपुर रिक्वायर्ड ए, वांटेड ए प्रोफैसर आफ संस्कृत।' ऐसा-ऐसा कुछ था। हम डाक्टर साहब के पास गए। हमने कहा साहब ऐसा—ऐसा है आप कहें तो मैं कर दूँ। आप रिकमैंड करें। तो उन्होंने कहा—बहुत अच्छा। उन्होंने मुझे रिकमैंड कर दिया। मुझे एप्वाइंटमेंट मिल गया वहाँ पर।

मैं जोधपुर कालेज में रहा करीब डेढ़ बरस, दो बरस रहा हूँ वहाँ पर। लेकिन इस बीच क्या हुआ कि जब मैं खाली था यानी जब नहीं मिला था जोधपुर कालेज का एक एडवर्टिजमेंट निकला था एक रिसर्च स्टूडेंट के लिए। उसमें हार्टीकल्चर डिपार्टमेंट में। शिमला और दिल्ली उसके आफिस हैं शिमला में रहते थे, दिल्ली में रहते। तो एक रिसर्च ऐसा-ऐसा हो क्वालिफीकेशन उसमें मैंने एप्लाई कर दिया। एक मि० हारग्रीव थे। पहले यह जो आर्टकल्चर डिपार्टमेंट है यह चार भागों में डिवाइड था। नार्दन सर्किल, वेस्टर्न सर्किल, ईस्टर्न सर्किल, और सदर्न सर्किल। तो नार्दन सर्किल का वह हारब्रीव जो था वह सुपरीटेंडेंट था। सुपरिटेंडेंट आफ हिन्दू एंड ब्रिटिश मोनुमेंट्स और उसका हैड आफिस जो था वह लाहौर था। लेकिन जो एडवर्टिजमेंट निकला था वह आर्टकल्चर मेन आर्टकल्चर डिपार्टमेंट से निकला था।

प्र० : शिमला?

उ० : शिमला से तो मैंने एप्लाई कर दिया था। तो हारग्रीव जो है उसने लिखा 'हम आपसे इंटरव्यू

करना चाहते हैं। बनारस में अमुक-अमुक होटल में मैं ठहरूँगा तुम वहाँ आ जाना।' तो मैं वहाँ गया। उससे बातचीत हुई और उसने हमारा पता वगैरह नोट कर लिया। इस बीच में दिल्ली में पं० लक्ष्मीधर शास्त्री थे। उन्होंने ओल्ड पुराने ढंग से भी पढ़ा था और नए ढंग से भी पढ़ा था। वह कुछ चुन लिए गए। मेरा सैकेंड नम्बर था। वह हारग्रीव जो था मेरा पता लिए हुए था। उसको एक आदमी की यानी अपने असिस्टेंट की जरूरत थी। उसने मुझको पत्र लिखा। पत्र जो है री डाइरेक्ट हो करके जोधपुर में मिला। तो कुछ ऐसा जो विधि का विधान होता है एक बड़ा विचित्र होता है। मैं बड़ा अच्छा, वैल स्टेबलिश्ड था जोधपुर में सब लड़के पसन्द करते थे और लोगों ने बहुत एप्रिशिएट भी किया। लेकिन ऐसा था कि कुछ ग्लैमर भी था आर्किआलोजी का। तो वहाँ से मैंने रिजाइन कर दिया और वहाँ चला गया, लाहौर में। वहाँ कुछ एक तो बहुत दूर था और दूसरे यह है कि कुछ वहाँ हमको अच्छा नहीं लगा। लेकिन मैं वहाँ रहा डेढ़ दो बरस रहा और मैंने अशोक के धर्म लेख को वहीं पर पढ़ा। अशोक के सम्बन्ध में एडिक्टस, मैन्यूस्क्रिप्ट्स पढ़े। वहाँ बड़ी अच्छी लायब्रेरी थी। बड़ी अच्छी लायब्रेरी। उस लायब्रेरी में जनरल आफ द रायल एशियैटिक सोसायटी और आर्किओलोजिकल डिपार्टमेंट से जितनी निकलती थी किताबें वे सब वहाँ पर थीं और कनिंघम के बारे में भी जो रिपोर्ट थी वे सब वहाँ पर थीं। तो मुझको बड़ी फैसेलिटीज वहाँ पर हुई और मैंने वहाँ पर खूब अध्ययन किया, नोट लिया। काम हमने वहीं पर किया। इसके अतिरिक्त मैंने जो वहाँ पर स्टैम्पेजिज जो इकट्ठा थे इन्सिक्रप्शन्स के गुप्ता पीरियड के और कनिंधम और गुप्ता पीरियड के बाद के भी, और पहले के भी हमने बहुत से इन्सिक्रिप्शन्स जो हैं. . . ।

प्र० : ये 1918-1920

उ० : ये 17-18। जी अच्छा इस बीच में क्या हुआ कि हमें वहाँ पर मथुरा में सर जान मार्शल, वह आया लाहौर और जैसे होता है हारग्रीव ने उसको इन्वाइट किया अपने आफिस में। हमको इंट्रोड्यूस किया हारग्रीव ने कि ये न्यूली एप्वाइंटेड और ऐसा-ऐसा है ही इज वैरी गुड स्कॉलर, तो उन्होंने कहा कि इसको हमारे वहाँ भेज दो। हमारे वहाँ टैक्सला में एक्सकेवेशन हो रहा था। मैं वहाँ गया। फिर वहाँ एक्सकेवेशन में मैंने भाग लिया और वह मार्शल भी करीब-करीब रोज ही आता था वहां उससे भेंट होती थी। वह डायरेक्शन देता था "ऐसे-ऐसे करो"। यहाँ पर जो चीजें मिलती थीं उसको ठीक से रखो। वह सब थोड़ा-सा गाइड किया उसने। और-और भी लोग थे। उसके बाद मैं लाहौर आ गया। हारग्रीव जो था उसको कमीशन मिल गया आर्मी में। फर्स्ट ग्रेट वार चल रहा था तो वह आर्मी में चला गया। उसके बाद तो कुछ खाली हो गया। कुछ और भी वहाँ पर जो जैसा मैंने बतलाया न कोई आदमी नहीं रहने से वहाँ पर, कुछ लोग थे, अच्छा हमको नहीं लगा। उसके बाद दयाराम साहनी आ गए। उन्होंने एप्रिसिएट किया।

उन्होंने हमको मथुरा भेज दिया। मथुरा में उस समय कुछ इन्स्क्रिप्शन्स निकले थे स्कल्पचर निकले थे कि उनको उनके ऊपर नोट लिख कर के हमको भेजो। हम वहाँ मथुरा में करीब छह महीने रहे। वह जो वहाँ के स्कल्पचर्स वगैरह हैं उनको स्टडी किया और जैसा होता है म्युजियम में जाता था, देखता था, नोट वोट लिख करके मैंने उनको भेजा। उसके बाद उन्होंने फिर हमको बुला लिया लाहौर। मैं लाहौर चला गया। इस बीच में लड़ाई चल रही थी फर्स्ट ग्रेट वार। लड़ाई का अखबार "वार जरनल" इलाहाबाद से निकलता था, गवर्नमेंट का था। गवर्नमेंट से छपता था और उसमें अंग्रेजी में लेख लिखे जाते थे, उसका हिन्दी अनुवादक

मैं हो गया। लेकिन इस बीच में लड़ाई के अखबार में आने के पहले मैं क्राइस्ट चर्च कालेज में, एक प्रोफैसर थे संस्कृत के वे चले गए थे छुट्टी पर थे, तीन महीने की वैकेंसी थी, मैं उसमें हो गया।

प्र० : क्राइस्ट चर्च कहाँ पे?

उ० : क्राइस्ट चर्च कालेज कानपुर। उसमें मैं था। तीन महीने रहा । इस बीच में लड़ाई के अखबार में आने की मेरी बात हो गई तो जो प्रिंसीपल था, मिशनरी था, अंग्रेज था उसने 'वार जरनल' के एडीटर को लिखा कि ये तो हमारे यहाँ तीन महीने के लिए हुआ है हमारी कंडीशन है इसको हम नहीं भेज सकते। खैर उन्होंने कह दिया। एडीटर थे अंग्रेज। उसने कहा कि "भई अच्छा ठीक है जब आ जाओगे तुमको ले लेंगे। तीन महीने के बाद मैं 'वार जरनल' में हो गया। लेकिन जब लड़ाई खत्म हुई तब तक मैं उसमें रहा। लड़ाई के अखबार के जो लेख होते थे अंग्रेजी के मैं उन्हें हिन्दी अनुवाद करता था।

ठीक-ठीक चल रहा था, इस बीच में लड़ाई खत्म हो गई। जब लड़ाई खत्म हुई तो वही जो वार जरनल था इट बिकेम ए प्रोपेगण्डा पेपर। महात्मा गांधी आंदोलन के विरुद्ध उसमें लेख लिखे जाने लगे। मेरे पास आए तो मेरा हृदय गवाही नहीं देता कि उसका मैं अनुवाद करूँ। हमने कहा-हमने कुछ कहा नहीं लेकिन हमने फिर रिजाइन कर दिया। अब फिर स्ट्रेंडेड हो गया। उसके बाद और भी कई जगह रहा। फिर महर्षि विद्यालय था वहाँ कलकत्ते में। उसमें मैं हैडमास्टर हो गया। फिर आर्य समाजियों ने दूसरा एक स्कूल खोला उसमें मैं हैडमास्टर हुआ। दो स्कूलों में हैडमास्टर पाँच-पाँच बरस रहा। लेकिन ओवरनाइट कुछ झगड़ा हो गया बस रिजाइन कर दिया। हमारे में वीकनेस है, कमजोरी है, हम रैजिस्ट नहीं कर सकते। नहीं पसन्द है तो छोड़ दिया। आदमी को चाहिए कि स्ट्रगल करे। हमको स्ट्रगल करना नहीं आता। इसलिए मैं रोलिंग स्टोन कई जगह और भी रहा फिर, उसके कहने से कोई लाभ नहीं है।

प्र० : तो वह आपने बाद में जो काम किया उसके बारे में पूछेंगे लेकिन यह आर्कियालोजिकल सर्वे में रहते वक्त और आप सर जान पार्शल, हारग्रीव और किन्हीं आर्कियोलोजिस्ट के सम्पर्क में आए हों उस समय जो लोग...।

उ० : दया राम साहनी। अच्छे आर्कियालोजिस्ट थे।

प्र० : राखाल बाबू से?

उ० : राखाल बाबू से भेंट तो हुई लेकिन ज्यादा नहीं हुई। मतलब मथुरा में जब मैं काम कर रहा था उस समय राखाल बाबू वहाँ पर आए थे और राखाल बाबू 'ही वाज ए रीयल स्कॉलर।' अच्छे स्कॉलर थे। और अशोक कनिष्क के बारे में उनका लेख भी है। बड़ा अच्छा लिखा। तो बस खाली उनसे सम्पर्क हुआ और ज्यादा लोगों से सम्पर्क नहीं हुआ। हीरा नन्द शास्त्री उनसे भेंट तो हुई, मुलाकात तो हुई बड़े अच्छे विद्वान थे। यहाँ जो वात्स्यायन थे न क्या नाम 'अज्ञेय' उनके पिता थे।

प्र० : अज्ञेय। जी हाँ। हीरानन्द शास्त्री।

उ० : हीरानन्द शास्त्री। बड़े संस्कृत के अच्छे स्कालर थे। पुराने ढंग से उन्होंने संस्कृत पढ़ी थी और नए ढंग से एम० ए०, एम० ओ० एल० थे। एम० ए० तो अंग्रेजी में किया, उसके बाद शास्त्री

किया। एम० ए० और शास्त्री जो दोनों कर लेता था वह मास्टर आफ ओरिएंटल लर्निंग एम० ओ० एल० कहलाता था। दोनों ही थे। उनसे ज्यादा तो नहीं सम्पर्क हुआ, मगर बातचीत हुई।

प्र० : जितनी प्रसिद्धि म्यूर कालेज इलाहाबाद की थी, उतनी ही प्रसिद्धि क्वीन्स कालेज बनारस की भी थी।

उ० : संस्कृत में। अंग्रेजी के तो सब विद्यार्थी हिन्दू यूनिवर्सिटी में चले आते थे। तब हिन्दू यूनिवर्सिटी बन गई थी मेरा ख्याल है। मैं गया था।

प्र० : वे प्रारम्भिक दिन थे।

उ० : प्रारम्भिक दिन थे।

प्र० : तो क्वीन्स कालेज में उन दिनों संस्कृत अध्ययन की बड़ी प्रतिष्ठा मानी जाती थी।

उ० : बहुत। मतलब यह कि जिसको संस्कृत पढ़ना होता था वह और वहाँ जितने आचार्य थे, वे अपने-अपने शास्त्र के दिग्गज विद्वान थे। जैसे गंगाधर शास्त्री थे। जैसे गंगाधर पं० राज जगन्नाथ थे। वे कहते कि गंगाधर तो गंगाधर ही पढ़ा सकता है। माने बड़े विद्वान थे। और शिवकुमार शास्त्री को मैंने देखा लेकिन वे तो किसी कालेजों में नहीं। अपना रहते थे। वे छहों शास्त्र के विद्वान थे। एक राम मिश्र शास्त्री थे। तातिया शास्त्री थे। ऐसे-ऐसे कई शास्त्री बड़े अच्छे विद्वान। लेकिन मेरा ज्यादा सम्पर्क आचार्यों से नहीं पड़ा था। वहीं एम० ए० पढ़ने के लिए जो क्लास होता था उसी में जाते थे। और पुराने ढंग से हमने पिताजी से तो पढ़ा, उसके बाद फिर नहीं पढ़ा।

प्र० : आपने तो बाबा संस्कृत पढ़ के, उसके बाद आर्कियालाजिकल सर्वे और मथुरा म्यूजियम में काम किया। अशोक के धर्म लेख कम्पाइल करने का आपने कैसे सोचा, और कहाँ से प्रेरणा मिली?

उ० : ऐसा है कि सारनाथ मैं जाया करता था और सारनाथ में अशोक का जो स्तूप है उसमें लिखा रहता था। तो मैंने उसको पढ़ना, उसका ट्रांसलेशन...

प्र० : जो पिलर है। स्तम्भ!

उ० : पिलर है। तो उसको मैं पढ़ा करता था। फिर और भी पढ़ने लगा। तो बस इस तरह से आ गया कुछ। कुछ प्रवृत्ति हो गई। कैसे हो गया मालूम नहीं। लेकिन हमारी रुचि हो गई। और दूसरे नरेन्द्र देव जी थे न...

प्र० : आचार्य नरेन्द्र देव।

उ० : आचार्य नरेन्द्र देव, इन्होंने आर्कियालोजी लिया था एम० ए० में। फाइनल में आर्कियालोजी लिया था। हमने साहित्य लिया था। लेकिन उनसे बातचीत हुआ करती थी। वह कुछ उनसे भी प्रेरणा मिली। हमारे मित्रों में से थे। बहुत मित्र तो नहीं थे लेकिन . . . ।

प्र० : आपके कंटम्परेरी थे। इस साल उनकी शताब्दी मनाई जा रही है।

उ० : मेरा ख्याल है मुझसे बड़े थे।

प्र० : एक साल बड़े थे इतना ही। छह महीना बड़े रहे होंगे।

उ० : यह तो नहीं मालूम लेकिन हमारे यहाँ कई बार आ के ठहरे भी थे। और उनसे हमारी खूब बातचीत होती थी। थोड़ा टैरेरिस्ट मूवमेंट में वे भी थे। कुछ उनसे शचीन्द्रनाथ सान्याल वगैरह उनसे उनकी चर्चा होती थी। सावरकर की जो 'वार आफ इंडीपेंडेंस' कर के एक किताब उन्होंने लिखी थी 'आप शायद जानते होंगे' वह उनको मिल गई थी, कहीं से पढ़ने को शिवनाथ सान्याल वगैरह से। तो उन्होंने मुझसे भी कहा था। मैंने कहा हमको भी पढ़ने के लिए दे दीजिए। 'हाँ-हाँ देंगे हम पढ़ लें।' लेकिन फिर बाद को जहाँ से मिली थी उसको लौटा दिया। हमको पढ़ने को नहीं मिली। लेकिन हमारी बातचीत उनसे होती थी। सारनाथ भी जाते थे वहाँ पर रुचि हुई और उसके बाद नरेन्द्र देव से भी कुछ बातचीत हुई। बस ऐसे ही कुछ हो गया मालूम नहीं कि कैसे कुछ हो गया।

प्र० : बाबा, उस समय एक प्रवृत्ति सारे विद्वानों में यह देखी जाती थी कि चूँकि आर्कियालोजी एक ऐसा विषय था जिसमें कि प्रमुखता अंग्रेज विद्वानों की थी और उन्होंने इसमें बहुत ही पायनियर काम किया . . . ।

उ० : अब जैसे वोगल था। वह डच था। लेकिन अंग्रेजी में सब लिखता-विखता था। उसने मथुरा म्युजियम में जो कैटलाग बनाया बहुत बढ़िया बनाया। आप ने देखा बहुत बढ़िया है। ऐसा कैटालाग मैंने कहीं और देखा नहीं। किसी म्युजियम में नहीं देखा। वे लोग रीयल इंट्रेस्ट लेते थे। मेरा ख्याल है कि इंडियन्स में अब तो हो गया हो, लेकिन पहले उतना इंट्रेस्ट नहीं था।

प्र० : उस समय के जो भारतीय विद्वान थे उस समय की जो प्रवृत्ति देखने में आती थी वह ऐसी थी कि जो विदेशी विद्वान हुआ करते थे वे भारतीय इतिहास और भारतीय मान्यताओं के विरुद्ध स्थापनाएँ दिया करते थे। जैसे काल-निर्धारण में या टैक्स्ट के इंटरप्रिटेशन में। तो उन परिस्थितियों में भारतीय जो विद्वान हुआ करते थे उनकी क्या प्रतिक्रियाएँ हुआ करती थीं?

उ० : वे उनका अनुसरण किया करते थे। जो थियरीज, जो विचार अंग्रेजों के होते थे या फारेन से के होते थे, उनके विरुद्ध कोई नहीं लिखता था। अपनी इंडिपेंडेंट राय नहीं होती थी। खाली वह राखाल दास जो है बैनर्जी, उसने कुछ थोड़ा-सा लिखा है। यह गुप्ता पिरियड के पहले का?

प्र० : कुषाण।

उ० : कुषाण 'हिस्ट्री आफ द कुषाण पीरियड' उसने लिखी है। उसमें और इसीलिए वह मार्शल से नाराज भी हो गया था। कुछ अपनी बात लिखता था। तो उसमें तो कुछ इंडीपेंडेंस थी। बाकी दयाराम साहनी थे, उनमें नहीं थी। हीरानन्द शास्त्री में भी कोई खास बात नहीं थी और हिन्दुस्तानी में औरों की मुझे मालूम नहीं। मद्रासी कई थे। लेकिन वे कोई रिमार्केबल नहीं थे। ऐसे कई हुए हैं लेकिन हमारी नालेज में जितने हुए उन्होंने कोई खास बात तो नहीं की। राखालदास ने अच्छा किया था।

प्र० : आपके वक्त में मुख्य-मुख्य उपलब्धियाँ पुरातत्वव की दृष्टि से कौन-सी हुई ?

उ० : एक तो टैक्सेला की हुई। टैक्सेला में एक्सकेवेशन बहुत हुए। मार्शल ने कराया। वहाँ से बहुत-सी चीजें निकलीं। उधर से तक्षशिला का पुनर्निर्माण-सा हो गया। एक तो वह प्रमुख चीज हुई। कुछ मथुरा में हुआ। मथुरा से वह कनिष्क की मूर्ति निकली।

प्र० : वह आप ही के समय में थी।

उ० : नहीं, वह मेरे समय में नहीं, मेरे समय के पहले। लेकिन उसको भी मथुरा म्युजियम में जब मैं था, तो तब मैंने स्टडी किया उसका।

प्र० : आप आर्कियालोजी में तो बहुत थोड़े दिन ही थे। मेरे ख्याल से वह तक्षशिला की खुदाई जो है, सबसे महत्व की, वही सबसे प्रमुख बात रही। अगर दो-चार साल और रहे होते तो फिर उसी सर्विस में मोहेंजोदड़ो हड़प्पा से भी, क्योंकि वह भी उसके चार-पाँच साल बाद ही हुआ, 1922-23 के आस पास...।

प्र० : वह राखालदास ने किया था। लेकिन उसका नाम ज्यादा आया नहीं।

उ० : दयाराम साहनी ने भी किया था थोड़ा वहाँ। और राखाल बाबू ने भी किया। दयाराम साहनी जो थे वह थोड़ा दब्बू आदमी थे।

प्र० : तो यह लेख के बहुत विद्वान थे, लेख के अध्ययन में।

उ० : कौन?

प्र० : दयाराम साहनी? पुरानी लिपियों के अर्थ में, उनकी अच्छी गति थी?

उ० : उनकी अच्छी गति थी। और अभी जो दिनेशचन्द्र क्या नाम ?

प्र० : दिनेशचंद्र सरकार!

उ० : वह बेजोड़ था। एपीग्राफिक्स में बहुत भारी दिग्गज। डी० सी० सरकार, उस जोड़ के तो नहीं थे, लेकिन हाँ दयाराम, स्टडी उनकी अच्छी थी।

प्र० : डी० सी० सरकार तो आपके काफी बाद के हैं?

उ० : बाद के हैं। बाद के हैं, लेकिन बाद को यहाँ पर...

प्र० : आप से 15-20 साल छोटे रहे होंगे?

उ० : हाँ, जी हाँ और 2500 वीं बुद्ध की जयन्ती मनाई गई थी न यहाँ तो यहाँ पर एक मि० लार्ड थे आई० सी० एस० उन्हें नेहरू जी ने, जवाहर लाल जी नेहरू ने इच्छा प्रकट की कि अशोक के लेख जो हैं उसमें ब्राह्मण और श्रमण वगैरा सबको एक, माने धर्म निरपेक्षता की बात उसमें आती है, इसलिए उसका अनुवाद कर के उसका प्रचार किया जाए। अब उनके मुँह से जो बात निकली तो फिर इन लोगों ने पकड़ लिया। अब लार्ड ने कहा कि हमारा धर्म...

प्र० : लार्ड उस सयम शायद सेक्रेटरी थे इन्फर्मेशन ब्राडकास्टिंग के।

उ० : सेक्रेटरी थे ! ब्राडकास्टिंग के। तो उन्होंने शायद मेरी किताब देखी थी। अच्छा, मेरी किताब में नरेन्द्र देव का इंट्रोडक्शन था। दो-तीन पेज का।

प्र० : जी, भूमिका उन्होंने लिखी है।

उ० : भूमिका लिखी है। तो लार्ड ने कहा कि जनार्दन भट्ट यह कहाँ है, कैसा है? किसी ने बतलाया

कि वह तो यहीं रहते हैं। मेरे पास फोन आया लार्ड के सेक्रेटरी का कि साहब मिस्टर लार्ड आपसे मिलना चाहते हैं। आप यहाँ आ सकते हैं? मैंने कहा, हाँ जरूर आऊँगा।

प्र० : 1954 में, हाँ लार्ड के बारे में बता रहे थे उसको . . . ।

उ० : वह सेक्रेटरी का फोन आया। मैंने कहा "ठीक है।" उन्होंने कहा कि पता उनको किसी से मालूम हो गया होगा, "आपके पास सरकारी मोटर पहुँच जाएगी। उस पर आप चले आइए।" मोटर आ गई। मैं उस पर चढ़कर के वहाँ गया। रिसैप्शनिस्ट कोई औरत थी। उसको पहले ही से मालूम था। उसने फोन किया। एक आदमी आया मुझको ले गया ऊपर। जैसे मि० लार्ड बैठे हुए है। एक कृष्ण प्रसाद आइ० सी० एस० था, वह सेक्रैटरी था। उस डिपार्टमेंट का इन्फरमेशन एंड ब्राडकास्टिंग में। चीफ सेक्रेटरी होता है न, तो वह सेक्रेटरी था। वैसे ही बैठा था। दो-चार आदमी ऐसे ही बैठे थे। उन्होंने कहा–"जितने इन्सिक्रिप्शन हैं उनका हिन्दी अनुवाद आप कर सकेंगे? मैंने कहा कि मैं कर दूँगा। लेकिन हमारी शर्त है। एक तो हमारा नाम होना चाहिए, और दूसरे पाँच सौ रुपए। अरे हम दो हजार माँगते, चार हजार, पाँच हजार माँगते मिल जाता। ब्राह्मण बुद्धि है न। "कहा ठीक है।" हमने कहा हाँ साहब। मैंने कहा–"एक शर्त और भी है। एक जर्मन हुल्श हुआ है। अशोक के इन्सक्रिप्शन पर उसकी बहुत ही वैल्यूएबल और बड़ी अथारिटेटिव बुक है। तो मैंने कहा वह हमें मिलनी चाहिए और दो-एक किताबें और भी इस तरह से मिलनी चाहिए।" उन्होंने कहा कि और जो उसके बाद, हुल्श के बाद और जितनी इन्सक्रिप्शन्स निकले हैं उनकी कापी हम आपके पास भेजेंगे।" उसका भी अनुवाद करिएगा।" तो कापी मेरे पास आ गई। हुल्श की किताब आ गई। मैंने उसका अनुवाद करके उनको दे दिया। और वह छपा है। मैं ले आऊँ दिखलाऊँ आपको?

प्र० : हाँ वह बुद्ध की 25 सौ वीं जयन्ती के सिलसिले में हिन्दी-अंग्रेजी दोनों में छपा था। हिन्दी में आपकी छपी थी, अंग्रेजी में डी० सी० सरकार की।

उ० : नोट तो मैंने ले लिया था। और स्टडी मैंने वहीं आर्किआलोजिकल डिपार्टमेंट में की थी। लेकिन बाद को मैंने जो वर्कआउट किया तो फिर जब मैं इलाहाबाद आ गया, इलाहाबाद में जब लड़ाई का अखबार हो रहा था उसमें जब मैं था तो मार्निंग में और ईवनिंग में मैंने एक आदमी को रख लिया कि मैं बोलता जाऊँ तू लिखता जा। उस समय बड़े सस्ते में आदमी मिल गया, अच्छा पढ़ा लिखा भी था, शुद्ध लिख लेता था। दस रुपया उसको देता था।

प्र० : महीने में?

उ० : महीने में। बड़ी सस्ती में बहुत अच्छा था उस जमाने में। इस तरह से मैंने लिख डाला। अच्छा इस बीच में क्या हुआ कि शिव प्रसाद गुप्त काशी वाले, ज्ञानमण्डल जिनका है, 'आज' निकाला उन्होंने। वह कृष्णकान्त मालवीय, मालवीयजी के भतीजे थे ये एम० पी० भी थे उस जमाने में और 'अभ्युदय' निकाला उन्होंने।

प्र० : बाद में 'अभ्युदय' निकाला?

उ० : उनके वहाँ वह आकर के ठहरते थे शिव प्रसाद गुप्त। मैंने देखा एक कमरा था, उस कमरे में खाली धोती पहने थे और कमीज वगैरा कुछ नहीं पहने थे, बनियान वगैरा नहीं थी। एक जनेऊ पहन रखा था जनेऊ। और अच्छा शरीर था। भव्य शरीर था। गणेश की तरह मूर्ति उनकी थी।

प्र० : दाढ़ी थी उनकी लम्बी?

उ० : बाद को हुई। उन्होंने कहा कि–'देखिए हमारा ऐसा ज्ञानमण्डल है। उसमें आप आएँगे? कृष्णकान्त ने कुछ कहा होगा।' मैंने कहा–'आऊँगा तो लेकिन ऐसा है कितने आदमियों को खुश करना पड़ेगा।' कहने लगे 'आपको अपने काँशियस को खुश करना पड़ेगा।' तो मैंने कहा–'ठीक है कोई बात नहीं।' मैं गया फिर उनसे मिला तो ज्ञानमण्डल में मैं हो गया और अशोक के धर्म लेख मैंने वहीं पर फिर पुस्तक के फार्म में किया। ऊपर अशोक के लेख हैं नीचे संस्कृत अनुवाद है। संस्कृत अनुवाद के नीचे हिन्दी अनुवाद है। हिन्दी अनुवाद भी, बहुत-से फुटनोट्स हैं, बहुत से फुटनोट्स, आपने शायद देखा होगा।

प्र० : जी देखा है।

उ० : 'इट इज ए पायनियर वर्क आफ इट्स कांइड।' उस समय इस तरह की कोई पुस्तक थी नहीं। तो मैंने उसमें बड़ी मेहनत की और वह फिर उन्होंने छपवायी। इस बीच में मैंने ज्ञानमण्डल छोड़ दिया। छोड़ करके और बीसियों जगह रहे-कहाँ रहे पता नहीं। तो आखिर स्कूल में चला गया। माहेश्वरी विद्यालय में हैडमास्टर हो गया। फिर एक आर्यसमाजियों का आर्यविद्यालय, उसमें हो गया। तीन-चार साल पाँच वर्ष तक हर एक में रहा। तो ज्ञानमण्डल छोड़ करके ऐसे ही छोड़ दिया, क्या मालूम क्या कारण था उसका। पटी नहीं या कुछ कहें। तो जब मैं था तो उसी समय सम्पूर्णानन्द जी वह हैडमास्टर थे बीकानेर में। उसको छोड़ करके वह ज्ञानमण्डल में आ गए थे। और प्रेम-चन्द वह भी कहीं प्राइमरी स्कूल में हैडमास्टर थे, मिडिल स्कूल वगैरा में। वह भी छोड़ करके आ गए थे जहाँ पर मैं रहता था जगतगंज, आप जानते ही हैं–जगतगंज। तो जगतगंज में मकान ले करके मैं रहता था। और प्रेमचन्द उसके आगे चले जाते थे क्वीन्स कालेज के और आगे लमही। शायद उनका गाँव था।

प्र० : लमही गाँव उनका था, कुम्हार चौरा की तरफ।

उ० : लमही गाँव उनका था, तो उतनी दूर तक, जो डिसटेंस था, हमारा उनका साथ होता था, बातचीत होती थी, घर-गृहस्थी की बात होती थी और फिर वह कहते थे कि 'महँगाई इतनी है कि खर्चा नहीं चलता था।' जैसे होता है...।

प्र० : तो बाबा उस समय तो मुंशी प्रेमचंद उर्दू में लिखा करते रहे होंगे, बाद में हिन्दी में आ गए।

उ० : नहीं हिन्दी में लिखते थे। बड़ी बढ़िया भाषा। भाषा के सम्राट थे वे। ऐसी भाषा मैंने कम देखी है। सरल और मुहावरेदार यानी जिसमें कहते हैं–जान। लिविंग भाषा थी, उसमें एक जान रहती थी।

प्र० : तो बाबू सम्पूर्णानन्द जी भी उस समय ज्ञानमण्डल में थे?

उ० : ज्ञानमण्डल में थे। उन्होंने भी अशोक की जीवनी लिखी थी। लेकिन नरेंद्र देव से पटती नहीं थी। नरेन्द्र देव ने उसे रिकमैण्ड नहीं किया वह छपी नहीं। फिर बाद को वह कांग्रेस में हो गए। साहित्य उन्होंने छोड़ दिया। मैं पहले ही छोड़ चुका था। लेकिन सम्पूर्णानन्द जी से मेरी बातचीत नहीं हुई।

प्र० : उन्हीं दिनों भारत माता का मन्दिर बनने की . . . ?

उ० : हाँ, भारत माता का मन्दिर उस समय बना नहीं था। बाद को बना था। बड़ा अच्छा मन्दिर है। आपने देखा?

प्र० : काशी विद्यापीठ की स्थापना भी...।

उ० : हाँ, बाद को हुई। अच्छा एक बात और भी कह दूँ चन्द्र शेखर हैं न, क्रांतिकारी, यह लड़का था कोई दस-ग्यारह बरस का रहा होगा या कुछ तेरह चौदह-बरस का रहा होगा। यह आर्डर था कि कोई हंड्रेड फोर्टीफोर को ब्रेक किया, तोड़कर के दोनों, मैं उस समय था दोनों तरफ ऊपर बड़ी भीड़ लगी हुई थी लोग देख रहे थे—क्योंकि उसमें था न कि कोई सात एक साथ इकट्ठा नहीं होएँ। तो सड़कों पर भी कुछ लोग खड़े थे। मैं सड़क पर एक तरफ खड़ा हुआ था। उसको देखा एक लड़का आया, वह जो कबीर चौरा है और कोतवाली है उसके बीच में जो सड़क होती है वहाँ पर कुछ बैंक-वैंक भी है, धर्मशाला भी है तो वहीं से गुजर, वहाँ से कोतवाली के वहाँ से चला और वही कबीर चौरे की तरफ जा रहा था। उस चन्द्रशेखर को मैंने देखा उस समय।

प्र० : वाक्या क्या था यह?

उ० : 144 दफा थी उसको तोड़ा। किसी की हिम्मत नहीं थी, देखिए वह बहादुर था। एक लड़का था उसने कहा कि मैं तोडूँगा। वह संस्कृत का विद्यार्थी था, संस्कृत पढ़ता था। उसने कहा—"मैं तोडूँगा।" उसने तोड़ा, पकड़ा गया। उसी जगह आजाद।

प्र० : तो बाबा यह 144 लगी क्यों थी उस समय?

उ० : असहयोग आंदोलन चल रहा था। यह तो पहला असहयोग आंदोलन महात्मा गांधी वाला...

प्र० : बाबा, आप बता रहे थे आपने जहाँ-जहाँ काम किया। वह प्रेम महाविद्यालय से आरम्भ करके आर्कियोलोजिकल सर्वे और कानपुर क्राइस्ट चर्च कालेज फिर कलकत्ते में फिर दिल्ली में कैसे आए?

उ० : ऐसा है जैसा कि मैंने कहा कि—मैं रोलिंग स्टोन रहा हूँ। एक जगह टिक के हमारे कुछ भाग्य में ही लिखा था कि एक जगह कहीं टिके नहीं। तो एक माहेश्वरी विद्यालय है वहाँ पर कलकत्ते में उसमें मैं हैडमास्टर था। इत्तेफाक से एक मीटिंग हो रही थी, कुछ बातचीत हुई। कुछ हमको अच्छा नहीं लगा। हम वहाँ पर बैठ गए। हमने त्यागपत्र दे दिया। मैंने कहा—मैं चार्ज देने आऊँगा। जिसको आप कहें उसको चार्ज दे दूँगा।'

उसके बाद मैं दो-तीन महीने तक घर में बैठा रहा। अब जैसे चेष्टा होती है कहीं कुछ काम मिले कहीं कुछ और करें। कुछ लिखने-पढ़ने लगा। कुछ एक किताब-विताब भी लिखी। तो किसी ने कहा—'अनुवाद कर दो। तो मैंने अनुवाद कर दिया। लेकिन उससे कुछ होता नहीं। ओस चाटे से प्यास नहीं जाती। इस बीच में बिड़ला जी ने, सेठ जुगल किशोर बिड़ला जो एल्डैस्ट ब्रदर थे इनके जिन्होंने मन्दिर बनवाया है उन्होंने ट्रस्ट बनाया आल इंडिया हिन्दू धर्म सेवा संघ ट्रस्ट। तो उनको एक सेक्रेटरी की जरूरत पड़ी। सेक्रेटरी या मैनेजर वगैरह की यानी जो उसका चार्ज ले ले। तो वह एडवरटाइजमेंट एक आदमी मेरे पास ले आया कि 'ऐसा-ऐसा है यह तो आपके योग्य है।' मैंने एप्लाई कर दिया। एक वहाँ पर राम शंकर त्रिपाठी,

वह लोकमान्य एक अखबार निकलता था उसके एडीटर थे।

प्र० : कलकत्ते में?

उ० : कलकत्ते में। उन्होंने मुझको बुलाया कि–"आपकी यह एप्लीकेशन आई है तो सेठजी से आप मिलिए। सेठजी आपसे मिलना चाहते हैं और देखना चाहते हैं। आपसे पूछना है। वह पूछेंगे।' मैंने कहा 'ठीक है।' इत्तेफाक से क्या हुआ मैं बीमार हो गया था। बीमार क्या बुखार आने लगा था। कभी बुखार भी नहीं आता था, लेकिन उन दिनों बुखार आ गया। दुबला-पतला शरीर पहले ही से है। कुछ और दुबला हो गया। तो सेठजी के सामने मुझको बिठलाया तो पूछने लगे कि–'आप बीमार रहते हो।' कुछ और नहीं पूछा। मैंने कहा–यह कहाँ का, क्या पढ़े हो, क्या लिखे हो, क्या योग्यता है, यह तो कुछ नहीं पूछ रहे हैं आप बीमार हैं! मैंने कहा–'देखिए मैं बीमार नहीं रहता। मैं बीमार हो गया था इत्तफाक की बात है। बुखार आ गया था। कहने लगे–नहीं यह खाया करो यह करो वह करो.... ।' उसके बाद उन्होंने कहा कि देखिए वह त्रिपाठी थे-उन्होंने मुझको बुला के कहा–'देखिए ज्यादा इम्प्रेस्ड नहीं हुए तो वह सौ रुपया देंगे।' अब मैं नैसेसिटी में था।

प्र० : यह किस सन् की बात है?

उ० : यह दूसरी लड़ाई जापानी बाम्बिंग हुई वहाँ पर। यह इकतालीस रहा होगा 42 रहा होगा।

प्र० : 41 में तो रुपया कोई बहुत कम नहीं था।

उ० : अरे सौ रुपया बड़े-बड़े लोगों को मिलता था। हमने कहा–'ठीक है। हम रह लेंगे।' करने लगे। उसके बाद क्यां हुआ कि जापानी की बाम्बिंग होने लगी। कलकत्ता श्मशान हो गया। एक आदमी अब कहें, आप गए हैं कलकत्ता न, हैरीसन रोड वगैरह देखा है ? हैरीसन रोड पर एक आदमी नहीं था। ऐसा जैसे शून्य जंगल पड़ा हुआ है। लोग छोड़-छोड़ करके भागे। मकान में ताला लगाकर के भागे। किसी ने कोई परवाह नहीं की कि हमारा क्या होगा। जो कुछ बाल बताल था वह सब लेते गए लेकिन लोगों की तिजौरियाँ बँद की बँद ही रह गईं, खाली तिजौरियाँ। इस तरह से लोग भाग गए। उसके बाद क्या हुआ कि वह जो आफिस था, आफिस जो बना था वह भी दिल्ली ट्रान्सफर हो गया। सेठजी दिल्ली आ गए। सब लोगों ने कलकत्ता छोड़ दिया उन दिनों यहाँ पर मन्दिर बन रहा था इनका, बिड़ला मन्दिर जो है, यह बन रहा था। यहाँ आ गया ऑफिस। ❑

साहित्य, शिक्षा और कला की त्रिवेणी : डॉ० रामकुमार वर्मा

आधुनिक हिन्दी साहित्य और शिक्षा-संसार जिन उल्लेखनीय व्यक्तित्वों से समृद्ध हुआ उन्हीं में एक विशिष्ट रचनाकार प्राध्यापक डॉ रामकुमार वर्मा हैं, जिनका जन्म 15 सितम्बर, 1905 ई० को सागर (म० प्र०) में हुआ था।

रहस्यवादी हिन्दी काव्य के एक स्तम्भ होने के साथ-साथ, हिन्दी नाटकों में भी अपने अपूर्व योगदान के लिए, इतिहास में उल्लेखनीय हैं और स्वयं श्रेष्ठ शिक्षक के अतिरिक्त साहित्येतिहासकार के रूप में भी समादृत स्वीकृत हैं।

आपकी जीवन-यात्रा भी अनुभव-वैभव से भरी हुई अनेक अलिखित संदर्भों की धरोहर ही है। अनेक मौलिक विशिष्ट ग्रंथों के प्रणेता डॉ० वर्मा की यह लम्बी रिकॉर्डिंग इलाहाबाद केन्द्र पर 25 अप्रैल, 1985 से 28 अप्रैल, 1985 को हुई जिसके मात्र कुछ चुने हुए मार्मिक प्रसंग यहाँ प्रस्तुत हैं।

इनसे वार्ता कर रहे हैं आधुनिक हिन्दी काव्य जगत के वरिष्ठ कवि एवं आकाशवाणी के एक पूर्व उपमहानिदेशक - श्री गिरिजा कुमार माथुर। ❑

प्र० : आप बताएं कि आपका जन्म कहां हुआ था?

उ० : मैं सोचता हूँ कि आपने जो प्रारम्भिक परिचय में संकेत किया कि मेरा जन्म सागर में हुआ। इसे मैं न केवल संयोग मानता हूँ, बल्कि सौभाग्य भी मानता हूँ कि सागर मध्यप्रदेश की ऐसी भव्य भूमि है और जिनकी कीर्ति-पताका आज भी इस भारतीय गगन मण्डल में फहरा रही है।

मेरे प्रपितामह श्री विश्राम सिंह जी थे जो कानपुर निवासी थे। कानपुर में एक घाटमपुर तहसील है वहां हमारा कुल निवास करता था। हम लोग कौशल गोत्र के हैं और श्री विश्रामसिंह घाटमपुर में रहते हुए इतने तेजस्वी व्यक्ति थे कि वो अक्सर कानपुर आया करते थे और कानपुर के जो नाना साहब विठुर थे जिन्होंने कि 22 मई को क्रांति का बिगुल बजाया था, भारत के प्रथम स्वतन्त्रा संग्राम का कानपुर से और जिसका संकेत उन्होंने कलकत्ते तक भेज दिया था, मंगलपांडे के पास और उसकी किरण शायद सभी दिशाओं में फैली थी जिसमें कि महारानी लक्ष्मीबाई झांसी भी थीं, उन्होंने बड़ा भारी क्रांतिकारी कार्य किया था।

प्र० : हां जो चिंगारी मेरठ से चली थी। (हाँ) उठी थी, जली थी, भभकी थी, वह सागर तक पहुँची?

उ० : हाँ। अब मैं आपको यह बतला दूँ कि मेरे प्रपितामह विश्रामसिंह जी ने नानासाहब का सहायक बनकर सारे प्रांतों का पर्यटन किया। वह वहाँ से कालपी भी गए, वहाँ से झांसी भी गए और स्वतंत्रता संग्राम में उन्होंने भाग भी लिया। लेकिन जब स्वतंत्रता संग्राम असफल हो गया, ईस्ट इंडिया कम्पनी के कारण और वहाँ से वह कानपुर से झांसी, झांसी से सागर और सागर से नरसिंहपुर आए जहाँ पर कि गोपनीय रूप में रहे। इसीलिए गिरिजाकुमार जी मैंने कहा कि यह संयोग ही नहीं है, एक सौभाग्य भी था कि मैंने उस वंश में जन्म लिया और सागर में जन्म लिया जहाँ मेरे प्रपितामह विश्रामसिंह भोसले राजाओं के अंतगर्त कार्य करते रहे लेकिन जब ईस्ट इंडिया कम्पनी के कर्मचारियों को यह पता लगा कि एक विद्रोही यहाँ रह रहा है, तो फिर उनका-पीछा किया। वह फिर भूमिगत हो गए। और भूमिगत होकर वह फिर नरसिंहपुर जिले में आए। वहाँ का एक गांव है उसका नाम श्रीनगर है। उस गाँव को उन्होंने खरीदा।

प्र० : कितनी दूर है वहाँ से नरसिंहपुर ?

उ० : वह नरसिंहपुर से 38 कि०मी० है। वह बड़ा सुन्दर गांव है, श्रीनगर नाम ही दिया गया है। जब ईस्ट इंडिया कम्पनी को पता चला कि यहाँ एक विद्रोही रह रहा है तो उन्होंने आक्रमण किया। हमारी गढ़ी को जलाया और कहा ये जाता है कि हमारी स्त्रियाँ जंगल में भाग गईं हमारे घर की स्त्रियाँ और छिपकर के सौ सिपाही जो थे सम्मान बचाने के लिए और वे सौ सिपाही जो थे वहीं मारे गए हमारी गढ़ी जलाई गई। और गढ़ी जलाने के बाद जो सामान लूटा गया उसका इस बात का पूरा आलेख है कि हमारे घर से चालीस थाली अशर्फियाँ ईस्ट इंडिया कम्पनी के सिपाही लूटकर ले गए। सब भाग गईं जंगल में और उनको खोजनें में बडा विलम्ब लगा और हमारे जो प्रपितामह विश्रामसिंह थे वह लड़े और घायल होकर कराहते हुए सिपाही लोग उनको छोड़कर के भाग गए।

प्र० : सागर का तो डॉक्टर साहब बहुत ज्यादा नाम है। 1857 की क्रांति में और नरसिंहपुर में आपके जब पितामह चले गए थे विश्रामसिंह जी उनके बाद आपके जो पितामह थे वो नरसिंहपुर में ही जन्में अथवा सागर में जन्में। सागर में आप पुनः वापस आए नरसिंहपुर से और वहां की जितनी जायदाद थी वह, जैसा आपने कहा वो सब लूट गए।

उ० : इसमें अधिकांश लोग तो कानपुर में पैदा हुए फिर आगे श्रीनगर में पैदा हुए। श्रीनगर जो गांव था नरसिंहपुर के पास। तो जिस समय वह स्वस्थ हुए विश्रामसिंह, मेरे प्रपितामह तो उनके छोटे भाई थे राजा रामकरण। उन्होंने फिर कहा कि ईस्ट इंडिया के सिपाहियों को पता लग गया है कि मैं यहाँ रह रहा हूँ और वे फिर मुझे छोड़ेंगे नहीं, मुझे फाँसी पर लटकायेंगे। मुझे घायल छोड़कर चले गए हैं। जब मैं स्वस्थ हो गया क्योंकि सभी विद्रोहियों को उन्होंने फाँसी पर चढ़ाया था। इसलिए मैं सोचता हूँ कि अब जीवन का अंत समीप है, मैं नहीं चाहता हूँ कि फाँसी पर लटकाया जाऊँ। मेरे वंश की परम्परा नष्ट हो, इससे मैं यह चाहता हूँ मेरा बेटा रामचरण है इसको तुम संरक्षण में लो और मैं अब भगवद्भजन करने जाऊँगा और उन्होंने अपने सारे शरीर में भस्म-लेपन किया, कमण्डल उठाया और श्रीराम (हमारे यहाँ जो परंपरा है कि भगवान हैं उनका नाम) जपते हुए वहां बचई के जंगलों में चले गए। और कहने लगे वहां जंगली पशु-पक्षी मिलते हैं। तो उन्होंने कहा कि अगर मैं एक वर्ष तक न आऊँ तो समझना कि मैं संसार से चला गया और मेरा श्राद्ध कर देना।

प्र० : श्रीराम का नाम लेते हुए चले गए। और श्रीराम का नाम संभवतः इसीलिए भी उस भाव में लिया होगा कि श्रीराम भी इसी वन में रहे और इसी के ऊपर तुलसीदास ने अरण्यकाण्ड भी लिखा है। क्या साकेत जो आपने नाम रखा है अपने बंगले का, उसी परम्परा की स्मृति में रखा है?

उ० : बिलकुल। उसका कारण मैं आपको और बतला दूँगा कि मेरे पितामह जो थे वो इतने रामभक्त थे कि सारा तुलसी साहित्य उन्हें कण्ठस्थ था। जी, बिना राम के वो कुछ खाते-पीते नहीं थे। एक घटना हैं, घर के लोग बाहर मेले में चले गए थे। बच्चे भी चले गये थे, बूढ़े भी चले गये थे मेले में। घरों में केवल स्त्रियाँ थीं और हमारे पितामह शोभाराव जी जो बड़े राम के भक्त थे वह ही थे। बिना राम के नाम के न वह खाते थे न पीते थे।

वह बड़े भारी जमीदार थे, यहीं थे और कोई नौकरी नहीं की है उन्होंने। अच्छा तो क्या हुआ उन्हें प्यास लगी, वह पानी पीना चाहते थे, अब राम कहने वाला कोई नहीं था वह कहते राम मैं पानी पीना चाहता हूँ राम बोलो। जब तक कोई राम को दोहराता नहीं था तब तक तो वह न खाते थे न पीते थे। अब कोई राम कहने वाला नहीं था। क्योंकि घर के सब मेले में चले गए थे। स्त्रियाँ पीछे परदे में रहती थीं। ससुर के सामने और दादाजी के सामने कैसे वह बोलने में संकोच होता था उनको कि हमारी वाणी उनको सुनाई देगी। कहीं कहेंगे बेशर्म है क्या। तो जब कोई 15 मिनट हो गए कोई राम बोलने वाला नहीं था तब हमारे पिता शोभाराम जी ने कहा कि अरे कोई राम कहने वाला इस घर में नहीं है। अगर बहुएँ हैं तो वह अपने मन में जोर से राम कह लें और दरवाजे की सांकल बजा दें तो मुझको मालूम हो जाएगा कि तुमने राम कह दिया।" तो हमारी चाची ने राम कहा और सांकल बजा दी। तब हमारे पितामह ने कहा- अच्छा राम बोल गए अब मैं पानी पीऊँगा।" और जो आप मेरा नाम बार-बार ले रहे हैं यही मेरे पितामह शोभाराम जी की ही देन है क्योंकि राम के वह इतने भक्त थे कि अपने पौत्र का नाम राम के नाम पर ही रखा उन्होंने।

देखिए ऐसा हुआ कि जब श्रीनगर की गढ़ी जल गई हमारी तो जो छोटे भाई थे विश्रामसिंह

जी के, छत्रसाल, उनका नाम था। वो छत्रसाल जी पहले बघासपुर नाम का गाँव था बड़ा भारी श्रीनगर के बाद वहाँ आए और उसके बाद नरसिंहपुर जिला जब अंग्रेजों के बाद जमाने में बना तो वह नरसिंहपुर में स्थिर हो गए। तो एक दिन वह अपनी हवेली के सामने बैठे हुए अपने मुसाहिबों से बात कर रहे थे। डिप्टी क्लैक्टर जो उस समय वहाँ डिप्टी कमिश्नर कहलाता था वह आया घोड़े पर। वह घोड़े पर छह बजे उठकर सारे शहर में घूमता था।

प्र० : अंग्रेज था क्या वह?

उ० : अंग्रेज। सबसे बड़ी ऊँची जगह तहसीलदार था और डिप्टी क्लैक्टर जो था वह तो अंग्रेज ही हुआ करता था। गार्ड अंग्रेज हुआ करता था ड्राइवर अंग्रेज होता था रेलवे ट्रेन में। यानि इत्ते करैंटे भरे हुए थे इतने एंग्लोइंडियन थे वहाँ पर कि लोग डरते थे उनको देख के कि कहाँ किस को हंटर मार दे।

प्र० : और दूसरा यही नाम एक और मेरे इस समय मन में आ रहा है वह डिप्टी क्लैक्टर के रूप में वो श्रीधर पाठक का। और तीसरा बाद में जो अपने बने वो बाद में कमिश्नर भी हुए।

उ० : हीरालाल जी थे।

प्र० : हीरालाल जी थे और पन्नालाल जी भी थे।

उ० : उस समय क्या हुआ कि हमारे पितामह हवेली के बरामदे में बैठे हुए थे वह और दो-चार मुसाहिब उनसे बातचीत कर रहे थे कि गाँव में क्या फसल पैदा हुई, क्या पैदावार हुई ? कैसी फसल है, कैसा खलिहान हैं ? क्या काम कर रहे हो ? इत्ते में वो डिप्टी कमिश्नर घोड़ा दौड़ाते हुए आया। आते ही हवेली के सामने उसने घोड़ा रोका। घोड़ा रोक करके वह उतरा घोड़े पर से और उसने मेरे पितामह से कहा छत्रसाल जी से- "तुम उठ के खड़ा क्यों नहीं हुआ?" तो मेरे पितामह ने कहा कि- "हम राजवंशी हैं। हम किसी नौकर को देख करके खड़े नहीं होते हैं। आप नौकर हैं सरकारी हम राजवंशी हैं। हमारी गढ़ी थी श्रीनगर जो आपने जलाई, हम क्यों खड़े हों आपको देख कर के- कहा "हम डिप्टी कमिश्नर है।" - "आप अंग्रेजों के डिप्टी कमिश्नर होंगे। हमारे डिप्टी कमिश्नर नहीं हैं। "अच्छा-अच्छा तो तुम मालगुजार हो। तुम जागीरदार हो। देखो तुम्हारा कितना लड़का हैं उन्होंने कहा मेरे तीन लड़के है। लक्ष्मीप्रसाद बड़ा है, राधाप्रसाद उससें छोटा है, जानकीप्रसाद सबसे छोटा है।

बड़ा लड़का क्या पढ़ता है? उन्होंने कहाँ वो हाईस्कूल पढ़ता है।" उन दिनों हाई-स्कूल मैट्रिकुलेशन जिसको आप बोलते हैं वह हाई स्कूल में पढ़ रहा है जबलपुर में। कहा- "उसको सरकारी नौकरी में हम लेंगे। सरकारी नौकरी में देना पड़ेगा उसको। "डिप्टी क्लैक्टर ने कहा। तो हमारे पितामह ने कहा कि- "साहब हम लोग जागीरदार हैं हम लोग नौकर नहीं होते हैं। हमारे यहाँ ऐसे पचासों नौकर हैं, हम नौकरी नहीं करते, नौकरी आप लोग करें। हम लोग नौकरी नहीं करने वाले हैं। हमारे यहाँ तो दर्जनों नौकर हैं साहब। हम किसकी नौकरी करेंगे? हम नौकरी नहीं करेंगे। "तो कमिश्नर ने कहा कि- "तुमको देना पड़ेगा, अगर नहीं देगा तो हम बड़े लड़के को गिरफ्तार करके ले जाएँगे, उसको सरकारी नौकरी देंगे। "तो उन्होंने कहा- "आप इस वक्त हमारे देश के हमारे मुल्क पर राज कर रहे हैं। आप जितना अत्याचार करें। हमारी गढ़ी जलाई, आपने हमारा धन लूटा जितना हमारी स्त्रियों को जंगल में भागने को मजबूर किया। हमारे भाई घायल पड़े रहे महीनों। आपको कोई चिंता नहीं थी। आपकी क्या बात हम मानेंगे?- "अच्छा हम भेजेगा चिट्ठी बड़े लड़के को तहसीलदार बना देगा।" और मेरे पिता को उन्होंने आर्डर भेजा- "यू टेक चार्ज आफ तहसीलदार इन सागर डिस्ट्रिक्ट आफटर ए वीक्स नोटिस।"

प्र० : वहीं जहाँ पर कि आप?

उ० : जहाँ पर कि मैं रहता था।

प्र० : जन्मे। तो ये बताएं कि आप ये तहसीलदार का पद तो बड़ा ऊँचा पद . . .।

उ० : उस समय का सबसे बड़ा पद था।

प्र० : वो किस सन् की बात है ये।

उ० : 1895। पहला उनका जो नियुक्ति पत्र प्राप्त हुआ था वो सागर का था जहाँ पर सन् 1905 में 15 सितम्बर के दिन मेरा जन्म हुआ था। उस समय कोई अभिज्ञान नहीं, ज्ञान नहीं मैं जानता ही नहीं कब कैसा क्या हुआ लेकिन सुना यह कि उस समय शाम के साढ़े चार बजे थे और मेरा जन्म हुआ तो मेरे बड़े भाई जो उस समय मौजूद थे वहां तो उन्होंने कहा कि पिताजी को खबर दो कि घर में भैया पैदा हुए हैं जल्दी से कोर्ट से आ जाएँ। तो चपरासी भेजा गया घर से कि ये शुभ समाचार दें। पिताजी ने डाँट दिया, कहा- "कमबख्त मैं मुकदमा कर रहा हूँ तुझे बीच में डिस्टर्ब करने की क्या जरूरत? गेट आउट।" पिताजी ने डांट के भगा दिया।

प्र० : तो उस जमाने में बड़े अफसर थे वो। और नियम के बड़े पाबंद थे।

उ० : अफसर थे वह। चपरासी भागकर के आया कि उन्होंने डाँट दिया कहा कि मुकदमा कर रहे हैं अभी। उन्होंने कहा कि भई वहाँ लोग आना शुरू हो गए हैं और वह यहाँ नहीं है तो उनका तो यहाँ होना जरूरी है। फिर लड़के की जन्मपत्री बनना है, पंडित को बुलाना है, फिर और बहुत से उत्सव हैं। एक नाचनेवाली को बुलाना है उस समय कायस्थों का यही रिवाज था।

प्र० : नहीं वह तो था उस समय। और पुत्र के जन्म पर तो इतना उत्सव मनाया ही जाता था।

उ० : तो मेरे जन्म पर सरस्वती नाम की नाचने वाली आई थी ये मुझे बताया गया। वह नाचने वाली आ गई थी उसके बाद पिताजी मुकदमा खत्म कर चुके तब वह घर आए।

प्र० : बंदूकें भी चली होंगी।

उ० : हाँ बंदूकें भी चलीं,पटाखे चले, शहनाई बजी सब कुछ हुआ तो जश्न मनाया गया। पंडित बुलाए गए, उन्होंने मेरी जन्मपत्री बनाई। लग्न में शनि है मकर का जिससे मैं दीर्घजीवी हो रहा हूँ वह मकर का शनि लग्न में है। पंचमहापुरुषों का लक्षण है।

प्र० : कृपा करके बताएं कि उस समारोह के बाद फिर आप जब पढ़े तो आपकी जो अपनी शिक्षा हुई क्या सागर से आरंभ हुई?

उ० : आप ये देखिए कि उस समय कोई भी सरकारी अफसर किसी भी जिले में तीन बरस से ज्यादा नहीं रहने दिया जाता था। पिताजी यही कहते थे कि लोगों में आत्मीयता न बढ़ने पाए शासन सुचारुता यथावत सुरक्षित रहे इसके लिए अफसर को एक स्थान पर नहीं रहना चाहिए। ऐसा अंग्रेजो का दृष्टिकोण था। तो मेरे पिताजी स्थानान्तरित होते रहे। सागर से वह मण्डला गए। मण्डला से डिटोरी नाम की तहसील गए फिर वहाँ से वो भण्डारा आए। वहाँ से बैतूल आए वहाँ से छिन्दवाड़ा आए। वहाँ से रामटेक गए।

प्र० : लेकिन एक बात बताएँ कि जो आपके पिता की जगह-जगह स्थानान्तरण होने से उसका क्या प्रभाव पड़ा और वह कविता में किस प्रकार आपके बाद में चलकर के अभिव्यक्ति हुई क्योंकि जो बचपन के और किशोरावस्था के जो अनुभव होते हैं प्राप्त वास्तविक संसार से ही

किसी-न-किसी रूप में प्रति बिम्ब बनकर के, काव्यतथ्य बनकर के उभरते हैं।

उ० : ये बता दूं भिन्न-भिन्न स्थानों के रहने के कारण और मेरे पिताजी तहसीलदार थे इसलिए कितने लड़कों ने, कितनी स्त्रियों ने मुझे खिलाया है गोद में और मैं एक बात और कह दूं शायद मेरे सिवाय किसी को नही मालूम। रामटेक बड़ा प्रसिद्ध धार्मिक स्थान है। एक तो रामगिरि के बारे में मैंने संकेत कर दिया है, दूसरा वहाँ एक अम्बाला का तालाब था, अम्बाला तालाब में स्नान कर के पहाड़ी पर राम मंदिर है बहुत बड़ा। तो लोग जाते थे। तो पिताजी के पास एक तांगा था तो उस तांगे पर बैठकर हम लोग जाते थे अम्बाला तालाब में हम लोग सब परिवार के, माँ बड़े भाई-बहन वगैह, स्नान करते थे अम्बाला तालाब में फिर वहा से गढ़ी पर जो राम मंदिर था जिसमें कि 12 सौ सीढ़िया चढ़ते समय थीं और सात सौ सीढ़िया उतरते समय थी। इस तरफ ज्यादा चढ़ाई थी उस तरफ भूमि ऊँची थी इसलिए सात सौ सीढ़िया बनी थीं तो हम लोग गिनते थे सीढ़िया। 1200 सीढ़ियां चढ़ते समय और राम मंदिर के दर्शन कर के वहाँ का प्रसाद पाकर के। और वहाँ एक वाराह की मूर्ति थी उसके नीचे से निकल के कहते थे कि जो इसके नीचे से निकलेगा उत्ते ही साल उसकी उमर बढ़ेगी। हम लोग बार-बार निकलते थे वाराह की मूर्ति के नीचे से और राम मंदिर दर्शन करते थे वहाँ से प्रसाद पाकर के फिर दूसरी तरफ 700 सीढ़ियों से उतरते थे। और वहाँ हमारा तांगा वहाँ जा के खड़ा हो जाता था। दूसरी तरफ यहाँ हम लोगों को पहुँचा करके वह घूम कर वहाँ खड़ा हो जाता था। हम लोग उतरकर बैठकर के घर आ जाते थे। रामटेक में ही मैंने ग्रामोफोन को पहली बार देखा।

ग्रामोफोन सारे नगर में एक व्यक्ति के पास था, मुंसिफ साहब के पास। उनका नाम था मुरलीधर। वह चौगे वाला, बड़ा वाला कुत्ता जिसमें बैठा सुन रहा है। वो, किसी को ग्रामोफोन सुनने की इच्छा होती थी तो वह मुंशी साहब हमें ग्रामोफोन सुनना है, आप भिजवा दीजिए।

प्र० : ये किस सन् की बात है?

उ० : 1912-13 और उस समय के रिकार्डो में क्या थे कि- "धूएँ की गाड़ी उड़ाए लिए जाए हो। और रंग-रंगभंग का लोटा, रंगभंग का लोटा। फिर एक था गुलनारों में राधा प्यारी बसें।" ये जानकी बाई इलाहाबाद। इलाहाबाद में पहली बार सुना रामटेक में।

प्र० : क्या गीत था वह?

उ० : गुलनारों में राधा प्यारी बसे। और बहुत से गाने जो थे वो जानकी बाई इलाहाबाद। रिकार्ड के अंत में कहती थी वह, मेरा नाम जानकी बाई इलाहाबाद।

प्र० : सन् 14 के बाद फिर नागपुर छोड़ कर के चले आए आप। फिर नागपुर छोड़कर के कहाँ गए आप?

उ० : पिताजी का उसके बाद, रामटेक के बाद ट्रांसफर हुआ बस्तर स्टेट में दीवान। उस समय राजा थे रुद्रप्रतापसिंह जू देव। जगदलपुर उसकी राजधानी थी। रायपुर तक रेल थी और रेल के बाद हम लोग मोटर से आते थे। राजा साहब मोटर भेज देते थे तो मोटर से जाते थे रायपुर 1185 मील जगदलपुर था। हम लोग बच्चे थे, याद रखते थे कितने मील दूर है। रास्ते में कौन-कौन से गाँव पड़ते हैं। कासकेल पड़ता है, बटोंदा पड़ता है, उसके बाद काकी सबसे पहले पड़ता है फिर अंत में जगदलपुर पड़ता है।

प्र० : कितनी देर में पहुँचते थे उस समय?

उ० : मैं समझता हूँ कि हम लोग सुबह वहाँ से चलते थे और शाम तक पहुंच जाते थे।

प्र० : सन् 15 की बात है ये ?

उ० : सन् 15 की बात है। 12 से 14 तक हम रामटेक में रहे। और रामटेक में सारी मराठी संस्कृति। दत्तात्रेय की पूजा वह सब मेरी माँ पर एक चुड़ैल आई थी मैंने एक नाटक में उसका भी जिक्र किया है कुएँ मे झांकने के लिए गई और. . . . गोविंदराम कोंमठी नाम का एक मराठा था वह भूतप्रेतों पर बड़ा अधिकार रखता था। उसने हमारी बड़ी बहन का झोटा पकड़कर पूछा- "बोल कहाँ से आई है तू? बोल कहाँ से आई है तू। कुएँ में झांकने के लिए गई थी ये?

प्र० : ये नागपुर का संस्मरण है? लेकिन जगदलपुर का संस्मरण आप बता रहे थे अभी।

उ० : वह दूसरा संस्मरण है। अच्छा, रामटेक में मैंने पतंगें बहुत बढ़िया तरह से उड़ाई हैं। मैंने बहुत अच्छी तरह से गिल्ली खेली है। बहुत अच्छी तरह से गोली खेली है। यहाँ से लेकर के वहाँ तक की चोट निशान लेकर के मारता था।

फिर 1914 के बाद मेरे पिताजी का ट्रांसफर हो गया 'एज दीवान बस्तर स्टेट'। उस समय महाराज साहब बहुत कृपालु थे हमारे पिताजी पर। क्योंकि सबसे अधिक पढ़े लिखे हमारे पिताजी ही थे। उन्होंने मैट्रिकुलेशन पास किया था। सबसे बड़ी ऊँची शिक्षा थी उस समय हमारे मध्यप्रदेश में। उसके बाद ये हुआ कि हमारे घर रोज हाथी आता था हमारी माँ के लिए हथिनी आती थी घुमाने के लिए सुबह प्रातःकाल कुम्हड़ाकोट जाते थे घूमने के लिए। अच्छा एक बात विशेष महत्वपूर्ण है महाराजा साहब का कोई लड़का नहीं था उनके एक लड़की थी प्रफुल्ल कुमारी देवी था जिसका नाम, भंजदेव के साथ शादी हुई जिसकी। प्रफुल्ल कुमारी देवी उसके बचपन का नाम बाबीधानी।

प्र० : क्या?

उ० : बाबीधानी। घर में सब उसको राजा साहब और रानी साहब बाबीधानी कहकर पुकारते थे। हम लोग दीवान साहब के लड़के थे। इसलिए खेलने के लिए हमारा जो मोटर ड्राइवर था वह राजमहल में पहुंचा देता था और हम लोग वहाँ बाबीधानी के साथ खेलते थे। एक दिन बाबीधानी से लड़ाई हो गई। अच्छा होता ये था कि खेल के बाद रानी साहब बुलाती थी भइया दो-दो रुपया ले लेओ। हमारी बेटी के साथ तुम खेले हो, दो-दो रुपया ले लेओ। हम कहते थे- "नहीं रानी साहब, हम तो बचपन में खेलते हैं हमें क्या चाहिए। हमें नहीं चाहिए। कहा-लेओ, लेना पड़ेगा, लेना पड़ेगा नहीं तो हम तुम्हारे पिताजी से शिकायत कर देंगे। दो-दो रुपये मुझको देती थी हम लोगों को।

प्र० : उस समय दस वर्ष के थे?

उ० : 1914 । नौ और पांच चौहद, नौ वर्ष का था।

प्र० : नौ वर्ष के थे। तो आपकी शिक्षा हुई, वहाँ जगदलपुर में?

उ० : हाँ हुई। दूसरी तीसरी में मैंने मराठी पढ़ी और चौथी मैंने जगदलपुर में पढ़ी बस्तर में।

प्र० : तो हिन्दी पढ़ी होगी?

उ० : हिन्दी पढ़ी। तो एक बार क्या हुआ कि बाबीधानी ने मुझे गाली दे दी। और उस समय यह ज्ञान तो था नही कि मैं दीवान साहब का लड़का हूं। उसने कह दिया सूअर गधे। मुझे गाली

दी। मैंने आव देखा न ताव मैंने एक चपत लगा दी, बाबीधानी को। बाबीधानी रोती हुई अपनी रानी मां के पास गई, शिकायत की कि भइया ने मुझे मार दिया है एक तमाचा। मेरी तलब हुई, रानी साहब ने बुलाया है- "बेटे तुमने क्यों बाबीधानी को मारा?" मैंने कहा- "रानी साहब, इसने मुझे सूअर गधे क्यों कहा। मैं सूअर हूं?' मैं गधा हूं?" उस समय बाबीधानी से कहा तुमने गाली दी?- "हां मुझे चिढ़ाता था।" मैंने गाली दी।" देखो गाली नहीं देना। गाली मत देना। गाली दोगी तो हम तुम्हें मारेंगे। गाली से मुँह खराब होता है।" ये वाक्या मुझे याद हैं। तभी से मैंने गाली देना बंद कर दिया।

संस्कार शील महिला थीं वह। उसने कहा था गाली देने से मुंह खराब होता है ये बचपन का वाक्य था जो कानों में गूंजता रहता है, ये रानी साहब के शब्द थे। एक छोटी बात कह दूँ। उसके बाद ये हुआ कि मेरे पिताजी दो वर्ष रहे बस्तर जगदलपुर में। मेरे पिताजी न्याय पक्षपाती थे। न्याय का पक्ष ग्रहण करने वाले थे और राजा साहब के बड़े खुशामदी रहते हैं, बड़ी शिकायत की कि साहब यह आपका नाम बदनाम करता है लक्ष्मी प्रसाद, यह अपनी ईमानदारी का डंका पीटता है, सोचता है कि मैं राजा साहब से भी बड़ा हूँ। मैं राजा साहब को चाहता हूँ मैं दीवान हूँ। तो उस समय जो पौलिटिकल एजेंट था उसका नाम था लैंगहार्न। लैंगहार्न आया तो पिताजी से उसने पूछा कि- "उन्होंने कहा- "एब्सोल्यूटली नॉट।" आइ डोंट नौ अबाउट दिस। कहा- "दिस इज कम्पलेंट अगेंस्ट यू। कहा- "नो इट्स रांग। कहा- कि "वैल यू शुड अपोलोजाइज विफोर द महाराजा। उन्होंने कहा- "आइ हैव नॉट कमिटेड एनी मिस्टेक वाई शुड आइ अपोलाजाइज? वाई शुड आइ अपालोजाइज। आइ एम पोलिटिकल एंजेंट। दिस इज माई आर्डर। कहा- "सारी आइ शैल नॉट। आइ हियर बाई रिजाइन। और पिताजी से 1914 में अपने उस महत्वपूर्ण पद पर, दीवान जिसके घर पर हाथी आता था और मोटर आती थी, उसका रुख देखा जाता था। घूमने जाएंगे वहाँ रथ निकलता था वहाँ बलि दी जाती थी। हम लोग मोटर में जाते थे। बहुत बड़े-बड़े संस्मरण हैं वहाँ दंतेश्वरी देवी के मंदिर पर, महाराजा की आराध्य थीं दंतेश्वरी देवी। हम लोग दंतेश्वरी देवी जाते थे, कुम्हड़ाकोट जाते थे, पूजा करते थे।

प्र० : तो उन्होंने त्यागपत्र दे दिया दीवान से?

उ० : भई, बात यह है कि हमारे वंश की एक परम्परा थी। हम लोग कभी झुके नहीं।

प्र० : नहीं, स्वाभिमान था आपका। तो कहाँ आए वह वापिस?

उ० : सिहोरा। जबलपुर की तहसील है। सिहोरा रोड़ तहसील जहाँ मेरा अंग्रेजी का अध्ययन शुरू हुआ। चौथी मैंने पास की थी जगदलपुर में बस्तर स्टेट में। जब पिछली बार भारतीय हिन्दी परिषद का अधिवेशन हुआ तो काकतीय नरेश ने इन्वाइट किया था। हम लोगों को मयूर भंजदेव और उस समय बाबीधानी नहीं थीं मैंने उनसे कहा कि- "बाबीधानी कहाँ हैं ? मैं अपनी पुरानी मुलाकात करना चाहता हूँ, हम लोग साथ-साथ खेलते थे वो संसार से चली गई।" उन्होंने कहा।

प्र० : तो आपके पिता जो हैं वह न दैन्यं न पलायनम् में विश्वास करते थे।

उ० : वह सिहोरा आए तहसीलदार के पद पर और वहीं पर मेरी काव्य के प्रति अभिरुचि। . . . यूँ तो मेरे वंश में कविता होती थी मेरे पितामह कवि थे, मेरे बड़े भाई भी कवि थे ब्रजभाषा के। लेकिन कविता मुझे छूती नहीं थी लेकिन कविता के प्रति जागरुकता जो प्रारंभ हुई वह 1917 से।

प्र० : यानी जिस समय आप की अवस्था 12 वर्ष की थी। और आप किस क्लास में पढ़ते थे?

उ० : सैविंथ क्लास में।

प्र० : तो सिहोरा रोड में तो मिडिल स्कूल रहा होगा उस समय . . .।

उ० : सिहोरा रोड में तो सरकार के द्वारा तो मिडिल स्कूल स्थापित हुआ था वहाँ हाई स्कूल नहीं था। उसका नाम एफ.जी.एम. स्कूल। फस्ट ग्रेड मिडिल स्कूल। और वह मेरे पिताजी के बंगले के बिलकुल नीचे ही था क्योंकि पिताजी का बंगला एक पहाड़ी पर बना हुआ था और हम लोगों को पहाड़ी पर रहने के कारण जो प्रातः कालीन सूर्योदय होता था और संध्या समय जब सूर्यास्त होता था उस समय हम लोग अपने बंगले के उच्चतम स्थान पर पहुंचकर के ये सुन्दर दृश्य देखा करते थे कि आकाश कितने रंग बदलता है। कितने सुन्दर रंग बनते हैं और कैसी हवा चलती है आदि-आदि। ये तो उस पहाड़ी का सौन्दर्य था जिसपर कि पिताजी का बंगला बना हुआ था।

सुन्दरस्थान पर बना हुआ था। और वहां से जब हम उतरते थे दौड़ते हुए नीचे उतरते थे तो हमारे स्कूल का अहाता था एफ.जी.एम. स्कूल फस्टग्रेड मिडिल स्कूल।

उस समय उसमें सात अध्यापक थे, हैडमास्टर थे पं० धानीराम पाण्डेय और जो मास्टर साहब मेरी क्लास लेते थे उनका नाम था पं० विश्वम्भर प्रसाद गौतम। साहित्यिक अभिरुचि के व्यक्ति थे और क्योंकि उन्होंने हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण कर ली थी इसलिए उनको विशारद की उपाधि मिली थी। इसलिए लोग उनको विशारद जी विशारद जी कहते थे। हम लोग उनका नाम नहीं लेते थे। पंडित जी- कहते थे या विशारद जी कहते थे। अच्छी साहित्यिक रुचि होने के कारण हमको हिन्दी विशेष रूप से पढ़ाया करते थे। उस समय दो पाठ्य पुस्तकें थी। एक पाठ्य पुस्तक थी- "हितकारणी कालेज के जो प्रिंसिपल थे पं० रघुवर प्रसाद द्विवेदी उन्होंने एक पुस्तक लिखी थी सदाचार दर्पण। वह उन्होंने हमारे पाठ्यक्रम में रख दी थी और वह सदाचार दर्पण हमको सिखलाते थे, पढ़ाते थे उसका पाठ। और फिर साथ-ही-साथ ज्ञान की बातें मौखिक रुप में बताई जा सकती हैं बच्चों को सच बोलना चाहिए, बच्चों को ब्रहमचर्य रखना चाहिए। मैंने कहा- "पंडित जी ब्रहमचर्य मायने क्या हैं ? तो हमको समझाते थे कि -"ब्रह्मचर्य के मायने ये हैं कि अपने मन को साफ रखना, बुरे विचारों को मन में नहीं आने देना समझे। और आत्मसंयम शब्द नहीं जानते थे हम उस समय, अपने मन को साफ रखना। अपने मन से बुरी बातें नहीं सोचना। ये बातें हैं तुम्हारे ब्रह्मचर्य की।

उस समय संयोग से विश्म्भर प्रसाद जी गौतम कवि भी थे। और उस समय प्रयाग से एक पत्र निकलता था मासिक पं० रामजी लाल शर्मा के सम्पादन में उसका नाम था "विघार्थी"। उसमें विघार्थियों के उपयोग की सारी बातें छपा करती थीं। सारे लेखों के द्वारा राव राजा श्याम बिहारी मिश्र के द्वारा, कभी-कभी अयोध्या प्रसाद सिंह "हरिऔध" के द्वारा। कभी-कभी श्यामसुन्दर दास के द्वारा ये कुछ लेख छपते थे, वह हमको सुनाते थे क्लास में। और कविताएँ छपती थी जिसमें कि विशारद जी, हमारे पंडित जी अपनी कविताएँ लिख के भेजते थे।

प्र० : अच्छा उनकी कविताएँ प्रकाशित होती थीं?

उ० : प्रकाशित होती थीं। एक बार क्या हुआ गिरिजा कुमार जी, हमें उन्होंने कविता साफ अक्षरों में लिखने को दी। वह घसीट कर लिखते थे। और मेरा हस्ताक्षर सुन्दर था सुलेख था। वह कहते थे कि- "बेटे तुम इसकी नकल कर दिया करो और हम भेज दिया करेंगे। अब दुर्भाग्य

की बात यह हुई कि उन्होंने जो कागज मुझे दिया कविता का लिखा हुआ उसकी दूसरी पंक्ति पर पानी पड़ गया। वह धुंधला हो गया, पढ़ा नहीं जा सकता था क्या है।

प्र० : वह पंक्ति क्या थी?

उ० : वह पहली पंक्ति थी- मतलबी मिलते मन मोहते और दूसरी पंक्ति पर पानी पढ़ गया और वह पढ़ी नहीं गई।

प्र० : तो अब आपको बहुत चिंता हुई होगी, घबराहट हुई होगी ?

उ० : अब मैंने कहा कि- "पंडित जी बहुत नाराज होंगे। उनको याद नहीं होगा, क्या लिखा है और हमने तो उस पंक्ति को ही गला दिया पानी में। खाना खाते समय देख रहे थे, पानी पड़ गया किसी तरह से उस पर। अब हम बहुत चिंतित रहे एक दिन। मैंने कहा- "क्या करूँ मैं? तो मैंने कहा कि- चलो अपने मन से ही इसी की तुलना पर कुछ लिख दूँ मैं। अगर गलती होगी तो वह कहेंगे ये पंक्ति नहीं। यह तुमने क्या लिख दिया? हमने तो यह लिखा नहीं था,यह क्या लिखा है तुमने? मैंने कहा- डाँट ही देंगे और यों हम कहेंगे कि साहब मिट गई वह तो बहुत नाराज होंगे। तो मैंने दूसरी पंक्ति लिखी। गुरु के नीचे गुरु और लघु के नीचे लघु। ऐसा करके कि जो बड़ा अक्षर है उसके लिए बड़ा अक्षर।

प्र० : छंद नहीं मालूम था लेकिन आपने उसकी . . .

उ० : छंद नहीं मालूम था। लेकिन हमने लिखा कि-मतलबी मिलते मोहते, हमने नीचे लिख दिया मन मिला मन में मधु घोलते। मन में विष घोलते।

प्र० : मन में विष घोलते क्योंकि मतलबी मिलते मन मोहते। मन मिला मधु में विष घोलते। ये तो आपने बिलकुल ही उसकी उसके ही वजन की, उसके ही छंद की मात्राओं के अनुकूल और द्रुत विलम्बित ही लिख दिया।

उ० : दुत विलम्बित लेकिन मैंने तो गुरु के नीचे गुरु, लघु के नीचे लघु लिखा। अब जब ये पंक्ति आई सामने उनके ये पंक्ति तो मैंने लिखी नहीं थी ये कैसे आ गयी इसमें? तब मैंने अपना अपराध स्वीकार किया। मैंने कहा कि- "पंडित जी मैं खाना खा रहा था और दुर्भाग्य से पानी का छींटा पड़ गया कागज पर और घुल गए सारे अक्षर। मिट गए। आपने हल्के हाथ से लिखे थे ।" अब मैं डरने लगा कि आप नाराज होंगे मुझ पर तो मैंने लिख दिया। अरे तूने तो बिलकुल अच्छा लिख दिया। मेरी पंक्ति से अच्छी पंक्ति हैं ये ! तु तो कवि है।" और उन्होंने मेरी पीठ पर शाबाशी दी। अरे तु तो कवि है। मुझसे अच्छी पंक्ति है ये तो अब मेरे मन में बड़ा उत्साह आया। मैंने कहा- "पंडित जी आइंदा आप दिया कीजिए मुझे कविता करने के लिए और उसी को देखकर मैं दूसरी कविता जोड़ा करूंगा। इसकी नकल में कि आपने जैसी कविता लिखी है गुरु लघु से वैसा मैं जोडूंगा।"

अच्छा दूसरी बात यह थी गिरिजा कुमार जी– "कि मेरी माँ ने मुझे संगीत का वरदान दिया था। आपको बताया था तो इन कविताओं को मैं बड़े स्वर से गाया करता था। जब कोई वार्षिक अधिवेशन होता था तो हैडमास्टर धनीराम पाण्डेय जिनको लोग हंसी में कहते थे पाण्डेराम धनी उलट देते थे वह खड़ा कर देते थे। रामकुमार तुम गाओ। तो मैं जो पंडित जी कविता लिख देते थे, उनको मैं तरह-तरह से गाया करता था।

प्र० : तो यह ध्यान है कि आपने कविता सस्वर पाठ की।

उ० : यह 1917 की बात है।

प्र० : यह तो कविता जिसमें आपने पंक्ति जोड़ी थी-मतलबी मिलते मन मोहते मधु मिला मधु विष में घोलते थे" ये क्या आपने सस्वर पाठ किया था उस समय?

उ० : जी हाँ। बिलकुल। हमने गाया ही।

प्र० : तो कैसे आपने सस्वर पाठ किया था आपको कुछ स्मरण है और क्या आप उसको गुनगुना सकेंगे इस समय? ये तो आपकी बड़ी ही अविस्मरणीय घटना है और मैं ये समझता हूँ कि ये बड़ी नाटकीय घटना है। अत्यंत नाटकीय रूप में आपने कविता में प्रारंभ किया।

उ० : उन्होंने कहा कि तू कवि है ये तो मैं पहचान रहा हूँ। ऐसा कहा उन्होंने। तू कवि है। तो पंडित जी जिस स्वर में कहते थे उसी स्वर में मैंने कह दिया था। मतलबी मिलते मन मोहते, मधु मिला मधु में विष घोलते।"

प्र० : इसके बाद फिर आपने कविता किस प्रकार लिखनी प्रारंभ कर दी?

उ० : मुझसे नहीं बनती थी उस समय। कोशिश करता था फिर फाड़ देता था। बनती नहीं थी। अच्छी नहीं लगती थी मुझे कि पंडित जी की कविता कितनी सुंदर है। मैंने गुरु के नीचे गुरु लघु के नीचे लिखा लेकिन कैसे हुआ। फिर उसी समय में 1916 से प्रयाग से एक पत्र निकलता था उसका नाम था "शिशु" जिसका सम्पादन करते थे पं० सुदर्शन आचार्य, बी. ए. और मैं चातक की तरह बाट जोहता था पहली तारीख की कि कब शिशु का अंक आता है। और उसमें तरह-तरह की कविताएँ होती थी। मैंने इसी तरह की कविताएँ लिखकर शिशु में भेजीं लेकिन छपी नहीं वे। फाड़कर फेंक दी गईं पता नहीं।

प्र० : बड़ी ही लोकप्रिय बच्चों के लिए पत्रिका थी।

उ० : उसके बाद प्रेस से बाल सखा निकलना शुरू हुआ। उसकी प्रतिद्वंद्विता में 1917 से वहीं प्रयाग से। इंडियन प्रेस प्रयाग से बाल सखा उस समय निकलना प्रारंभ हुआ 1917 से। 1916 से शिशु निकलता था। सुदर्शनाचार्य थे। जिसकी पंक्ति थी- पढ़ो बढ़ो भारत संतान हृदय धरो माता का ध्यान। तुम्हीं पर हैं आशा सारी मुख देखे भारत महतारी। ये उसकी प्रथम पंक्तियाँ थीं। जो हर महीने छपा करती थीं।

प्र० : उसमें फिर भेजी आपने?

उ० : मुझे याद है मैं हर कविता पढ़ता था बड़े स्वर से इसको और गाता था। तो मैं यह कहता था कि जो कविता का प्रस्फुरण अंजान रूप से और अज्ञात रूप से मेरे गुरु के द्वारा पहचाने हुए एक वाक्य के माध्यम से मेरा अभिज्ञान हुआ कि मेरी रुचि कविता में है।

प्र० : अच्छा फिर बालसखा में कविताएँ भेजी आपने?

उ० : बाद में कविताएँ छपी बालसखा में उस समय कविता नहीं छपीं। वह तोतली भाषा में बच्चे बोलते थे न। तो मैंने कहा तोतली भाषा में एक कविता लिखूंगा तोतली भाषा में एक कविता लिखी।

प्र० : कुछ पंक्तियाँ याद हैं उसकी?

उ० : एक बच्चे काठ के घोड़े पर चढ़ते हैं न, सवार होते हैं। तो मैंने लिखा था - है कैछा अलियल घोड़ा। घल छे बाहल मुझको ला कल चलने ते मुख मोला।

प्र० : हूँ ! कविता लिखने लगे थे उस वक्त आप?

उ० : घल से बाहल मुझको लाकल चलने से मुख मोला, है कैछा अलियल घोड़ा फिर आगे की पंक्ति

है- "चल-चल प्याले लाज दुलाले और चला चल थोड़ा। चल-चल- प्याले लाज दुलाले। मैं कविता नहीं कहता ये तो कुछ पंक्तिया जोड़ी हैं।

प्र० : यह तो आपका कविता के प्रति अभ्यास हो रहा था ?

उ० : हां। तल तल प्याले राज दुलाले औल तलातल तोला। है कैछा अलियल घोला। ये तुकबंदी लिखी थी मैंने। ये शिशु में छपी थी।

प्र० : फिर उसके बाद जब आप नाइंथ और टैंथ में आए ?

उ० : अच्छा अब देखिए इसके बाद दूसरा परिच्छेद जो आपने पूछ लिया ये बहुत अच्छा किया नहीं तो मैं और भटकता इसमें। हुआ ये कि 1917 या 1918 में हिंदी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन जबलपुर में हुआ। ये हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग का। उसके सभापति थे पं० रामावतार शर्मा पटना के। तो उस अवसर पर जो सांस्कृतिक कार्यक्रम तो नाम ही था नाटक खेले जाते थे। उस समय एक मंडली आई थी खण्डवा से। माखनलाल चतुर्वेदी का एक नाटक था।

प्र० : कृष्णार्जुन बहुत प्रसिद्ध नाटक है। माखन लाल जी का।

उ० : और दूसरा इसका रहस्य अगर आप चाहें तो खोल दूँ। खोलना पड़ेगा, खोलूँ?

प्र० : बताइए क्या है इसमें?

उ० : ये एक बड़ी भारी साहित्यिक भ्रान्ति का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। मैं आपको स्पष्ट कह दूँ कि माखन लाल चतुर्वेदी जी ने श्री कृष्णार्जुन नाटक न कभी लिखा, न वह लिख सकते थे।

प्र० : यह उनके नाम से फिर कैसे ये प्रसिद्ध हुआ?

उ० : इसमें मैं यह स्पष्टीकरण चाहता हूँ कि मुझे गुप्त रखने के लिए कहा था जो आपके आग्रह से मैं आज खोलना चाहता हूँ।

प्र० : नहीं देखिए साहित्यिक इतिहास है ये और साहित्यिक इतिहास को तथ्य को अवहेलित करना और साहित्य के इतिहासकार का परम दायित्व है। इसलिए जो सत्य है जो तथ्य है दोनों ही आप ही आप . . . .।

उ० : अच्छा आपके आग्रह से मैं इसे खोल दूंगा यद्यपि मैं . . . दो नाटक हुए थे श्री कृष्णार्जुन युद्ध माखनलाल चतुर्वेदी का जो कहा जाता है औ दूसरा प्रो० बद्रीनाथ भट्ट का "चन्द्रगुप्त नाटक। खण्डवा की कम्पनी ने, खण्डवा की मण्डली ने कृष्णार्जुन युद्ध खेला था जो अत्यंत सफल रहा और नरसिंह की मित्रमण्डली ने बद्रीनाथ भट्ट का चंद्रगुप्त खेला था जो कि असफल रहा और वह असफल हुआ मेरे कारण।

प्र० : कैसे?

उ० : अब ये दोनों कहानियां मैं आपके सामने बताता हूँ।

प्र० : बिलकुल यह तो साहित्य का एक ऐसा इतिहास है और एक ऐसा पृष्ठ है जिसको कि आप ही उद्घाटित कर सकते हैं। 1917 की बात आप बता रहे हैं। 1917 में जब साहित्य सम्मेलन हुआ था। तो आप 70 वर्ष के हो चुके हैं, आपके अतिरिक्त और कौन बता सकता है और ये साहित्य की घटना है और तथ्य है यह।

उ० : बड़ी महत्वपूर्ण घटना है उनकी क्योंकि लेखक की लड़की ने रो रोकर के ये कथा मेरे सामने और पं० द्वारिका प्रसाद मिश्र के सामने फूट-फूट कर कही ये कि ये पंडित जी किसी को नहीं मालूम। ये आप इसको उदघोषित कर दीजिए तो मेरे पिता जी का नाम होगा। उन्होंने कहा कि अब साहित्यिक भ्रान्ति को उदघाटित करने का समय नहीं है। आपको मैं पांच सौ

रुपये देता हू बस। ये द्वारिकाप्रसाद मिश्र का कहना है। जो अभी भी जीवित हैं वह मध्यप्रदेश में आजकल जबलपुर में रहते हैं। पचमढ़ी में।

प्र० : तो आप बताइए?

उ० : अच्छा तो मैं बताता हूँ। पहले तो अपनै नाटक की कथा कहता हूँ कि असफल कैसे हुआ वह मैं उस समय सिहोरा में था। मेरे बड़े भाई श्री रामेश्वर दयाल वर्मा प्रयाग में एल.एल. बी. पढ़ते थे, वह उस मित्रमण्डली के मैनेजर थे जो कि उस नाटक को करा रहे थे, साहित्य सम्मेलन के अवसर पर जबलपुर में। उसमें जो कथानक है वह ये था कि महानंद के विनाश के बाद चन्द्रगुप्त गद्दी पर बैठता है। और चंद्रगुप्त ने महानंद के सारे मंत्रियों को निष्कासित कर दिया।

प्र० : महापद्मनंद?

उ० : महापद्मनंद जो था उसको चाणक्य ने मारा नवनंदों को और चंद्रगुप्त को गद्दी पर बिठलाया तो चन्द्रगुप्त ने सारे सिपाहियों सारे सेनापतियों को निष्कासित कर दिया। पाटलीपुत्र से चन्द्रगुप्त ने निष्कासित कर दिया तो सेनापति था जो निष्कासित हुआ था उसका नाम था रणबीर वह अपनी पत्नी और बेटे सहित मरुस्थल में भटक रहा है, निष्कासित हो के। अपनी स्मृतियाँ, एक बच्चा छोड़ आया घर पर तो वो पीलू राग में गाता है। सुनाऊँ। आपको इसी राग में है।

प्र० : हाँ जरूर।

उ० : बच्चे मेरे घुटनों के बल चलते होंगे। अपनी माँ की गोद बैठकर रोते और मचलते होंगे। छोटे-छोटे बच्चे मेरे घुटनों के बल चलते होंगे। छोटे-छोटे।

प्र० : बड़ा मर्मस्पर्शी है। इसमें सिचूएशन जिसे कहते हैं, स्थिति भी है।

उ० : राग भी ऐसी है।

प्र० : स्थिति भी ऐसी है ?

उ० : अब वह निष्कासित हो गया। जंगल में भटक रहा है अपनी पत्नी और छोटे बच्चे के साथ। छोटा बच्चा कहाँ है, कहाँ मिलेगा तो मेरे भाई रामेश्वर दयाल वर्मा ने जो कि मैनेजर थे उसके और जो उस समय पढ़ते थे यहाँ एल.एल.बी. उन्होंने कहा कि यह मेरा छोटा भाई है यह एक्टिंग करेगा रणधीर के छोटे बच्चे की। मुझसे कहा बेटे एक ही वाक्य कहना है-तुम्हे। माँ ओ माँ, मुझे प्यास लगी है। पानी-पानी-पानी।" इतना कहना था। जंगल में भटक रहे हैं पानी पानी पानी। माँ। ये मुझे रटाया गया। अच्छा, उस समय कोई महिला नहीं मिलती थी पार्ट करने के लिए।

प्र० : नहीं मिलती भी नहीं थीं और उस समय ये नियम भी नहीं था।

उ० : नियम भी नहीं था और रंगमंच पर आती भी नहीं थीं। तो जो. . .

प्र० : सामाजिक मर्यादा के विरुद्ध था।

उ० : उस समय खूबसूरत बच्चे होते थे लड़के होते थे उनको स्त्रियों का पार्ट दिया जाता था। उस समय उस मण्डली में वेणी नामक एक लड़का था। खूबसूरत था सुमुख सलोना था। उसने साड़ी पहनी और उसने रणधीर की पत्नी का पार्ट लिया। मैं ग्रीनरूम में देख रहा था उसको।

अब पर्दा खुलता है और रणधीर आता है, मैं महानन्द किस बात से चन्द्रगुप्त से हीन था, मुझे निष्कासित कर दिया गया। आज भटक रहा हूँ जंगल-जंगल। पानी नहीं मिल रहा है यह मेरी स्त्री, यह मेरा बच्चा आज तीन दिन से पानी नहीं पा सका। कैसे पानी पिलाऊँ इसको,

कैसे पानी पिलाऊँ? उसी समय मुझे कहना है- "माँ प्यास लगी है, पानी-पानी-पानी।" ये वाक्य था। पर्दा खुला रणधीर आया यों कहता हुआ पैर फटकारता हुआ "मैं महानन्द किस बात में इस चन्द्रगुप्त से हीन था। मुझे निष्कासित किया चन्द्रगुप्त ने।"

प्र० : आपकी एण्ट्र हुई ?

उ० : हाँ। और उसकी पत्नी आई। मैं आया भटक रहे हैं। पानी-पानी-पानी। अब पीछे से प्रोम्पटर ने कहा-"कहो। बेणी साड़ी पहन के मेरे सामने खड़ा था। बार-बार कहते वह। मैंने कहा जोर से-"यह तो बेणी साड़ी पहन के खड़ा हुआ है, यह मेरी माँ थोड़े ही है ? मैं कैसे इसे कहूँ (हंसी)

प्र० : मतलब यह है कि आपने सच्चाई कही। उद्घाटित कर दी वास्तविकता तो।

उ० : दर्शकों ने तालियाँ बजा के ठहाका लगा दिया और स्टेज मैनेजर ने पर्दा गिराओ। पर्दा गिराओ। पर्दा गिरा दिया गया। और भाई साहब ने आकर एक तमाचा मुझे कस कर मारा। गधे सुअर तूझे इतना सिखलाया गया लेकिन तू इतना नहीं बोल सका।

प्र० : और आपने कह दिया कि ये सच्चाई थी ये तो मेरी माँ है ही नहीं।

उ० : मैंने कहा- "भैया मैं तो ग्रीनरूम में देख चुका था यह तो वेणी है। मैं अपनी माँ जैसे पवित्र संबंध को इस लड़के से कैसे कहूँ माँ। मैं अपनी मां को छोड़कर किसी को माँ नहीं कह सकता। इतनी श्रद्धा थी मेरी माँ के प्रति।

प्र० : आप तो वास्तविकता को ही नाटक मानते हैं न, तभी से?

उ० : उस तमाचे ने मुझे जो प्रतिक्रिया उत्पन्न की मैंने कहा कि- 'मैं अब कृष्णार्जुन युद्ध नाटक में पार्ट लूंगा। उसके बाद अब समारोह समाप्त हो गया। त्री-दिवसीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का। उसके बाद मैं . . . . . तों मैंने अपने उसके बाद में नरसिंह पुर आया तो मैंने अपने सहयोगियों के साथ एक मण्डली गठित की, "कृष्णार्जुन युद्ध" नाटक देख चुका था, मैंने कहा मैं करूंगा। और कृष्ण का पार्ट मैं लूंगा और मैंने नरसिंहपुर की जनता के सामने कृष्णार्जुन युद्ध नाटक का अभिनय कराया।

प्र० : आप अभिनेता के रूप में और नाटककार के रूप में सबसे पहले . . .

उ० : और गिरिजाकुमार माथुर मैं तुमसे सच कहता हूँ कि डिप्टी कमिश्नर आए थे देखने के लिए। बोले- इसको फिर से और टिकट लगा कर करो। मैं तुमको पांच सौ रुपये देता हूँ। और मैंने श्री कृष्ण का पार्ट किया। कौन जानता है वहाँ क्या होता होगा। होता होगा मेरा स्मरण करते हुए अश्रुओं का गद्‌गद् हार, स्मृतियों का पवित्र हार वृंदा वृन्दा, वृन्दा तुझ से भरा हुआ है मेरे बलिदान का रंग, लाड यशोदा मैया का और मैया बलदाऊ का संग ग्वाल बाल की सुखद मण्डली, यमुना, गउएँ और निकुंज। राधा सह सखियों का अपना चन्द्र साथ ज्यों तार पुंज।

प्र० : यह आपने कृष्ण का पार्ट किया?

उ० : बिन मुरली की रास रंग। वह सुख का आनन्द निहार कैसे भूल सकूंगा वृन्दा माखन मिश्री का उपहार। हाय लाड वह दुखदायी है। आज कहैन्या रोता है, नन्द बाबा मुझसे पूछो बेटा क्या होता है।"

प्र० : ये किस सन् की बात है? 1917-18-19 किस की?

उ० : 19 की बात है।

प्र० : उस समय आप टैंथ में पहुंच गए थे मैट्रिक में?

उ० : मैं टैंथ क्लास पास कर के गया था सिहोरा में एट्थ क्लास पास करके मैं नरसिंहपुर आया था।

प्र० : तो यह नरसिंहपुर में नाटक खेला गया था?

उ० : नरसिंहपुर में। यह नरसिंहपुर आगमन की बात है मेरे। मैंने अपने बच्चों को साथ जोड़कर के और माँ से एक धोती मांग कर के पर्दा बनाया और रामरज लेकर मुँह पर पोता और अभिनय किया।

प्र० : तो इसका अर्थ ये हुआ कि कवि के पहले आप नाटककार और अभिनेता के रूप में आप छोटी उमर में ही लोगों के सामने आ गए। और तब तो डॉ० वर्मा आपको बहुत प्रशंसा मिली होगी उस नाटक में खेलने के उसका अभिनय करने में श्री कृष्ण का पात्र का अभिनय करने में?

उ० : गिरिजाकुमार जी.मुझे कम-से-कम पांच स्वर्ण पदक मिले मुझे श्री कृष्ण के अभिनय करने पर।

प्र० : इसी कृष्णार्जुन युद्ध में ?

उ० : कृष्णार्जुन युद्ध और लेकिन मैं इसके संबंध में एक विशेष बात कहना चाहता हूँ जो साहित्यिक दायित्व के आधार पर मुझे कहनी चाहिए। और जिसे आपने भी आग्रह किया था कि उसका उद्‌घाटन होना चाहिए क्योंकि साहित्यकार के द्वारा कोई रहस्य ऐसा न छिपा रह जाए जो साहित्य में भ्रान्ति उत्पन्न करे।

प्र० : हाँ तथ्य को तो बिलकुल उजागर करना चाहिए कोई तथ्य साहित्य का, अवहेलित नहीं होना चाहिए।

उ० : इसका उद्‌घाटन मुझे 1948 में प्रत्यक्ष रूप से देखने को प्राप्त हुआ। और वह जब मैं नागपुर में गया था मध्यप्रदेश की सरकार के निमन्त्रण पर, सोशल एजुकेशन के डायेरेक्टर के रूप में। उस समय पं० द्वारिका प्रसाद मिश्र जी शिक्षामंत्री थे। उन्होंने ही मुझे बुलाया था। तो जिस समय बात प्रायः हुआ करती थी संध्या समय आफिस के काम के बाद तो उस समय एक विचित्र घटना घटी और मैं बहुत संक्षेप में कहूंगा कि चपरासी ने आकर कहा कि- "एक लड़की मिलना चाहती है।

'मिश्र जी ने कहा- "मैं नहीं जानता इसे, मैं नही मिलूंगा। कहा- "अच्छा बुलाओ।" मेरे सामने वह आई। उनके साथ बैठा हुआ था मिश्रजी के पास। तो उस लड़की ने रो-रो के कहा- "कि पंडितजी, मैं बड़ी याचना लेके आई हूँ कि मेरे पिताजी के प्रति न्याय करवा दीजिए। उन्होंने कहा- "पिताजी के प्रति न्याय? तुम्हारे पिताजी कौन थे? उसने कहा- "मेरे पिताजी का नाम श्री गणेश राम मिश्र। कहा- "तुम तो जैन हो, शान्ति जैन।" कहा- मैंने अंतर्जातीय विवाह कर लिया। मैं बेटी गणेश राम मिश्र की हूँ।" और मैं अपने पिता के प्रति न्याय करना चाहती हूँ"। क्या चाहती हो कहा- 'कृष्णार्जुन नाटक जो हिन्दी साहित्य में माखन लाल चतुर्वेदी के नाम से प्रसिद्ध है वह उनके द्वारा नहीं लिखा गया वह मेरे पिताजी गणेश राम मिश्र के द्वारा लिखा गया है। द्वारिका प्रसाद मिश्र बोले- "क्या, बात कहती हो? क्या प्रमाण है तुम्हारा इसके संबंध में? कि यह नाटक माखन लाल चतुर्वेदी का नहीं लिखा हुआ है . . . . . तो उसने कहा- "पंडित जीं, मेरे पास अनेक प्रमाण हैं। पहला प्रमाण तो देख लीजिए लिखित प्रमाण है उनके हाथ का नाटक लिखा हुआ है जहाँ ठीक नहीं वहाँ काटा हुआ है फिर जोड़ के लिखा है, फिर लिखा है जैसा लेखक लिखता है वह काट-काट के बनाता है वैसे ही उनके द्वारा लिखा हुआ "कृष्णार्जुन युद्ध" नाटक।

प्र० : पाण्डुलिपि दिखाई उसने?

उ० : पाण्डुलिपि दिखाई। और दूसरा सबसे बड़ा प्रमाण शायद उस समय आप नहीं थे वह ये था कि जिस समय कृष्णार्जुन युद्ध नाटक सुन्दर विलास थियेटर में हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के

तत्वाधान में अभिनीत किया जा रहा था और बहुत ही सफल हुआ, उस समय सारे दर्शकों ने उस सफलता के लिए बड़े जोर से तालिया बजाई और हर्षध्वनि प्रकट की और इस बात की मांग की कि इस नाटक का लेखक कौन है ? हम उसे देखना चाहते हैं मंच पर। उसके लेखक थे पं० गणेश राम मिश्र जो कि उस समय सिटी कालेज में ड्राइंग मास्टर थे।

प्र० : जबलपुर में?

उ० : जबलपुर में लेकिन चूंकि ग्राण्ट मिलता था और कहीं ग्राण्ट बंद न हो जाए और सरकार इस बात के लिए सतर्क थी कि सरकार का वेतनभोक्ता व्यक्ति तब तक कोई चीज नहीं लिख सकता और उसे प्रकाशित नहीं कर सकता जब तक कि उसने इसकी पहले से अनुमति प्राप्त नही कर ली हो।

प्र० : यह अंग्रेज सरकार का हुक्म था। आदेश था?

उ० : और यह भी नियम था कि उसका कुछ अंश शायद 30 प्रतिशत या 40 प्रतिशत सरकार में जमा करना पड़ता था जिसका पारिश्रमिक मिलता था। ये सरकार के ऐसे कठोर नियम थे कि कोई स्वतंत्र लेखक पनप नहीं सकता था। बिना सरकार की अनुमति के।

प्र० : अंग्रेजों के जमाने में, अंग्रजों के शासन में?

उ० : तो जिस समय लोगों के करतल ध्वनि की और हर्षध्वनि करते हुए कहा कि- "हम इसके लेखक को देखना चाहते हैं कौन लेखक है इतना प्रशस्त और इतना सफल लेखक कौन है? उसी समय ये गणेश राम मिश्र के तो हाथ पैर कांपने लगे, कहने लगे- "मेरी तो नौकरी गई, मैंने गवर्नमेंट से परमिशन नहीं ली आपने कहा था हम इस नाटक को मंच पर करेंगे। मैंने कहा अच्छा है मंच पर कर लीजिए। लेकिन किसी से कहिएगा न कि मैं लेखक हूँ। लेकिन अब जब लोग कह रहे हैं इसका लेखक कौन है तो महाराज मैं अगर आता हूँ सामने मंच पर, तो मेरी नौकरी खत्म हो जाएगी। मैं कौड़ी-कौड़ी का मोहताज हो जाऊँगा।" संयोग से क्या हुआ कि खण्डवा की मंडली थी और खण्डवा से माखन लाल चतुर्वेदी भी आए थे भाग लेने के लिए, और संयोगवशात वह ग्रीनरूम में बैठे थे नाटक के। तो गणेश राम मिश्र दौड़ते हुए गए उनके पैर पकड़ लिए- "पंडित जी मेरी इज्जत बचाइए, पंडित जी मेरी नौकरी बचाइए, पंडित जी मेरी जिन्दगी बचाइए। आप खड़े हो जाइए कह दीजिए कि- "आप लेखक हैं। मैं खड़ा होऊँगा तो मेरी नौकरी गई। सरकार मुझे उसी दिन डिसमिस कर देगी दूसरे रोज। इसलिए आप खड़े हो जाइए।"

प्र० : इतने भयाक्रांत थे वह गणेश राम मिश्र?

उ० : तो गणेशराम मिश्र ने ये कहा तो पंडित जी ने कहा कि मैंने तो यह लिखा नहीं है। मैं कैसे खड़ा हो जाऊँ? कहा- पंडित जी इस समय दीन की रक्षा का प्रश्न है, मेरी डूबती नैया को बचाने का प्रश्न है। मेरी नौकरी न चली जाए, फिर तो जो कुछ होगा हम समझ लेंगे।" अच्छी बात है, अगर ऐसी बात है तो हम खड़े हो जाएंगे।" माखन लाल चतुर्वेदी मंच पर आए। और लोगों ने हर्षध्वनि की करतल ध्वनि की कि पंडित माखन लाल चतुर्वेदी "कृष्णार्जुन युद्ध" के प्रणेता और उस समय डिप्टी कमिश्नर ने कहा कि मैं इस लेखक को स्वर्ण पदक प्रदान करता हूँ। इस नाटक को सफलतापूर्वक लिखने के लिए। पं० माखन लाल चतुर्वेदी को स्वर्ण पदक दे दिया गया और उसके बाद इसलिए कि माखन लाल चतुर्वेदी की मित्रता श्री गणेश शंकर विद्यार्थी के साथ थी, इसलिए उनकी सहायता से कानपुर से जो श्री नारायण वैद्य प्रकाश थे उनके माध्यम से कृष्णार्जुन युद्ध का प्रकाशन हो गया। और सारे संसार को घोषणा हो गई कि "कृष्णार्जुन युद्ध पं० माखन लाल चतुर्वेदी का लिखा हुआ है और गणेश राम मिश्र कहीं हैं ही नहीं। जो कि उसके वास्तविक असली लेखक थे।' ❑
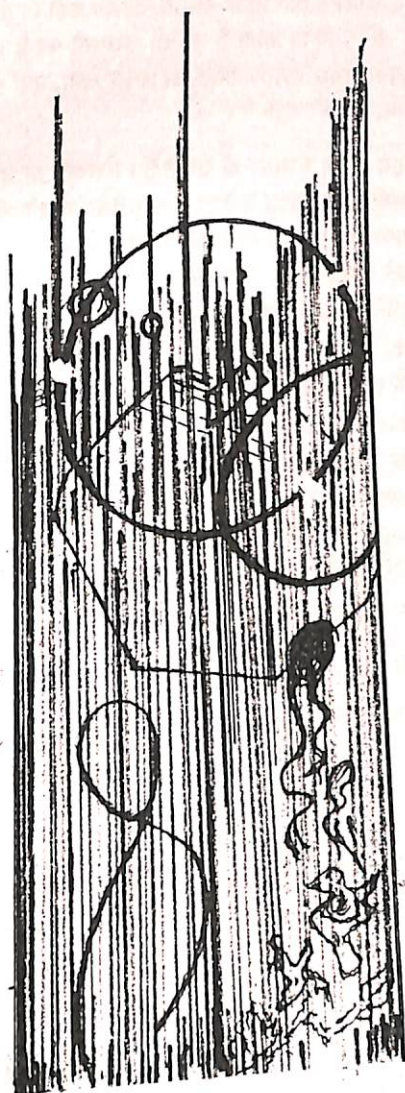
।। महादेवी जी का भावलोक ।।

(श्रीमती महादेवी वर्मा की कृति "यामा" पर ज्ञानपीठ पुरस्कार की घोषणा के उपरान्त २५-०७-१९८३ ई० को हुई अंतरंग भेटवार्ता : श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्सयायन 'अज्ञेय', तथा श्री नर्मदेश्वर उपाध्याय से)

नर्मदेश्वर : महादेवी जी, ज्ञानपीठ पुरस्कार सौभाग्य से इस वर्ष, आपके चरणों में अर्पित किया गया है, और इसकी घोषणा आधिकारिक तौर पर कल गुरुपूर्णिमा के दिन की गई। तो मैं चाहूँगा कि आप हमारे जो श्रोता हैं उनकी खातिर अपनी, मन की बात कुछ बताने की कृपा करें, क्या अनुभव कर रही हैं ?

महादेवी : देखिए पुरस्कारों से न कोई कृति महान् होती है, न व्यक्ति महान् होता है, और पुरस्कार केवल स्वीकृति है जनता की, इसके अतिरिक्त तो कुछ नहीं। और जैसे पुजारी और देवता के बीच में, आने वाले फूल चन्दन अक्षत चढ़ाते हैं, पुजारी देवता को अर्पित कर देता है। ऐसा कोई पुजारी जो समझे कि वह ही देवता है और उसी को अर्पित किया गया है, तो यह बड़ी अनुचित बात होगी। इसी तरह साहित्यकार को जो अर्पित किया जाता है वह तो सरस्वती का है और सरस्वती के चरणों में निवेदित है। उसे अपना समझ लेना, व्यक्ति का समझ लेना, एक तरह की भूल होती है और एक तरह की अभिमानता भी होती है।

तो मेरे मन की प्रतिक्रिया यह है कि हम केवल मध्यस्थ हो सकते हैं। सरस्वती के चरणों में यह निवेदन है और जिन्हें कृति अच्छी लगी होगी उनका निवेदन है और वैसे देखें तो जीवन के चौथे प्रहर में आकर अर्थ का कोई उपयोग व्यक्ति के पास नहीं रहता। अगर मान लिया वह विलास के साधन एकत्र करें तो उसकी जीवन-यात्रा और जीवन भर का प्रयत्न व्यर्थ हो जाएगा और लोग हँसेंगे भी और समझ लीजिए कि मैं खादी की जगह सिल्क पहनूँ तो लोग हँसेंगे, तमाशा बनेगा। और जो शरीर स्वीकार करता रहा है अब तक, उसके अतिरिक्त खाद्य भी दूसरा स्वीकार नहीं होगा। चौथे पहर में जा कर कोई विलास करना चाहे तो यह तो संभव नहीं है। इसके लिए अर्थ की कोई उपयोगिता नहीं है उनके पास। पर एक उपयोगिता है, हर एक के स्वप्न कुछ अपूर्ण रह जाते हैं। हर एक कलाकार के, साहित्यकार के सपने पूरे नहीं होते। कभी - कभी अर्थाभाव से, कभी समयाभाव से, तो उनको पूरा करने में यह कुछ योगदान दे सकता है। इसमें है उसकी उपयोगिता। और कोई नहीं। इसी प्रकार मैंने इसको ग्रहण किया। मैंने तो पहले ही अपनी जमीन मकान और सम्पत्ति का न्यास बना दिया था। लेकिन इसके पास कोष तो नहीं था जो यह साहित्यिकों को सहायता पहुँचा सके।

तो अब उसके पास कोष भी है। मैं उसकी मध्यस्थ हूँ और मैंने 'भारत भारती' पुरस्कार भी उसको अर्पित कर दिया। यह भी उसको समर्पित है। और अब मेरा स्वप्न जो है कि जो लेखनी जीवी हैं, उनके किसी कष्ट में हम खड़े हो सकें, तो मैं समझती हूँ मेरे जीवन भर का प्रयत्न इसमें सफल होगा। और कुछ नहीं। मेरे मन में, और कोई बात नहीं है, कोई विचार ही नहीं है। ऐसी कोई प्रतिक्रिया नहीं है कि इन पुरस्कारों से कोई और काम करूँगी मैं। सिर्फ साहित्यकार। मैं समझती हूँ कि निराला जी को खोने के बाद मेरा मन बहुत दुखी रहा है और आप स्वयं भी जानते होंगे, हर साहित्यकार, और विशेष रूप से जो नया आता है तरुण, उसको कोई कुछ नहीं करता। वह कहाँ जाए ? बड़े हैं, सरकार को लिख देते हैं, वह कर भी देती है कुछ। और हमारे यहाँ साहित्यकार की यात्रा बड़ी कठिन है।

तो हम उसके रास्ते के किसी काँटे को तोड़ दें, कहीं, एक दो फूल खिला दें, उसको किसी तरह की सुविधा दे सकें तो अर्थ सफल होगा। अर्थ की यही उपयोगिता है। उसको कहीं एक जगह रखने को तो उद्योगपति रखता ही है, हम उसका संग्रह कर के क्या करें ? तो, इतना ही मैं सोचती हूँ, और मैंने कुछ नहीं सोचा है। मेरे मन की और कुछ प्रतिक्रिया नहीं हैं।

नर्मदेश्वर : इस वक्त संयोग से वात्स्यायन जी प्रयाग में, (यहाँ) उपस्थित हैं। उनसे मेरी प्रार्थना है कि वह आपसे हमारे आकाशवाणी के लिए संक्षेप में कुछ आपके मन की, साहित्य के संबंध में और साहित्यकार की अस्मिता के संबंध में जानने की बात करें, या जो कुछ भी उचित समझें, तो प्रार्थना करूँगा कि वह पधारें।

अज्ञेय : और कुछ ऐसे प्रश्न भी हो जाएँ जो मेरी समझ में तो औपचारिक प्रश्न हैं। एक तो पुरस्कार के बारे में तो कुछ आपसे पूछा गया होगा ही। अभी 'यामा' पर पुरस्कार मिला जो आपकी दृष्टि से भी, काफी पहले की रचना है, तो यामा के बाद आप और कविताएँ लिखती रहीं हैं या कि 'सांध्यगीत' के बाद, 'दीपशिखा' के बाद . . .

महादेवी : यामा के बाद तो दीपशिखा थी। उसके बाद प्रमा लिखी है मैंने, फिर 'अमृतवेला' , वह भी पूरी है और कई अनुवाद भी हैं, और कविताएँ भी हैं और गद्य भी हैं।

अज्ञेय : गद्य तो बहुत-सा है।

महादेवी : गद्य भी बहुत लिखा है इधर। बहुत-सी स्मृतियाँ हैं हर एक को स्मरण करती ही हूँ। मेरे बहुत साथी चले गए हैं उनका क्या कहूँ मैं, कभी-कभी बहुत याद आते हैं। तो उनके लिए भी लिखती हूँ, लिखती तो रही हूँ। क्यों उन्होंने दिया, यह तो मैं नहीं जानती हूँ।

अज्ञेय : नहीं यह पूछना चाहिए कि बीस साल पहले उन्हें क्यों नहीं सूझा था यह ?

महादेवी : मैं सोचती हूँ कि जो संकट में हैं, कष्ट में हैं उनके आँसू पोंछ सकूँ । आप कहते हैं कि ऐसी परिस्थिति दें कि उसमें गा सके, प्रसन्न हो सके तो दोनों ठीक हैं। मैं आंसू पोछूँगी, आप हँसी का प्रबन्ध कीजिए। तो दोनों मिलकर करें तो बड़ा काम कर लेंगे। और वास्तव में तो जैसा मैंने कहा कि यह तो सरस्वती के चरणों में निवेदित है, हमारा क्या ?

बाँसुरी में कितने छिद्र होते हैं, किसी की फूंक उसमें संगीत उत्पन्न करती है, किसी की उगंलियाँ करती हैं। तो यह समझ ले बाँसुरी कि बस उसी में यह सब हो रहा है . .. .। तो ऐसा मैं मानती हूँ कि साहित्यकार भी किसी प्रेरणा से लिखता है और उसकी भी एक नियति होती है। हर साहित्यकार कुछ सपने तो देखता ही है। जो पूर्ण नहीं होते तो यह किसी तरह थोड़ा-बहुत सहयोग दे सकते हैं अर्थ के संबंध में जैसा मैंने अभी कहा कि अब चौथे पहर में जाकर जब अस्सी के करीब पहुँच रहे हैं तो अर्थ से हम क्या करेंगे ? न तो हमारा शरीर स्वीकार करेगा कि बढ़िया कुछ और खानें लगें, और न इतनी शक्ति है कि संसार घूमने जा सकें। तो विलास का कोई साधन इससे हमारा नहीं सार्थक होगा। न हमारे मन में है। सार्वजनिक कोई उपयोग हो सके, हिन्दी का हो सके, हिन्दी के लेखक का हो सके और किसी लेखक मात्र?... यह तो बहुत थोड़ी-सी राशि है, कुछ है नहीं, लेकिन आप जैसा उपयोग कर रहे हैं, उससे मन बड़ा प्रसन्न हुआ। अच्छा मैं भी प्रयत्न करूँगी कि . . . ।

अज्ञेय : अच्छा महादेवी जी, यह बताइए साहित्य का जो इतिहासकार है, खतरनाक प्राणी एक है, वह आपको एक आन्दोलन के बीच गिनता है जिसको उसने छायावाद का नाम दिया। मुझको एक दूसरे आन्दोलन के साथ जोड़ता है जिसको उसने दो-तीन अलग-अलग नाम दिए। लोगों के लिए यह बड़ी कुतूहल की बात होगी कि आपकी और मेरी बातचीत इस अवसर पर हो रही है। उसको छोड़े, लेकिन यह बताइए कि आपके बाद के ये जो कुछ दूसरे ढंग के लेखक आए इनकी रचनाएँ आपने पढ़ीं या कि उनके बारे में कैसी आपकी धारणा रही?

महादेवी : देखिए हम दोनों ही एक-एक आन्दोलन से जुड़े हैं बिना जाने। अपने आप। न कोई आन्दोलन आपने आरम्भ किया, न हमने। जो आपको अच्छा लगा, आपने लिखा, जो हमको अच्छा लगा हमने लिखा और फिर उन लोगों ने नाम अपने मन से दिए और आन्दोलन के नेता बना दिए। आप तो बड़े आन्दोलन के नेता हैं, हम तो नहीं हैं और साथियों के साथ हैं, लेकिन यह जो

पीढ़ी आ रही है, यह संभवतः किसी विशेष दर्शन से प्रभावित नहीं है। और लगता है इतनी विकल है, इतने अर्थाभाव में हैं, इतने कष्ट में है, और सबसे कठिन बात है कोई सपना ही उसके पास नहीं है। हमारे पास तो था, आज के किसी तरुण लेखक के पास कोई स्वप्न नहीं है। तो स्वप्न का अभाव भी आदमी को विकलांग कर देता है, स्वप्न देखना, स्वप्नद्रष्टा होना आवश्यक है किसी संकल्प के लिए।

तो मैं जितने तरुण देखती हूँ, उनसे बात करती हूँ तो मुझे लगता है खोए हुए हैं और उनकी रचना भी ऐसी है। एक दिशा नहीं है। यह अच्छा होगा तो यही लिखेंगे, इसमें लाभ होगा तो यही करेंगे। तो मुझे कभी-कभी लगता है कि हिन्दी की स्थिति अच्छी नहीं है। जिस दिशा में चल रहे हैं हम... संस्थाएँ टूट गई हैं, व्यक्ति टूट गया है, उसके सपने टूट गए हैं, उसका लक्ष्य छूट गया है। तो इस समय हमलोग क्या करें, हमारी बात अगर सुनेंगे, आपकी बात सुनेंगे, तो आप हमारी बाद की पीढ़ी के हैं, आपकी बात और सुनेंगे, हमारी तो नहीं सुनेंगे। तो कहिए, आप इतने मितभाषी हैं, इतना कम बोलते हैं कि आप किसी आन्दोलन में कुछ उस तरह सम्मिलित नहीं हो सकते और हम अशक्त हैं इसलिए नहीं हो सकते।

अज्ञेय : यह तो शायद ठीक है कि अभी जो प्रवृत्ति है वही अगर बनी रहे तब आशा के लिए बहुत ज्यादा गुंजाइश नहीं है। लेकिन उसमें कोई परिवर्तन की संभावना आपको दिखती है ?

महादेवी : दिखती तो है लेकिन थक जाएँगे तब। यह पीढ़ी जब थक जाएगी तब कुछ नया सोचेगी। बुद्ध भगवान ने एक जगह कहा है कि – 'घोर हिंसा करेंगे, पहले एक दूसरे को मारेंगे, एक दूसरे से छिपेंगे, उसके बाद थक जाएँगे तब एक दूसरे को गले मिलेंगे, एक दूसरे से भेंट करेंगे पूछेंगे और कहेंगे हमारी भूल थी।' तो विदेश का जितना हमारे पास विचार की दृष्टि से आयात हो रहा है, दर्शन की दृष्टि से आयात हो रहा है, वह सब हम पर एक विचित्र-सा प्रभाव डालता है और उसके रहते हुए हम अपना रास्ता नहीं खोज पाते। अपनी दृष्टि, खो गई है जैसे।

तो मैं तो समझती हूँ वह ही बुद्ध भगवान का कहा होगा, जब थक जाएँगे अकेलेपन से, तब फिर वे लौटेंगे और तब शायद स्थिति बदलेगी। अभी तो यह लगता है कि खो गए हैं। बाहर से जो मिलता है अभी तक देखिए बात करने में कोई 'कामू' की बात करेगा, कोई 'सार्त्र' की बात करेगा, कोई 'कास्पयर' की बात करेगा। लेकिन आप वाल्मीकि की बात कहिए, कालिदास की कहिए, तुलसीदास की कहिए, तो उससे विरक्ति है। वह समझता है यह पुरातनपन्थी है। जब कि अपनी धरती पर खड़े होकर ही हम दूसरे की बात कर सकते हैं। अपनी धरती नहीं होगी, तो शून्य में . . . ।

अज्ञेय : आपने अभी अकेलेपन की बात कही और फिर उसके साथ आपने जिन विदेशी रचनाकारों के नाम लिए उन सभी ने अकेलेपन की चर्चा की है। लेकिन उसको छोड़ भी दें तो कवि तो हमेशा अकेला होता है। आपने भी अकेलेपन की बात की है तो ये दो प्रकार के जो अकेलेपन हैं, इनके बारे में कुछ कहेंगी ?

महादेवी : देखिए एक तो बाहर का अकेलापन है, साथी नहीं है। और एक अन्दर का अकेलापन है। अन्तर में तो हम डूबते हैं। मोती ढूँढ़ने वाला हर लहर के साथ तो नहीं बहता। वह तो कहीं गहराई में जाकर के उसी सीप को पाता है जिसमें मोती है। तो आप अकेले नहीं होंगे भीतर तो, उस सत्य को नहीं पाएँगे। लेकिन सत्य को, समष्टि को नहीं देंगे, उस समय आप उसके साथ नहीं हैं तो व्यर्थ हो जाएगा, नहीं तो भगवान बुद्ध को जब सम्बोधि मिल गई तो लौट के आने की

क्या आवश्यकता थी ? लौट के इसीलिए आए कि वह दूसरों को देना है। तो जब वह आता है, सत्य को पा लेता है, कुछ मूल्यवान पा लेता है तब निश्चय देता है, आज ऐसा नहीं है, आज बाहर से अकेला है। भीतर से तो डरता है वह। उसको अजीब-सा भय है, तो अपने भीतर नहीं देखता। अब बाहर से अकेला है और तब बाहर से हम घिरे हुए थे और भीतर अपने उस सत्य को खोजने के लिए अकेले थे। तो अकेलापन भी है और समष्टि के साथ भी हैं।

अज्ञेय : अच्छा आपको यह अभी जिस पुस्तक पर पुरस्कार मिला, उसमें चार अलग-अलग पुस्तकें हैं वास्तव में, जो अलग-अलग भी छपीं। हम लोगों ने तो अलग-अलग पढ़ी थीं। पहली पुस्तक उनमें से पढ़ी तो मैं जेल में था। तब तो उससे बड़ी स्फूर्ति मिली। मैंने लिखा भी है इस बारे में। इसके बावजूद कि आपको छायावादियों में रखा जा रहा था, उसमें एक ताजगी हमलोगों को मिलती थी। साथ कुछ यह भी लगता था कि भाषा की दृष्टि से अभी कच्चापन भी है, पर अब तो मैं कह सकता हूँ यह बात और आप क्षमा भी कर देंगी यह कहने पर। फिर 'रश्मि' और उसके बाद 'नीरजा"। 'नीरजा' में लगता है कि बिल्कुल एक परिपक्व भाषा में एक समर्थ कवि बड़े अधिकार के साथ और बड़े सहज भाव से अपनी बात कहता है। यहां तक तो एक विकास का क्रम हमें दीखता है। उसके बाद फिर लगता है कि वही, उसी स्तर पर फिर आवृत्ति हो रही है, और बहुत-से प्रतीक भी हैं जो कि दोहराए जा रहे हैं। तो आपको कभी ऐसा लगता है स्वयं ?

महादेवी : देखिए . . . जब भी यात्रा आरम्भ होती है, मैंने बहुत बचपन से लिखना आरंभ किया, छह-सात वर्ष की अवस्था से, और 'नीहार' लिखी गई है – जब मैं आठवें दर्जे में थी। तो कितना, भाषा का ज्ञान क्या हो सकता है ? लेकिन भाव का जो उसमें एक रूप है, उद्वेलन है, वह तो है ही। विशेष रूप से भाषा उतनी परिपक्व नहीं है। परन्तु एक दिशा तो है ही उसमें। उससे हमें पता चल जाता है कि मैं किस दिशा में चलूँगी। और यह ही होता है, लिखने वाले का। अगर वह भाषा का ज्ञान अच्छा प्राप्त करता है और सब तैयारी कर लेता है तो इस तैयारी में आधा जीवन बीत जाएगा। संम्पूर्ण बीत सकता है। लिखेगा कब ? तो जो भी बचपन से लिखते हैं वह ऐसा ही उनका चलता है। भाषा जैसे-जैसे बढ़ेगी, विचार जैसे-जैसे परिपक्व होंगे, भाव वैसे-वैसे संयत होंगे, दर्शन जैसे बनेगा धीरे-धीरे, तो अनगढ़ मूर्ति को जैसे तराशना है . . . धीरे-धीरे। तो नीहार में ऐसा है। आठवें दर्जे का विद्यार्थी क्या लिखेगा ?

लेकिन आप उसको पढ़के यह समझेंगे कि यह जिस दिशा में जा रहा है क्योंकि उस समय हमारी सुभद्रा जी भी लिखती थीं और बड़ा साफ-साफ लिखती थीं और वह कहती थीं कि 'महादेवी तुम क्या लिखती हो?' वह, जो बात सही है, वह ही लिखती थीं तुम मुझे पूछते हो अब जाऊँ,

मैं क्या जवाब दूँ तुम्हीं कहो
न कहती है रुकती है जबान,
किस मुँह से तुमसे कहूँ रहो

उन्होंने कहा कि –'तुम यह सब बात ऊल-जलूल बात लिखती हो ? सीधी बात लिखो।' तो अब सीधी बात लिखनी आती ही नहीं थी उस समय। उस समय भी नहीं आती थी, अब तो शायद एम० ए० में पढ़ता है विद्यार्थी। लेकिन तब तो वह आठवें दर्जे में पढ़ने वाले व्यक्ति की रचना थी यह। परन्तु उसमें साफ बात नहीं कही है।

और फिर उसके बाद 'रश्मि' में थोड़ा दर्शन भी आया और भाव में संयम भी आया। भाषा

भी दूसरी है। नीरजा में जा कर गीति का तत्त्व आ गया है मुझमें और मानो मैंने वह दिशा भी पा ली है। 'दीपशिखा' में आस्था है मेरी, पूरी, और लगता है कि ठीक चल रहे हैं। उस समय भी बहुत-से आन्दोलन थे! सबसे पहले दद्दा का कथा-युग था ही और उसके अनुकरण में कुछ मैंने भी लिखा ही था। और स्वतन्त्रता का संघर्ष था। उसके संबंध में भी मैंने लिखा है यह 'प्रथम आयाम' नाम से रचना मेरी अब छप रही है, वह बचपन की है। बचपन मैं मैंने बृजभाषा में लिखा, सवैया छन्द में लिखा समस्यापूर्ति की, लेकिन उसमें भी कौन दिशा होगी . . . ! कभी-कभी आश्चर्य होता है कि उस समय मैंने कैसे लिखा होगा यह! मूर्ति पूजा इतनी होती थी मेरे घर में, और तब मैं लिखती हूँ कि —

मन्दिर के पट खोलत का,
यह देवता तो हृदय खोलिए नाहि।

अज्ञेय : लेकिन इतिहासकार तो कहता है, उसको यही मानने में सुविधा है कि एक आन्दोलन या एक युग समाप्त हो जाता है और तब दूसरा आरम्भ होता है। लेकिन रचनाकार जानता है कि संवेदन तो इतिहासकार से पूछ कर बदलता नहीं है। तो हमेशा ऐसा होता है कि एक प्रवृत्ति चली आ रही है, दूसरी का आरम्भ भी हो गया। एक ऐसा युग होता है जिसमें कि दोनों उपस्थित रहती हैं फिर एक धीर-धीरे छूट जाती हैं। आपने दद्दा का नाम लिया जिनको मैं अपना गुरु मानता हूँ वह मुझे अपना शिष्य न मानते, यह अलग बात है (हँसी) तो उनकी जो धारा थी एक तरह से छायावाद ने उसको समाप्त किया, हालाँकि दोनों साथ-साथ बहुत दूर तक चली और स्वयं दद्दा ने ऐसी कविताएँ कीं जिनको छायावादी कविता कहा जा सकता है। और वृत्त-काव्य प्रसाद जी ने भी काफी लिखा।

उसके बाद वह धारा हुई जिसका एक प्रतिनिधि मैं माना जाता हूँ, लेकिन यह भी ऐसा हुआ कि यह प्रवृत्ति भी पहले आरम्भ हो गई थी, निराला ने भी उस दिशा में बहुत कुछ किया था। तो इतिहासकार जो बात कह रहा है कि एक युग को समाप्त कर के दूसरे का आरम्भ हुआ या एक प्रवृत्ति के बाद दूसरी आई, इनमें बराबर आपस में एक दूसरे से ग्रहण करने की प्रवृत्ति रही, इसके बारे में आप कुछ कहेंगी कि छायावादी से परवर्ती काव्य को क्या मिला या कि दूसरी दिशा में कुछ सोचने का कारण मिला या नहीं मिला ?

महादेवी : मुझे लगता है कि कोई भी प्रवृत्ति समाप्त नहीं होती। यानी विचार से आप कहें कि बिल्कुल समाप्त हो गई है, ऐसा नहीं है। यह ठीक था कि दद्दा ने कथाएँ लीं, उस समय आवश्यक था। जागरण में, जो जागरण था उसमें अतीत की बात कहने के लिए अतीत की कथाएँ चाहिए थीं। और जब हम लोग लिखने लगे तो झंकार उपनाम से उन्होंने भी वैसा लिखा : "तेरे घर के द्वार बहुत हैं, किससे होकर आऊँ मैं।"

लेकिन यह खिलवाड़ी थी। उनका जो उत्कृष्ट काव्य है, विश्वास है, वह तो 'साकेत' में है। और उसको गाँधी जी ने इतना पसन्द किया था, तीन दिन में उन्होंने समाप्त किया और महादेव भाई से कहा —'तुम इसको पढ़ो।' और उन्होंने एक रात में समाप्त किया। इतना सबने चाहा उसे। लेकिन मुझको यह लगता है कि अतीत की मूर्तियाँ बोलती हैं, घटनाएँ बोलती हैं, लेकिन अतीत का हृदय नहीं बोलता, यह छायावादियों ने समझा उस समय और लिखना आरम्भ किया।

वह प्रवृत्ति हमारी, पूर्व यानी मैं समझती हूँ ऋग्वेद में मिलती है। हर एक प्राकृतिक

दृश्य को एक रूपक के रूप में देखना, उपस्थित करना। तो वह चला और उसी के बीच में यह भी चलती रही। आज फिर देखिए आप कि सब वैसे ही काव्य लिखे जा रहे हैं। मन्थरा तक पर काव्य आपने देखा होगा। कोई कथा-काव्य, कोई पौराणिक-गाथा नहीं बची, जिसे नहीं लिखा है। तो मैं यही मानती हूँ कि छायावाद के युग में भी प्रयोगवाद ठीक था और प्रगतिवाद भी ठीक था, कोई न कोई उसमें है मनुष्य में प्रवृत्ति खोती नहीं है। यह है, प्रधान हो जाती है एक प्रवृत्ति। उसका नाम दे देते हैं। अब छायावाद का नाम हमने दिया नहीं . . . ।

अज्ञेय : नहीं, नाम तो दूसरे ही देते हैं। अच्छा यह बताइए कि छायावाद में भी जो चार प्रमुख नाम लिए जाते हैं जिनमें एक आपका है, सभी के काव्य में कहीं न कहीं प्रकृति तो आती है लेकिन सब का प्रकृति के साथ संबंध बिलकुल अलग प्रकार का है। पन्त के लिए प्रकृति और चीज है, निराला के लिए और है, आपके लिए और है। या कि वास्तव में है या नहीं ? प्रकृति को आप क्या स्थान देती हैं अपने काव्य में ?

महादेवी : प्रकृति मेरे पास, मैं समझती हूँ, प्रकृति के रूप में नहीं आती। हमेशा रूपक के उसमें (रूप में) आती रही है। तो सांख्य में जैसा है वह तो दर्शन उसके पीछे ही है। जैसे ऋग्वेद का कवि उषा को कभी उषा की तरह नहीं चित्रित करता उसके सामने। मरुत को कभी मरुत की तरह नहीं करता। तो यह रूपक की प्रवृत्ति एक व्यक्तित्व देने की प्रक्रिया है और व्यक्तित्व ऐसा बनाकर कि, हम उसके निकट जाते हैं, उसे अच्छी तरह देख पाते हैं तो कुछ इतने अच्छे हैं वरुण के सूक्त हैं, तो यह सब रूपक ही है। तो संभव है मेरे मन पर भी इसका प्रभाव पड़ा होगा और क्योंकि इसका पड़ा है और अच्छी लगती है मुझको एक लता, सही है लेकिन पूरी वनस्पति को एक चेतना देना एक दूसरी बात है। हमारे दर्शन में जो है, वह ही छायावादियों ने अपने में लिया है . . . ।

अज्ञेय : लेकिन, जिस तरह का पर्यावलोकन या प्रकृति का एक पर्यवेक्षण पुराने कवियों में भी मिलता है, तो प्रकृति को एक दूसरी सत्ता के रूप में भी देखते हैं वैसा पन्त में या एक हद तक निराला में है, लेकिन आपकी कविता में नहीं है।

महादेवी : मेरा विचार ही उन जैसा नहीं है न। सोचने का ढंग ही वैसा नहीं है, तो इसलिए नहीं है। निराला जी ने कहीं-कहीं लिखा है, लेकिन फिर भी उनकी रचना है "जूही की कली" उसको आप क्या कहेंगे ? जूही की कली तो नहीं है उसमें। तो रूपक में उसे देखना, यह शायद भारतीय मनीषा के निकट है अधिक, तो इसलिए उसका देखना मेरे लिए कठिन रहा और निराला जी ने बहुत कुछ प्रगतिवाद जैसा लिखा "वह तोड़ती पत्थर" दूसरी तरह का है और सब में, कुछ-कुछ अन्तर मे लिखा है। मैंने भी जो कुछ उस समय लिखा है-असम्बद्ध। ये दस-पाँच इसमें चली जाएँगी। तो प्रथम आयाम में तो उसमें कुछ-कुछ वह है। लेकिन फिर जब मेरा रास्ता दूसरा हो गया, छायावादियों से भिन्न हो गया, तब फिर कोई उपाय नहीं था। उनकी तरह लिखा नहीं मैंने।

अज्ञेय : धन्यवाद। इस बातचीत के लिए तो धन्यवाद, आपको देता हूँ। ❑

एक जीवित इतिहास : श्री शीलभद्र याजी

श्री शीलभद्र याजी अपने आप में एक युग की जीवंत वाणी हैं। आनेवाले समय में भी स्मरण किये जाएंगे, ऐसे नाम हैं। भारतीय किसान आंदोलन के जुझारू योद्धा तो रहे ही, असहयोग आन्दोलन-जैसे राष्ट्रीय अनुष्ठान में भी अपनी ओजस्वी और उत्कृष्ट सेवाओं के चलते जेल-यातनाओं को गले लगा कर झेला। समाजवादी चिन्तन को देश भर में सर्वव्यापी प्रखरता देनेवाले एक उल्लेखनीय सेनानी हैं—याजी जी। निर्भय और निःस्वार्थी, अपने समय की आवाज़ ही हैं, आप।

इनकी जीवन-यात्रा के पड़ावों से गुजरते हुए संघर्षशील महानताओं के ऐसे दुर्लभ दर्शन होते हैं कि प्राण स्पन्दित हुए बिना नहीं रहते। अनुभव का एक-एक प्रसंग कल के इतिहास की धरोहर है।

यह महत्त्वपूर्ण बातचीत की—श्री सुरेन्द्र मिश्र, एक पूर्वनिदेशक आकाशवाणी ने और यह विस्तृत रिकार्डिंग २० जनवरी 1986 से दिल्ली में सम्पन्न हुई थी। उसी से कतिपय मार्मिक स्मरणीय प्रसंग।
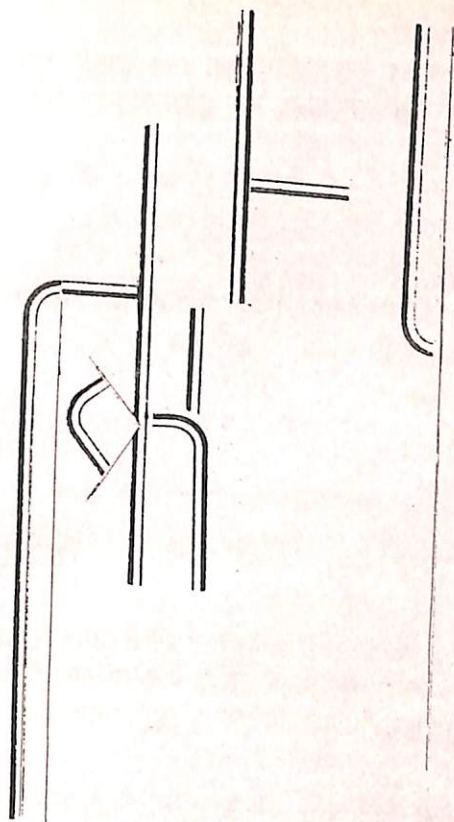
।।एक जीवित इतिहास।।

प्र० : मुख्य मुद्दा क्या था? जिसमें आप लोगों का आपस में मतभेद हुआ?

उ० : झगड़ा हम लोगों का जो किसान सभा में ट्रेड यूनियन में काम करते थे, तो हमलोग समाजवादी विचार के थे कि किसान मजदूर राज होना चाहिए।

प्र० : यह उसी वक्त बात उठी थी कि . . .।

उ० : उठ गयी थी और उसके बाद में पीछे बताऊंगा कि झगड़ा कांग्रेस में उस समय था पूर्ण आजादी का। गाँधी जी कहते थे कि "नहीं उपनिवेशिक स्वराज होना चाहिए।" ये काँग्रेस के नियम के खिलाफ थे। उसके पहले 1927 में मद्रास कांग्रेस में पूर्ण आजादी का प्रस्ताव पास हुआ था और इसीलिए उसको याद दिला के सुभाष चंद्र बोस जो कि उस समय के कांग्रेस सेशन के जी० ओ० सी० थे, जनरल आफिसर कमाण्डर . . . जी ओ सी कहते थे तो उसमें जतिन दास जितने हमलोग रिव्योलूशनरी थे, तो हमलोग सब उसको सुभाष बाबू के साथ वोट भी किया, उनके साथ और नजदीक हो गये।

प्र० : किस विषय पर वोट हुआ?

उ० : वोट यही है कि औपनिवेशक स्वराज होना चाहिए कि मुकम्मल आजादी, पूर्ण आजादी होनी चाहिए? गांधी जी कहते थे कि एक बरस उनको, अंग्रेजों को और मौका देना चाहिए, औपनिवेशक स्वराज के पक्ष में थे, इंडीपेंडेन्स होना चाहिए। तो हमलोग हार गए। जिस समय भाषण हो गया था सब लोगों का यदि वोट दिया जाता तो गाँधी जी की हार हो जाती।

प्र० : अच्छा।

उ० : लेकिन चार घंटा बाद वोट हुआ और तब तक कैम्प में लोग इतना प्रचार किए कि गाँधी जी की इज्जत का सवाल है, यह है . . . । और उस समय पंडित नेहरू सुभाष बाबू एक साथ थे।

प्र० : अच्छा वोटिंग में भी साथ थे?

उ० : वोटिंग में भी साथ थे।

प्र० अच्छा जी, फिर . . . ?

उ० : फिर उसका असर पड़ा और वाजाप्ता हमलोग स्वामी सहजानन्द सरस्वती और जितने लोग थे, नेताजी के साथ राजनीति में आये, फिर हमलोग लाहौर कांग्रेस गये एक बरस के बाद . . .

प्र० : तब तक किसान-सभा की स्थापना हो चुकी थी?

उ० : हाँ, किसान-सभा की स्थापना हो चुकी थी।

प्र० : किसान-सभा की स्थापना कब हुई थी?

उ० : वैस्ट पटना में . . .

प्र० : कब?

उ० : 1926 में, लेकिन 1928 में वाजाप्ता आपके सोनपुर में किसान सभा बनी है। उसके अध्यक्ष स्वामी सहजानन्द सरस्वती, डाक्टर एस० के० सिन्हा महामंत्री और राजेंद्र बाबू-उस समय किसान सभा में सब सदस्य थे जिन्हें जमींदारों से लड़ना-झूझना था, भूमि लेनी थी इसलिए सब किसान सभा में थे।

प्र० : मुख्य नेता कौन थे - संगठन् करने वालों में?

उ० : संगठन करने वाले में हमारे पंडित यदुनन्दन शर्मा, लेकिन स्वामी जी के नेतृत्त्व में जितने हम लोग . . .

प्र० : उनमें कौन-कौन लोग प्रमुख हुए? जो हैं, या नहीं हैं।

उ० : गंगाशरण सिंह, यदुनन्दन शर्मा महामंत्री हुए। तो हमलोग सब वाजाप्ता किसान सभा में भी, कांग्रेस में भी थे, और मुकम्मल आजादी का जब हमलोग . . .

प्र० : अच्छा! किसान सभा और कांग्रेस का संबंध कैसा बना और विकसित कैसे हुआ?

उ० : पहले तो बहुत मधुर संबंध था और मधुर संबंध रहा। जब किसान सभा बहुत आगे बढ़ गई और बहुत लोकप्रिय हो गई और आगे आपको बताऊँगा कि 1937 के इलैक्शन में किसी की माँग नहीं थी। सिवाय स्वामी सहजानन्द सरस्वती की, राजेंद्र बाबू की भी उतनी माँग नहीं थी जो सदाकत आश्रम में थे। तो उस समय हमलोग लैफिटिस्ट अपने को कहते थे। उग्रवादी।

उ० : तमाम पटना जिला कांग्रेस कमेटी पर स्वामी सहजानन्द सरस्वती कभी प्रेसिडेण्ट थे। मैं जनरल सैक्रेटरी। इस तरह से पटना जिला कांग्रेस कमेटी को हमने उनके हाथ में जाने नहीं दिया आखिर तक . . . । तो इसलिए फिर लाहौर में कांग्रेस सेशन हुआ 1929 में रावी के तट पर। फिर हमलोग डेलिगेट होकर वहाँ गये। और वहाँ तो क्योंकि अंग्रेजों ने तो गाँधी जी को औपनिवेशिक स्वराज दिया नहीं। 11 बजे रात तक घड़ी लेकर लोग बैठे हुए थे कि लन्दन से स्वराज्य आने वाला है। स्वराज्य तो आया नहीं तो रात को अर्द्ध रात्रि कम्पलीट इन्डीपेंन्स का रेजोल्यूशन . . .

प्र० : तो ऐसा वातावरण था कि अब आने वाला है?

उ० : लोग प्रचार करते थे। हमलोग तो बोलते थे कि अंग्रेज कभी नहीं आयेगा। लेकिन वह प्रचार करते थे कि आजादी आने वाली है। उसको देहात में कहते थे कि औपनिवेशिक स्वराज को डोमिनिया स्वराज। डोमिनियन स्टेट्स नहीं कहने आता था। देहात में डोमिनिया स्वराज कहते थे कि डोमिनिया स्वराज आएगा। लेकिन वह स्वराज नहीं आया और कम्पलीट इंडीपेंडेंस का रेजोल्यूशन वहाँ पास हुआ और हमलोग बड़े खुश हुए।

प्र० : उस वक्त कांग्रेस के अध्यक्ष कौन थे?

उ० : उस समय पंडित जवाहर लाल नेहरू। और पंडित जवाहर लाल नेहरू सिर्फ अध्यक्ष की हैसियत से, पूर्ण आजादी भी नहीं, पूर्ण आजादी से भी आगे बढ़ गये।

प्र० : उनके अध्यक्ष होने में तो कोई कठिनाई वगैरा तो उन दिनों नहीं हुई?

उ० : नहीं, उस समय विवाद कुछ नहीं। उस समय सर्वसम्मति से हुए। दूसरा कोई नहीं था। तो उसके आने के बाद वहाँ तय हो गया। प्लैन बना 26 जनवरी के लिए और हुआ क्या कि अब आजादी की लड़ाई शुरू होगी और 30 में बाजाफ्ता आजादी की लड़ाई शुरू हुई।

प्र० : पूर्ण आजादी से आगे, अभी आपने कहा कि हम लोग बढ़े। वह कैसे बढ़ गए? वहाँ उस कांग्रेस में लाहौर के?

उ० : हमलोग तो जो चाहने वाले पहले कलकत्ता कांग्रेस तक थे, अपने को प्रोग्रेसिव कहते थे, लेफ्टिस्ट कहते थे तो चाहते ही थे। लेकिन जो दक्षिणपंथी भी थे उनको मायूसी हुई कि अंग्रेजों ने औपनिवेशिक स्वराज भी नहीं दिया। तो उनके सामने कोई चारा नहीं था इसलिए यह सर्वसम्मति से पास हुआ और पंडित जी और . . .

प्र० : लेकिन आपने कहा न कि पूर्ण स्वराज और बात उससे भी आगे बढ़ गई?

उ० : जी हाँ! आगे तो यह हो गई पंडित जी के शब्दों में कि पंडित जी ने कहा पूर्ण स्वराज का मतलब सबसे प्रथम लाहौर कांग्रेस में उन्होंने समाजवाद के लिए कहा। हाँ उसी कांग्रेस सैशन में 29 में लाहौर कांग्रेस में उन्होंने सोशलिज्म की भी बात की कि इंडिया का समाजवाद लाना पड़ेगा . . .

प्र० : उन दिनों प्रोग्रेसिव जिनकी आप आज कह रहे है, उनके नेता कौन-कौन से लोग थे?

उ० : हमारे सूबे में?

प्र० : नहीं हर जगह, मशहूर लोग?

उ० : तो हमारे स्वामी सहजानन्द सरस्वती, प्रोफेसर एन० जी० रंगा, हमारे इन्दु लाल यागिनक ये तो किसान सभा के, ट्रेड यूनियन में हमारे डांगे जी . . .

प्र० : ये भी कांग्रेस में थे?

उ० : हाँ सब कांग्रेस में। जितने भी कम्युनिस्ट पार्टी के लोग हैं अभी, जो उस समय लीडर थे जो सब लोग कांग्रेस में ही थे आल इंडिया कांग्रेस कमेटी। अलग पार्टी। उनकी पार्टी भी तो इल्लीगल थी। नेशनल फ्रंट के नाम से वे काम करते थे। लेकिन 30 में फिर आजादी की लड़ाई जब शुरू होती है और जगत बाबू और स्वामी जी के अरेस्ट होने के बाद पटना जिला का हमको डिक्टेटर बनाया गया। गंगा बाबू सब अरैस्ट हो गये थे। तो नमक कानून जो टूटा तो अप्रैल में हमलोगों ने भी बड़े पैमाने पर अपने गाँव में और हमारे गाँव के नजदीक समनीय गाँव है वहाँ नमक कानून बन्द किया। इस पर हम पर वारन्ट हुआ। लेकिन अंग्रेज इसलिए जेल भेजते हैं कि काम बन्द हो, तो मैं फरार हो गया।

प्र० : इस बीच में आप क्या क्या करते रहे? कुछ मुख्य घटनायें जो आपके सामने आईं हों कहीं किसी का त्याग देखा हो या किस तरह से उन्होंने सहायता की . . .

उ० : उस समय तो सिर्फ हमलोगों पर धुन थी कि किस तरह से अंग्रेजों को निकालना है? और अंग्रेजों को निकालने के बाद यह भी हमारे दिमाग में था कि किसान मजदूर का राज होना चाहिए।

प्र० : तो कैसे जनसहयोग मिला, इसकी कोई घटना?

उ० : पब्लिक से जनता से हमलोगों को सहयोग मिला। इतने दिन फरार रहे। गाँव के गाँव में अंग्रेज डिगडिगया बजवाते थे कि कहाँ हैं?

प्र० : जासूस लोग भी होंगे लगे हुए?

उ० : जासूस लोग तो होते थे लगे हुए लेकिन हमें सब जगह जनसहयोग था।

प्र० : कैसे? उसकी कोई घटना बताइए। हम कुछ दिलचस्प बातें उस वक्त की सुनना चाहते हैं जब आप फरार हो के काम कर रहे थे उन दिनों के कुछ अनुभव आप बतायें।

उ० : हमलोगों के साथ जनता एकदम साथ होकर के घूमती थी और सब जगह यह होता था कि यहाँ तक कि हम लोगों ने 1930 में करबन्दी भी कर दी। चौकीदारी टैक्स बन्द कर दिया और फिर जब राजेंद्र बाबू हजारी बाग जेल से छूट के आये तो हमलोग पटना लान में छिपे हुए थे। हमने वहाँ जाके बात की। सिर्फ हमने कहा कि ऐसा किसान लोग तैयार हो जाते हैं। लाठी-उठी लेके वे आते नहीं है। "इन्हें लाठी-उठी नहीं ले जानी चाहिए। "हमने कहा कि लाठी उठी चलती नहीं है। वे लाठी देखकर भाग जाते हैं। तो नमक कानून में कर बन्दी में भी लोगों ने साथ दिया। इस तरह से जेल में पढ़ाई लिखाई शुरू होती है . . .।

प्र० : आप पकड़े कैसे गये?

उ० : हम पकड़े गए।

प्र० : जनता साथ थी?

उ० : हाँ! यह हुआ कि पंडित नेहरू जी पकड़ा गये थे। उनकी स्पीच को दोहराना था। उसमें उनको लम्बी सजा हुई थी तो हुआ कि अब तो बहुत हो गये। तो हम उस रोज प्रकट होने वाले थे। तो कम से कम बीस हजार की जनता वहाँ थी और पुलिस अरैस्ट करने के लिए आयी लेकिन जनता इतनी उत्तेजित हो गई कि- "इनको नहीं जाने देंगे।" लेकिन हमने बड़ा समझाया। और बन्दूक तक छीन ली लोगों की। और एक बात है कि हमारे यहाँ की जो पुलिस थी, वह हमारे साथ थी। पुलिस जो है वह चाहती थी कि जो काम चलाने वाले हैं वे नहीं जायें। हरेक तरह का हमको सहयोग उन्होंने दिया। आगे भी मैं बताऊँगा कि इतने-इतने दिन हम फरार रह के कैसे काम किया तो उस समय सी० आई० डी० डिपार्टमेंट भी पुलिस डिपार्टमेंट भी, वह चार बार वारन्ट निकला और चारों बार फाड़ देते थे। और वह उस वक्त हम फिर अरैस्ट हुए, गिरफ्तार होकर के मजिस्ट्रेट के सामने हमको आठ महीने की सजा हुई। तो फिर बाढ़ जेल से बांकीपुर जेल गए। बांकीपुर में राजेंद्र बाबू को लाया था और वहाँ भी उनके साथ रहे . . .

प्र० : फिर कौन-कौन लोग थे वहाँ बांकीपुर जेल में?

उ० : बांकीपुर जेल में ज्यादा तो नहीं, राजेंद्र बाबू को लाया था हजारीबाग जेल से उनके इलाज के लिए। लेकिन कैम्प जेल में हम तमाम-राम दयालु सिंह से लेकर बाजिर मियां। पहले लीडरों को तीन चार

लीडरों को सिर्फ क्लास मिलता था जिसको कहते हैं, फर्स्ट क्लास, राजेंद्र बाबू हैं, एक दीप नारायण सिंह थे हमारे भागलपुर के उनको मिला, श्री बाबू को मिला, स्वामी जी को मिला।

प्र० : अनुग्रह बाबू भी होंगें वहीं ?

उ० : अनुग्रह बाबू उस बार नहीं, बाद में गये। उस वक्त नहीं गये तो इसलिए वहाँ जितने रामदयालु सिंह से लेकर जितने बिहार के नेता हुए उनमें विनोदानन्द झा, के० बी० सहाय सब लोग चार-पाँच हजार थे उसमें उड़ीसा भी हमारे साथ था। इसलिए एक हजार उड़ीसा के, यह मेहताब वगैरह जो जितने थे . . . ।

प्र० : तो उड़ीसा से कौन-कौन आये?

उ० : उड़ीसा से हमारे हरेकृष्ण मेहताब और जितने भी अभी नेता ···

प्र० : विश्वनाथ दास आये कि नहीं?

उ० : विश्वनाथ दास, नहीं। इसमें नहीं आये। विश्वानाथ दास जी का जो इलाका था उसमें आंध्र, मद्रास कान्सीच्यूयेंसी में था। यह तो बिहार से जब अलग हुआ तब उसके बाद उनका इलाका जो गंजाम डिस्ट्रिक्ट है आने के बाद वे प्रीमियर हुए लेकिन पहले वह . . .

प्र० : तो हरेकृष्ण मेहताब के अलावा कौन-कौन थे?

उ० : हरेकृष्ण महताब के अलावा जितने लीडर हैं जितने जो चीफ मिनिस्टर हुए, सब वहाँ थे। एक हजार थे उड़ीसा के और हम उड़ीसा के लोगों को हिन्दी पढ़ाते थे और वे हम लोगों को उड़िया पढ़ाते थे और मेहताब को भी हम पढ़ाते थे और मेहताब जी हमको भी पढ़ाते थे। तो इस तरह जेल में हम लोगों ने बड़े दंगल किये। हम लोगों के एक नेता थे। ठाकुर भागवत सिंह भागलपुर के, तो उन्होंने यह व्रत लिया कि हम चक्की तो चला लेंगे लेकिन . . . हमलोगों से कोल्हू चलवाते थे। बैल की जगह पर हमलोगों के कन्धे पर कोल्हू वे रख देते थे और हमलोगों को धूमना पड़ता था। चारों तरफ बैल की तरह घूमते थे तो उसमें से सरसों का तेल निकालते थे। तो उस समय हमलोगों ने बगावत की और बगावत यह की कि राजेंद्र बाबू जब छूटकर आये तो वहाँ का जेल सुपरिन्टेण्डेंट पेरेरा था उसने राजेंद्र बाबू को बुलाया कि गाँधी जी का हुक्म है कि जो जेल का नियम है उसको मानना चाहिए, काम करना चाहिए।" तो हमलोगों ने राजेंद्र बाबू का इतना भारी स्वागत किया, उतनी माला उनको कभी नहीं मिली होगी, गेंदे के फूल की माला। हमलोग भी जेल में लगाते थे, गेंदा।

प्र० : फूल जेल में ही लगाये कि कहीं बाहर से माला स्मगल किया?

उ० : गेंदा हम सब बहुत उगाते थे गमलों में और हमलोगों को मिर्चा खाने की आदत ज्यादा थी कच्चा, इसलिए हम तो मिर्चा ज्यादा उगाते थे। उनका स्वागत तो हुआ लेकिन हमलोग तो जान पहचान के उनके थे नहीं, खैर लेकिन दूसरे को सिखाया कि -"गाँधी जी ने कभी कोल्हू चलाया, आपने कभी चलाया?"तो वे चुप हो गए। इसलिए हमलोगों ने राजेंद्र बाबू की बात नहीं मानी और हमलोगों ने कोल्हू नहीं चलाये। इसके प्रतिवाद में जेल अथारिटी ने दानापुर कन्टूनमेंट से फौज बुला दी कि किस तरह से ये लोग नहीं चलायेंगे देखेंगे। और इतने लाठी चार्ज हुए हमलोगों पर : लेकिन हम लोगों के उन नेताओं की वहाँ से बदली की गयी।

प्र० : बदली होने वालों में कौन-कौन थे?

उ० : ज्ञान शाह थे, राजेंद्र राय चौधरी थे। तो हमारे नेताओं की तो वहाँ से बदली की लेकिन हम लोग जो पाँच हजार थे, हम लोगों ने बन्द कर दिया। हम लोगों ने कभी भी कोल्हू नहीं चलाया। हाँ!

हमलोग गेहूँ पीसते थे। हम लोगों का दिन भर में बीस सेर गेहूँ पीसने का था। तो अकेले हमलोग खड़ा होकर के गेहूँ तो पीस देते थे क्योंकि यह समझते थे कि हमलोगों को भी खाना पड़ेगा। पटना बांकीपुर जेल में या कैम्प जेल में यह खाना क्या था, उसमें कीड़े सब होते थे और जो मवेशी को जिस तरह से चारे काट के देते हैं उस तरह से उबाल के कुछ देते थे। इसलिए हम लोग.कितना प्रोटैस्ट करते थे। इसलिए हमलोग कोल्हू न चलाकर के चक्की इसलिए चलाते थे कि आटा अच्छा मिलेगा। तो जब कोल्हू चलाते थे तो हमलोगों को इतना दर्द होता था कि . . . यदि थकावट कुछ आ जाये तो वह जो वार्डर होता था, तो वह जिस तरह से बैल को पीटता है, हमलोगों को पीटता था।

प्र० : अच्छा?

उ० : लेकिन इसमें तो हमलोग भी थक जाते थे। प्रिसं कालेज से गये पढ़े लिखे स्टूडेंट।

प्र० : मेहनत की आदत नहीं . . .।

उ० : तो उसमें कोल्हू चलाना और यह चक्की चलाना ये सब तो बीस बीस सेर गेहूँ पीसना। तो लेकिन गेहूँ हमलोगों ने बराबर पीसा।

प्र० : ऐसा करने वालों में आपके साथ और कौन-कौन से लोग थे?

उ० : समूचा सारा बिहार था। नाम नहीं लेंगे।

प्र० : वह तो ठीक है लेकिन जो कुछ आज कल जो जाने माने लोग . . .

उ० : अभी उसमें से, मैं समझता हूँ कि नेता तो सब मर गए।

प्र० : अच्छा जैसे . . .

उ० जितने नेता थे बिहार के कोई नहीं हैं जीवित। जितने जो हुए वह तो अब कोई जीवित ही नहीं हैं।

प्र० : लेकिन उनके नाम याद हैं आपको?

उ० : नाम तो जितने है राम दयालु सिंह से लेकर के गंगा शरण जी, अम्बिका कांत जी, प्रोफेसर वाली से लेकर के मैं तो यह कहता हूँ कि ये सब मर ग . . . नेता सब मर गए। और अभी देहातों में हैं लोग जो हमारे साथ थे। वे तो फिर इसके बाद गाँधी इर्विन पैक्ट हुआ। हमलोग नहीं पैक्ट के थे कि जब तक आजादी न हो पैक्ट नहीं हो। लेकिन गाँधी इर्विन पैक्ट हुआ तो हमलोगों ने तय किया . . .

प्र० : पैक्ट के खिलाफ लोगों में कौन-कौन थे?

उ० : जी! थे तो सब लोग लेकिन भीतर से बहुत लोग चाहते थे कि 'जल्दी निकलें' यह भी बात थी।

प्र० : भीतर से लोग बाहर निकलना चाहते थे?

उ० : हाँ! बाहर निकलना चाहते थे। इसलिए कि वहाँ की जो हालत थी बड़ी खराब थी। पटना कैम्प जेल की। तो मार्च में जब गाँधी इर्विन पैक्ट हुआ तो इसके बाद हमलोगों ने तय किया पटना के लोगों ने कि एक साथ छूटना चाहिए। जेल आथरिटी ने कहा कि नहीं हम बैच बाई बैच छोड़ेंगे। इसमें प्रजापति मिश्र, जगलाल चौधरी ये जितने गाँधीवादी थे उन्होंने कहा कि—"नहीं हम तो गांधी जी का हुक्म मानेंगे।" छूटने के बाद मालूम हुआ कि- आप डेलिगेट चुने गए। खबर आई घर गए और रुपया लाये। . . .

प्र० : घर में रुपया देने में तो कोई दिक्कत नहीं की?

उ० : चूँकि बाप के एक लड़के थे। उस सयम खेती-बाड़ी बहुत थी। तो राजनीति में हमने सब बेचा। लेकिन पैसे की कमी नहीं होती थी। तो जेल में भी कुछ आ ही जाता था। लेकिन हम उस समय तो बीड़ी पान सब कुछ खाते ही नहीं थे। लेकिन और लोगों का तो था। लेकिन हम लोग तो जेल में भी बैठे नहीं रहते थे कैम्प जेल में भी हमलोगों ने जो निरक्षर भट्टाचार्य, मे स्कूल खोला और हम हमलोग पढ़ाते थे। जेल में भी हम लोग समय निकाल लेते थे और देहात के जो पढ़े लिखे नहीं थे उनको पढ़ाते थे। गाँधी इर्विन पैक्ट होने के बाद फिर हमलोग कराची कांग्रेस में गए।

प्र० : इस बीच में कितने दिनों के बाद कराची कांग्रेस हुई?

उ० : तुरन्त हम लोग छूटे और सीधे रवाना हो गए। फिर उसके बाद में उसी बीच में हमलोग जा ही रहे थे - सरदार भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव को फाँसी हो गई। गणेश शंकर विद्यार्थी मारे गए और उस तनाव में हम लोग . . .

प्र० : कैसे मारे गए गणेश शंकर विद्यार्थी?

उ० : हिन्दू-मुसलमान को मिलाने में झगड़ा हो गया था।

प्र० : कानपुर में . .

उ० : तो उस समय वे शहीद हो गये . . .

प्र० : आप कानपुर के दंगे की ही तो बात कर रहे हैं?

उ० : जी हाँ! लेकिन उसी वक्त हमारे गाँधी जी कोशिश कर रहे थे कि सरदार भगत सिंह और राजगुरु, सुखदेव को छोड़ दिया जाये। चाहते थे कि फाँसी नहीं हो। सुलहनामे में लिखवा लेते तो शायद फाँसी नहीं होती। लेकिन उनको फाँसी से बड़ा तनाव था और जब वहाँ हमलोग पहुँचे तो उसका सुभाष बाबू नेतृत्त्व कर रहे थे गाँधी जी का वहाँ तो कालाफूल से स्वागत हुआ और बड़ा विक्षोभ भी था। तो वह जो फंडामेंटल राइट्स हैं, उसमें वह पास हुआ समाजवाद का जो बीज है वह। लेकिन तनाव बहुत था। सरदार भगत सिंह के भी पिता जी उसमें शामिल हुए, उनको लाया गया। तनाव को कम करने के लिए। उस समय नौजवान भारत सभा का भी कान्फ्रैंस हुआ जिसके सुभाष बाबू अध्यक्ष थे। जिसमें सरदार भगत सिंह थे उसमें भी हमलोग शामिल हुए।

प्र० : तो भगत सिंह की फाँसी की निन्दा की गई?

उ० : हाँ निन्दा की गयी। सब लोग निन्दा करते थे। लेकिन विक्षोभ बहुत था। वह फाँसी हो गई थी।

प्र० : तो यह तो आपने अभी बात बताई कि विक्षोभ बहुत था लोगों में और कांग्रेस पार्टी के अन्दर भी भगत सिंह की फाँसी की निन्दा करने के मामले में कोई मतभेद नहीं था, लेकिन कांग्रेस पार्टी ने पार्टी के रूप में भगत सिंह के कारनामों की सराहना की या नहीं और फाँसी की निन्दा की या नहीं?

उ० : गाँधी का नानवायलेंस या अहिंसा जो है, कांग्रेस ने भी कभी भी अहिंसा को उनके सत्य को अकीदा सिद्धांत नहीं बताया। गाँधी जी की हार हुई।

प्र० : यह किस ईस्वी की बात कर रहे हैं आप?

उ० : वह पहले जो हमारे गुजरात में जो स्पैशल सैशन हुआ।

प्र० : यह किस ईस्वी में हुआ, वह कुछ याद है?

उ० : 1919 में मैं समझता हूँ कि स्पैशल सैशन था। 1919 या 1920 में हुआ। तो उसमें 1919-20 के बीच में है। तो उसमें जो इन लोगों का जो प्रस्ताव था सी आर दास का, मोती लाल नेहरू का कि पीस फुल और लेजिटिमेट मीन्स कांग्रेस का अकीदा रहेगा कि जायज और शांतिमय तरीकों से . . . और गाँधी जी का-तो उन लोगों ने कहा कि यह शासन करना है, लोगों को दबाना है। चोर को, बदमाश को तो हम यदि इसका क्रीड बना लेते तो वह ठीक नहीं है। लेकिन जब-जब आजादी की लड़ाई होगी तो गाँधी जी उनका जो नानवायलेंस था, उसी तरीके से हम लड़ेंगे और देश के लिए इसको कांग्रेस ने मान लिया। और इस दफा आजादी की लड़ाई हुई तो गांधी जी को डिक्टेटर बनाया गया। आगे किया गया लेकिन और लोग लड़ते थे दूसरे तरीके से रिवोल्यूशनरी लोग, लेकिन कांग्रेस का यह बराबर . . .

प्र० : रिवोल्यूशनरी आंदोलन, क्रांतिकारी आंदोलन शुरू हो चुका था?

उ० : जी हाँ! रिवोल्यूशनरी तो बहुत पहले, इनके आने के पहले, गाँधी जी के कौंग्रेस में आने से पहले ही शुरू हो गया था। यह गदर पार्टी लाला हरदयाल जी, बाबा स्वर्ण सिंह भगना, इन लोगों ने जो प्रथम विश्व युद्ध हुआ, उस वक्त पंजाब में कैलिफरनिया में कैनाडा के और लोग जो किसान लोग गये थे इन लोगों का वहाँ (गदर पार्टी और 1914-18 तक) उनका इतना भारी प्लान और इतना भारी आरगेनाइजेशन सारे यूरोप में सारे एशिया में हो गया था कि यदि भेदिया लोग भंडा नहीं फोड़ते तो उसी समय देश आज़ाद हो जाता, इतनी उनकी तैयारी थी और उसमें बड़े लोगों को फाँसी हुई, बाबा पृथ्वी सिंह आजाद को भी उसी में फाँसी, पंडित परमानन्द जी को और लोगों को। तो इसलिए गदर पार्टी के लोग थे या और भी जो हमारी ट्रेड यूनियन में काम करते थे, तो जो कम्युनिस्ट पार्टी के लोग थे, रिवोल्यूशनरी लोग थे इनका विचार रहा कि हम दोनों तरीके से लड़ेंगे। तो इसलिए जब-जब कांग्रेस के नेतृत्त्व में आजादी की लड़ाई होती थी, यों तो सारे भारत वर्ष में जो आजादी की लड़ाई 1857 से ले के और 1947 तक दो सौ वर्ष तक हुई तो दो तिहाई भाग आजादी की लड़ाई हिंसात्मक हुई। दो तिहाई और एक तिहाई गाँधी जी के नेतृत्त्व में जो कांग्रेस ने लड़ी एक तिहाई है उसका। अन्त जो हमारी आजादी की लड़ाई हुई जिसमें सफलता मिली, अंग्रेज गया वह सशस्त्र हुई।

प्र० : अच्छा! यह बताइये बातचीत में आप चर्चा कर रहे थे कि गणेश शंकर विद्यार्थी कानपुर में हिन्दू, मुस्लिम दंगे में मारे गए। तो उन दिनों हिन्दू मुस्लिम दंगे हुआ करते थे क्या? और होते थे तो क्यों होते थे? कैसे होते थे?

उ० : दंगे कराये जाते थे। ब्रिटिश सरकार की नीति थी कि डिवाइड एंड रूल। तो बड़ी उन्होंने कोशिश की। वहीं दंगे कराये और दंगे कराने में हमारे खाली कानपुर की बात नहीं कर रहे हैं, जहाँ-जहाँ हिन्दुस्तान में दंगे हुए सारी जो खुराफात, जो विभाजन देश का हुआ, जो साम्प्रदायिकता आ गई, यह सब ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नीति थी कि- डिवायड एन्ड रूल। आपस में फूट डालो। उसके पीछे आप जाइये कि किस तरह से, कैसे मुस्लिम लीग बनाया गया, कैसे लाया गया 1916 में जो पैक्ट हुआ उसके बाद फिर वहाँ जो कलकत्ता कांग्रेस में मोती लाल नेहरू रिपोर्ट बनी। उसमें कितनी कोशिश हुई है। तो यह अंग्रेजों की नीति थी। इसलिए कानपुर में भी प्रोटैस्ट प्रतिवाद मीटिंग थी। सरदार भगत सिंह को फांसी हो गयी उसके लिए हड़ताल हो रही है। लेकिन मुसलमानों ने जा कर कहा कि "ऐसा नहीं होना चाहिए। उस पर दंगा करवाया गया। अब दंगे हो गये तो दंगा तो देखता नहीं। तो उस समय सबसे प्रथम जो सांप्रदायिकता के सेक्यूलिरिज्म के लिए जो पहला शिकार हुआ तो हमारे गणेश शंकर विद्यार्थी हुए। दूसरा साम्प्रदायिकता के शहीद हमारे गाँधी जी हुए तीसरा श्रीमती इंदिरा गाँधी हुई। सांप्रदायिकता ही इस तरह से करायी गयी।

प्र० : फिर क्या हुआ?

उ० : तो इसलिए जहाँ-जहाँ अंग्रेज जबतक रहे हिन्दू को, मुसलमान को, यहाँ तक कि औरों को भी वे अलग करना चाहते थे। रैमसन मैकवेल अवार्ड्स जो गाँधी जी गोलमेज कांफ्रेंस से वापस आये और उसके बाद तो आप जानते हैं कि जब हमलोग जेल में थे तो किस तरह से हरिजन को भी अलग कर दिया था ओर गाँधी जी यदि फाकाकशी नहीं करते अम्बेडकर नहीं होते तो . . .

प्र० : लेकिन 26 वीं कांग्रेस के बाद क्या हुआ?

उ० : जी।

प्र० : 26 की कांग्रेस के बाद क्या हुआ? नहीं वह जो लाहौर में कांग्रेस हुई उसमें 38 में?

उ० : हाँ तो उसके बाद तो आजादी की लड़ाई हुई। मैंने आपको बताया कि आजादी लेने के लिए गाँधी इर्विन पैक्ट हुआ। गाँधी जी गोलमेज कांफ्रेंस जायेंगे, तो एकमात्र कांग्रेस ने अपना प्रतिनिधि उनको चुना।

प्र० : गाँधी को?

उ० : गाँधी जी को चुना और वहाँ से वह वापिस चले आये।

प्र० : और कौन-कौन लोग गये थे?

उ० : नहीं। कांग्रेस की तरफ से तो सिर्फ एक ही गये थे। मालवीय जी भी गये थे।

प्र० : गंगाजल और मिट्टी . . .

उ० : जी हाँ! लेकर के और लोग भी गये थे।

प्र० : वह किनकी तरफ से गये थे मालवीय जी?

उ० : वह तो अंग्रेजों ने बनाया कि एक सैक्शन कुछ हिन्दू को रिप्रेजेन्ट करते हैं। उस समय तक तो उनका हिन्दू महासभा से भी संबंध था कांग्रेस में भी थे। लेकिन और लोगों को भी ले गये। तो गोलमेज राजा महाराजा के प्रतिनिधि को भी ले गये। और लोगों को भी। अम्बेडकर को भी ले गये और लोग भी गये। लेकिन कांग्रेस से एकमात्र हमारे प्रतिनिधि सिर्फ गाँधी जी गये। लेकिन बैरंग वापिस आये और उनके आने के पहले अंग्रेजों ने ऐसी स्थिति कर दी कि हमारे पंडित नेहरू जी ने यू पी में इतना किसानों का संघर्ष किया कि गाँधी जी के आते-आते ये लोग अरैस्ट होने लगे। सुभाष बाबू को अरेस्ट कर लिया।

प्र० : कहाँ पर?

उ० : हाँ हिन्दुस्तान में। कांग्रेस को इलीगल किया जाता है और क्रिमिनल ला एमेन्डमेन्ट के मुताबिक सबको, कांग्रेस को इलीगल कर के और फिर 32 में आजादी की लड़ाई शुरू होती है।

प्र० : उसमें आप भी जेल गये?

उ० : हाँ! उस समय हम और गंगा बाबू हमलोग फिर फरार होके काम करते थे एक जगह छिपे थे हमलोग पटने में। सब प्लानिंग कर रहे थे कि पुलिस ने घेर लिया . . .। कुछ लोग तो हमारे लोग कोठे से कूदे, रामेश्वर जी का हाथ टूटा और हमलोग पकड़ा करके वहाँ पे गोदाम में रखे गये और फिर 56 रोज के बाद हमलोगों को छोड़ दिया। छोड़ने के बाद फिर हमलोगों ने आजादी की लड़ाई शुरू की और फिर हमलोग अरैस्ट हुए। उस समय किसान सभा भी बहुत आगे बढ़ गयी थी,

आगे चल रही थी। लेकिन बाहर रह करके स्वामी जी को, एक वैराग हो गया कि हजारीबाग जेल में कुछ लोग अण्डे खाके स्वामी जी को चिढ़ाते थे। तो स्वामी जी ने तय कर लिया कि अब जेल नहीं जाऊँगा इन लोगों के साथ। उस समय तो बड़े कट्टर थे वह। इसलिए स्वामी जी आजादी की लड़ाई में थे। लेकिन परस्पर जान बूझ कर के किसानों के आंदोलन को चलाने के लिए। वह 32 33, 34 तक वे जेल नहीं गये।

प्र० : अंग्रेजों ने क्यों उनको पकड़ा नहीं? वह इतने मशहूर नेता थे . . .

उ० : हाँ, ये तो बाद में होता है कि अरैस्ट करते हैं शक पर, लेकिन उनको अरैस्ट नहीं किया।

प्र० : क्यों?

उ० : इसलिए कि उन्होंने पार्टिसिपेट नहीं किये। स्वामी जी बाहर रह कर किसानों का आंदोलन चलाते रहे।

प्र० : जनता ने उनपर विश्वास कैसे किया? आजादी की लड़ाई में उन्होंने भाग नहीं लिया उन दिनों, और न ही जनता के विश्वासपत्र ही रहे?

उ० : हमारे बहुत से नेता लोग नहीं जेल गये, तो नेता तो रहे। लेकिन स्वामी जी हजारीबाग जेल में तो फर्स्ट क्लास में थे। रामवृक्ष बैनीपुरी का नाम जानते होंगे। बड़ा उनको चिढ़ाते थे अण्डा ले जाते थे। कहते थे कि वह जो होता है न पत्थर, उसको क्या कहते हैं?

प्र० : श्वेत शालिग्रम।

उ० : शालिग्राम। श्वेत शालिग्राम नहीं। ऐसे तो आजादी की लड़ाई मनसा कर्मणा वाचा तो थे ही। फरार हो के बहुत काम किया। एक घटना सुनायेंगे कि अम्बिका कांत सिंह, प्रोफैसर वाली, हमलोग वाजाफ्ता हमलोग इतना स्टडी अध्ययन करते थे, स्वाध्याय करते थे, दास कैपिटल का, लैनिन की किताब सब पढ़कर करके वहाँ वाजाफ्ता एक बिहार सोशलिस्ट पार्टी करके हम लोगों ने वहाँ बनाई।

प्र० : आप भी थे उसमें?

उ० : जी हाँ! नहीं कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी तो हम तो उसमें ज्यादा प्रमुख थे। पीछे जाकर के ये 34 में जब हमलोग छूटते है चूँकि भूकंप हो गया बिहार में बड़ा भारी। जब चम्पारन जिले में तो गवर्नर गया तो उसको लैंडिंग ग्राउंड नहीं मिला। पानी हो गया था। मुंगेर में तो कितने हजार मरे 20 हजार मरे। हमारे जिले में भी . . .

प्र० : अच्छा? बिहार सोशलिस्ट पार्टी बनने के बाद यह घटना हुई या उसके पहले?

उ० यह तो घटना बाद में होती है। भूकंप - भूकंप के पहले हम लोगों ने 32 ही में वहाँ कैम्प जेल में बिहार सोशलिस्ट पार्टी बनाई।

प्र० : उन दिनों जयप्रकाश जी आ चुके थे या नहीं?

उ० : नहीं वह नहीं आये थे। वह थे दूसरे जेल में। यहाँ नहीं।

प्र० : उन दिनों वह भारतवर्ष में ही नहीं थे?

उ० : आ गये थे। वह हमारे बिहार में नहीं थे।

प्र० : अच्छा? और कहाँ थे?

उ० : वे बाम्बे में।

प्र० : बाम्बे में क्या कर रहे थे?

उ० : बाम्बे में मूवमेंट में गये। वह भी। वे भी जेल गए 30 में भी गये तो नहीं थे लेकिन वे भी अरैस्ट हुए। तो बिहार सोशलिस्ट पार्टी हम लोग पहले ही चलाते थे।

प्र० : बिहार सोशलिस्ट पार्टी के नेता लोग कौन-कौन थे?

उ० : उसमें अम्बिका काँबे मर गये, प्रोफैसर वारी हम लोग थे गंगा बाबू भी थे। हमारे रामवृक्ष बेनीपुरी। हम को तो ढाई वर्ष की सजा थी। लेकिन गाँधी इर्विन पैक्ट में भूकंप के बाद राजेंद्र बाबू को पहले छोड़ा और छोड़ने के बाद बिहार में जितने जेल में थे सब को बिहार गवर्नमेंट ने सेवा करने के लिए सबको छोड़ दिया। राजेंद्र बाबू से उनकी कुछ बातचीत हुई इस मौके पर हमारे सब जितने राजबन्दी हैं उनको छोड़ दिया जाये। तो 34 में तो हम लोग जेल में भी देखा कि बिजली का जो लैम्प पोस्ट था, नीचे आवे ऊपर जावे। हम लोगों की दीवार ढह गई। ये सब हुआ। लेकिन टीन के मकान थे इसलिए कोई नुकसान नहीं हुआ। ये जनवरी फरवरी की यह मकर संक्रांति है न, उसी वक्त हुआ था। जलजला हुआ उसके बाद तो बड़ा जलजला हुआ क्वेटा में। लेकिन उस जलजले की वजह से हमलोग छोड़ दिये गये। उसी वक्त में एक बड़ा भारी अछूतोद्धार का आंदोलन जो जेल से भी शुरू हुआ कि गाँधी जी ने आमरण उपवास कर दिया।

प्र० : उस समय रिलीफ कमेंटी भी बनी?

उ० : जी हाँ।

प्र० : रिलीफ कमेटी बनी। आप क्या करते थे ?

उ० : हमलोग जिले में राजेंद्र बाबू के साथ मिलके सब काम करते थे। उन लोगों को रिलीफ देते थे।

प्र० : आप कहाँ काम करते थे उन दिनों?

उ० : पटना जिले में। पटना जिले में भी और तिरहुत में भी गये। सब जगह काम करते थे।

प्र० : आपकी कोई विशेष जिम्मेदारी थी?

उ० : हाँ! जिले के तो हम इंचार्ज थे। सब जगह आते थे उनके लिए। गंगा बाबू भी कर रहे थे।

प्र० : गंगा बाबू के जिम्मे क्या था?

उ० : रिलीफ कमेटी में वह भी थे, कांग्रेस कमेटी में भी थे हमलोग। डिस्ट्रिक्ट कांग्रेस कमेटी को कहा कि हम लोग स्वामी जी, गंगा बाबू श्याम नन्दन बाबू हमलोग पटना जिला कांग्रेस कमेटी को कन्ट्रोल करते थे। किसान सभा को। इसके बाद बिहार सोशलिस्ट पार्टी, इसके बाद आल इंडिया किसान सभा भी बनती है। पहले हमलोग प्रोविन्शियल लेवल पर काम करते थे इसके बाद आल इंडिया किसान सभा बनी और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी बनी नरेन्द्र देव जी के सभापतित्व में।

प्र० : कहाँ पर?

उ० : पटने में। और उसमें हमलोग भी जितने थे सोशलिस्ट पार्टी वाले, उसमें शामिल हुए। अब कांग्रेस शब्द लग गया है।

प्र० : बिहार सोशलिस्ट पार्टी वाले।

उ० : नहीं, बिहार सोशलिस्ट पार्टी भी उसमें मर्ज कर गयी। उसमें हम लोग सब शामिल हो गये। तो हमलोग भी एक फाउंडर मैम्बर है कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के भी। उसी में रह के काम करते थे - समाजवाद

के लिए भी, किसानों का भी काम करते थे। ट्रेड यूनियन में भी काम करते थे। तो यह सिलसिला चला और किसानों के बड़े-बड़े संघर्ष हमलोगों ने किये। उस समय किसान सभा बढ़ गई थी। आप जानते हैं कि बिहार में जमींदारों की वह कभी जमीन छोड़ने नहीं देते थे, सलामी लेते थे। थोड़े रुपये के लिए यदि मालगुज़ारी हो, तो उनको लम्बी-लम्बी सजा देते थे।

प्र० : किस तरह की सजा देते थे?

उ० : सजा देते थे रैगिनी के कांटे पर किसान को सुला देते थे। वसूल करने के लिए इल्लीगल एक्शन भी थे जो लोग करते थे।

प्र० : अच्छा?

उ० : काँटों पर सुला देते थे। उनके एक सौ रुपये उनकी मालगुजारी बाकी है उसके चलते उनको नीलाम करा देते थे।

प्र० : कितने बड़े-बड़े आंदोलन लड़े उन दिनों आपने ? कुछ खास मशहूर आंदोलन के नाम।

उ० : जी हाँ वे गिरियक थाने में जो रामेश्वर प्रसाद बड़े भारी जमींदार थे, उनकी जमींदारी में हमलोग बहुत लोग गये। हम तो जेल नहीं गये लेकिन बहुत लोग हमारे जेल गये किसान आंदोलन में पंडित नन्दलाल शर्मा गये राहुल सांकृत्यायन गये पंडित जगनन्द शर्मा गये ये लोग स्वामी जी को भी अरैस्ट करते थे। लेकिन किसान सभा से कांग्रेस का जो मधुर संबंध था वह जरा कड़वा होने लगा।

प्र० : फिर कोई आंदोलन हुआ था?

उ० : जी हाँ हुआ।

प्र० : कार्यानन्द शर्मा वगैरह थे?

उ० : जी हाँ जी हाँ, नहीं वह तो समूचे बिहार के कोने कोने में हुआ।

प्र० : नहीं? मशहूर आंदोलन की और मशहूर युद्ध की बात कर रहा हूँ?

उ० : सत्याग्रह। जो बिहार में मशहूर था उसमें भी हमलोग गये। स्वामी जी को भी लाये थे। जो इसलिए 34 में फिर हमलोग जब संघर्ष कर रहे थे उस बीच में हुआ कि जो गवर्नमेंट आफ इंडिया का जो एक्ट था प्राविन्शियल आटोनोमी तो उसको कांग्रेस ने स्वीकार किया और इलैक्शन हुआ।

प्र० : यह किस साल इलेक्शन हुआ?

उ० : यह 36 में। उससे पहले तो हमारी फैजपुर कांग्रेस होती है, लखनऊ कांग्रेस होती है, इसमें हमलोग जितने लेफ्टिस्ट प्रोग्रेसिव थे . . .

प्र० : फैजपुर कांग्रेस की कोई मुख्य बात क्या थी?

उ० : वाजाफ्ता कमेटी बनी। और थ्रू आऊट इंडिया किसान दो तरह के होते हैं। एक तो रय्यतबाड़ी सिस्टम है जैसे पंजाब, महाराष्ट्र में रय्यतबाड़ी सिस्टम। किसान लोग खुद मालिक होते थे और गवर्नमेंट को लगान देते थे, कर देते थे। हमारे बिहार में बंगाल में उड़ीसा में और ईस्टर्न यू० पी० में क्या था कि असली वे जमींदार थे। किसान लोग यद्यपि खेत रखते थे उनका खेत था लेकिन उनको नीलाम भी कर देते थे। सलामी लेते थे। यदि अपनी जमीन को भी बेचते हैं तो सैंकड़े पच्चीस जमींदार को भी देना पड़ेगा। इसको बनाया था लार्ड कर्नवालीस ने। तो ये आगे नहीं जाने पाया। और रेवेन्यू भी जैसे बिहार में 20 करोड़ रुपया जमींदार लोग, किसानों से लगान लेते थे और सिर्फ एक करोड़ बीस लाख रुपया गवर्नमेंट को खजाने में देते थे . . .

प्र० : तो सब खुद रखते थे?

उ० : हाँ वे सब खा जाते थे। इलीगल एक्शन कितना करते थे। तो इसलिए 1934 में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी भी बनी, आल इंडिया किसान सभा भी बनी।

प्र० : इसी के खिलाफ सब लोगों ने भाग लिया?

उ० : यह जो शोषण होता था तो इसलिए सोशलिस्ट पार्टी विदिन दी कांग्रेस रहकर सब पोलिटिकल पार्टी, कम्युनिस्ट विचारधारा के चाहे वह अजय घोष हों या अब जो बड़े-बड़े कम्युनिस्ट नम्बूदरिपाद को गोपालन को, जितना आप सुनते है सब कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में एक हम लोगों का प्लेटफार्म था।

प्र० : राममूर्ति भी थे, नम्बूदरिपाद भी थे?

उ० : जी हाँ। सब जितने लोग हैं जो प्रोग्रेसिव और समाजवादी विचार के थे वे सब कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में थे।

प्र० : यूसुफ मेहर अली, क्या आपको याद है कुछ और इनकी ?

उ० : जी हाँ यह तो यूसुफ मेहर अली, मीनू मसानी ये सो . .

प्र० : इन लोगों से व्यक्तिगत सम्पर्क हुआ कि नहीं आपका?

उ० : खूब सपंर्क था इन लोगों से। सम्पर्क रहा। अन्त तक रहा। अभी भी है मीनू मसानी से तो अब तक है।

प्र० : नहीं, यूसुफ मेहर अली के बारे में कुछ विशेष चीजें मालूम हैं आपको कि वह क्या करते थे? कैसे आदमी थे?

उ० : वे बड़े नेक आदमी थे प्रोग्रेसिव थे लेकिन बीमार ज्यादा रहते थे। लेकिन विचार के बड़े। लेकिन उनकी सोशलिस्ट पार्टी को . . .

प्र० : लेकिन उनकी काम करने की शैली क्या थी?

उ० : हिन्दी में बोलते थे। हाँ, एक खूबी थी कि जितने सोशलिस्ट प्रोग्रेसिव सब हिन्दुस्तानी में ज्यादा बोलते थे।

प्र० : अच्छा!

उ० : क्योंकि कांग्रेस सैशन में जो कोई अंग्रेजी में भाषण देता था-हल्ला होता था। जब हमारी मिनिस्ट्री होती है, तो राजा जी ने 14 हजार आदमियों को हिन्दी सिखाने के लिए जेल भेजा। और राजा जी बाद में क्या हो गये यह आपको मालूम ही है!

प्र० : अच्छा! नहीं यह बताइये कि हम सुना करते थे कि युसूफ मेहर अली जेल में जवाहर लाल जी को या और नेताओं को पढ़ने के लिए किताबें भेजते थे। या इस तरह की चीज तो ये एक शोर था या . . .

उ० : किताब तो एक दूसरे को सब लोग भेजते थे हमलोगों के पास भी किताबें आती थीं बाम्बे से . . . . .

प्र० : जी?

उ० : किताब सब आती थीं तो सबको भेजते थे। और युसूफ मेहर अली तो नासिक जेल, बड़ौदा जेल,

अहमदनगर जेल, व महाराष्ट्र जेल में रहे। यह तो आगे जाके आता है। मैं यह कह रहा था कि 34 में किसान सभा और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी जो है बहुत जोर से काम करने लगी। इस बीच इलैक्शन हुआ। उस इलैक्शन में हम लोगों को जो किसान सभा में काम करने वाले थे और जो प्रोग्रेसिव थे जो स्वामी जी ने कोशिश की कि कुछ लोगों को यह टिकट मिले जो अब समाजवादी विचारधारा के किसान सभा में हैं। तो मुझे भी असैम्बली का कैंडिडेट बनाया गया। 37 के इलैक्शन में और सर गणेश दत्त हमारे सामने खड़े थे।

प्र० : कांग्रेस पार्टी किस मुद्दे पर लड़ाई लड़ रही थी?

उ० : यह जो लड़ाई यह लड़ रही थी कि जो प्राविन्शिल आटोनामी में जो स्वायत्तशासन है हम उसमें शामिल होकर के अपनी सरकार बना करके हम किसानों की सेवा करेंगे और कंस्टीट्यूशन को तोड़ने की भी कोशिश करेंगे।

प्र० : आजादी की लड़ाई की ओर भी ध्यान रखेंगे?

उ० : जी हाँ! एक बड़े वैधानिक तरीके से लड़ने के लिए . . . .

प्र० : और जो दूसरे लोग खड़े हुए जैसे आपने अभी नाम लिया सर गणेश दत्त का ये पार्टी से खड़े हुए?

उ० : इन लोगों की, लैण्ड होल्डर्स लोगों की पार्टी थी।

प्र० : अच्छा?

उ० : इसमें यह जो सर सी पी एन थे वह ही लीडर थे। सर गणेश दत्त ने उन्हीं को लीडर बनाया था। लेकिन सब लोग हार गए उस समय।

प्र० : नहीं, ये लोग तो बड़े शक्तिशाली लोग थे शक्तिशाली या . . .

उ० : हमारे नोमीनेशन को रिजेक्ट करवाना चाहते थे। पहले दो बार कांग्रेस को शिकस्त दी थी काऊंसिल के इलेक्शन में। तो सरदार पटेल ने राजेंद्र बाबू ने श्री बाबू ने कहा कि यदि सर गणेश दत्त को हराना है, तो स्वामी जी ने कहा कि यह ही हरा सकता है। तो इनकी कोशिश यह हुई सर गणेश दत्त की-हमारे नोमीनेशन को रिजैक्ट करवाया। लेकिन जब रिजैक्ट नहीं हुआ तो यह समझे कि इस समय तो हम हार जायेंगे तो वे भाग गये मैदान से। उन्होंने राय बहादुर लेख नारायण सिंह, उनके आदमी थे, उनको खड़ा किया और हमने उनकी जमानत जब्त करायी। एक और खड़ा हुआ उसकी भी जमानत जब्त करायी।

प्र० : सर सी पी एन के खिलाफ कौन थे?

उ० : सर सी पी एन तो जमींदारी सीट से आये लैण्ड होल्डर्स से सब राय बहादुर श्यामानन्दन सहाय से लेकर रामेश्वर प्रसाद से लेकर राजेंद्रधारी सिंह से लेकर के जितने उनके थे कोई जीतने नहीं पाये। और हम लोग . . .

प्र० : ये सारे लोग . . .

उ० : ये सारे लोग हार गए। और हमलोग जीते अब जीतने के बाद में हमारी लड़ाई असैम्बली में ज्यादा शुरू हो जाती है। नौ रत्न कहलाये थे हमलोग।

प्र० : कौन-कौन लोग थे?

उ० : हम थे, श्यामानन्दन सिंह थे, जमना आचार्य जी थे, हमारे राय वर्मा थे। हमारे यह छपरा जिला के

बजरंग बाबू थे। इस तरह से नौ आदमी थे। नौ आदमी हमलोग बराबर कोशिश करते थे। वहाँ हम चीफ व्हिप थे पार्टी के। श्री बाबू ने हमको चीफ व्हिप बना . . .

प्र० : अच्छा कांग्रेस जीत गई?

उ० : कांग्रेस जीत गई। हुकूमत हुई। चार मिनिस्टर हुए। आठ पार्लियामेंट्री सेक्रेटरी हुए और हमारे डाक्टर सिन्हा हमारे प्रीमियर कहते थे उस सभय, चीफ मिनिस्टर नहीं कहते थे प्रीमियर और हम चीफ व्हिप थे।

प्र० : तो नेता का चुनाव कैसे हुआ?

उ० नेता का चुनाव। वहाँ चार कैंडिडेट थे। बिहार में रामदयालु सिंह खुद कैंडिडेट अनुज नारायण सिंह, कैंडिडेट डाक्टर महमूद कैंडीडेट, श्री बाबू कैंडिडेट ये चार कैंडिडेट हो गये मैदान में। राजेंद्र बाबू पी सी सी के प्रेसिडेंट थे। तो हमलोग जितने एम एल ए थे तो कंसेनसस जैसे चलता है न . . .

वहीं ज्यादा माने प्रचण्ड बहुमत हुआ। डाक्टर एम के सिन्हा को फिर हुआ कि यह लीडर होंगे और आप जितने कैंडिडेट हैं कोई समर्थक, कोई अनुमोदक। स्वामी के नेतृत्व में जयप्रकाश भी थे। सब लोग हमलोग जो कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के बिहार असेम्बली में 39 तक की नौबत आ जाती थी कि श्री बाबू को सरदार पटेल से पूछना पड़ता कि "हमारा चीफ व्हिप बिगड़ गया क्या करें?" लेकिन वे कहते थे कि - "कोई इलेक्शन नहीं होगा।"

प्र० : फारवर्ड ब्लाक कैसे बना?

उ० : इन्टायर लैफ्ट, ये फारवर्ड कोई एक ग्रुप के लिए नहीं था। यह फारवर्ड ब्लाक में सब लोगों से राय लेकर के नेता जी के घर पर सबकी बुलाहट हुई और हुआ कि ब्लाक बने। ब्लाक पार्टी नहीं थी पहले ये नागपुर में जाके पार्टी . . . जब नहीं आते हैं ये एन्टायर लैफ्ट जो है, इस ब्लाक में आयेगा। समाजवाद उसका ध्येय होगा और संघर्ष एक सैनिक मनोवृत्ति का होगा। तो फारवर्ड ब्लाक बना करके उन्होंने कोशिश की इतनी कोशिश की कि वह जयप्रकाश जी को नेहरू के यहाँ ले गये याद दिलाने के लिए, जो स्वीट्जरलैण्ड में नेहरू जी से और नेताजी से बातजीत हुई थी, कि आपको एन्टायर लैफ्ट का लीडर बनना है। लेकिन जयप्रकाश जी को यह दिखाने के लिए सुभाष बाबू ने कि साहब हम लीडर नहीं बनना चाहते हैं, हम तो कामिटेड हैं, पंडित नेहरू को हमने यूरोप में कह दिया था इसलिए। जयप्रकाश जी को साथ साथ लेकर नेहरू जी के यहाँ उनके सामने बातचीत हुई कि आपने कमिट किया है कि हम एन्टायर लैफ्ट के लीडर होंगे। इसीलिए आप हमलोगों का नेतृत्व कीजिए। दक्षिणपंथी के साथ मत जाइये। उन्होंने कहा कि - "हाँ हमने आपको वचन दिया था। हम को और कुछ मौका दीजिए, मौका।'

वह गाँधी जी से मिले। मिलने के बाद यह हुआ कि गाँधी जी ने एलान किया कि पंडित जवाहर लाल नेहरू इज दी ज्वेल आफ इंडिया, हमारा उत्तराधिकारी है। वह हमसे बिछड़ गये। एन्टायर लैफ्ट से पंडित नेहरू जी हमसे अलग हो गये। तो संघर्ष बढ़ता गया। मैं यह कह रहा था कि फारवर्ड ब्लाक की स्थापना कर सुभाष बाबू सारे हिन्दुस्तान में घूमे और सिर्फ धूम करके यही वोट लेते थे जनता से कि संघर्ष आने वाला है, आजादी की लड़ाई आने वाली है उस विश्व युद्ध के वक्त हमको राष्ट्रीय संग्राम भी छेड़ना है।

प्र० : इसमें जयप्रकाश जी उनके साथ थे?

उ० : हाँ। वहाँ एक साथ थे। लेकिन जब उनके मकान पर मीटिंग हुई तो जयप्रकाश जी, स्वामी जी सब

गये तो कहा कि मैं तो जरा सोचूँगा। लेकिन जब जयप्रकाश जी ने तटस्थ मौनम सम्मतिलक्षणम् का निर्णय लिया . . . मैं आपको एक किस्सा बताता हूँ। जोगेंद्र शुक्ल हमारे बिहार के बड़े मशहूर नेता थे। वह लाठी लेके जयप्रकाश जी को खोज रहे थे कि कहाँ है वह?

प्र० : नाम क्या रखा?

उ० : वह ही आल इंडिया फारवर्ड ब्लाक। नाम वह ही रहा लेकिन वह ब्लाक से, प्लैट फार्म से . . .

प्र० : संविधान में परिवर्तन किया?

उ० : नहीं संविधान में परिवर्त्तन नहीं किया खाली पार्टी कर दिया। असूल तो समाजवाद था ही था। लेकिन उसमें ये हो गया कि . . . प्लेट फार्म की जगह उसमें पार्टी बन गयी पीछे जा करके नाग पुर में। तो मैं यह कह रहा था कि लड़ाई छिड़ने के बाद जब और जोर से हमलोग काम करने लग गए उस वक्त अब एक फिर बात आती है, यहाँ असैम्बली में। सुभाष बाबू ने कहा कि - "कांग्रेस मिनिस्ट्री को रिजाइन नहीं करना चाहिए।" रादर दे शुड इनवाईट डिसमिसल" कि बार के खिलाफ प्रोपेगेन्डा करके, लड़ाई में ब्रिटिश को सहायता नहीं दे करके हम अपनी आजादी की लड़ाई लड़ेंगे। हम लोग उसको मदद नहीं दें। मंत्रिमंडल में रहें और यदि अंग्रेज चाहे तो मिनिस्ट्री को डिसमिस करे। लेकिन हम रिजाइन नहीं करें।

प्र० : जो भारत से भागने की योजना बन रही थी उसमें . . .

उ० : उसमें हम लोग पूरा थे।

प्र० : लेकिन जाना किन किन लोगों को था? इसका पता किन किन लोगों को था?

उ० : नहीं, पता तो इतने ही लोगों को था। शरत बाबू को भी था। लेकिन यह योजना कैसे बनी, यह सब बात सबको नहीं कहते थे। हम को भी नहीं कहते थे। कैसे जायेंगे यह बहुत पोशीदा बात थी।

प्र० : अच्छा इसको कौन कौन लोग जानते थे? कुछ अगर पता हो आपको?

उ० : हाँ। उसको शरत बाबू जानते थे। हमारे ये कि मियाँ अकबर शाह जो फ्रंटियर थे पेशावर के जो वे ही आये लेने के लिए नेता जी को। उनको कैसे बुरका पहना के अपनी बीवी बना के कैसे निकाला फिर भगत राम तलवार उन्हीं को चुना गया

प्र० : ये भगत राम तलवार कौन हैं?

उ० : भगत राम तलवार कम्युनिस्ट पार्टी के लीडर, उस समय कीर्ति पार्टी जो कम्युनिस्ट पाटी की जो किसान पार्टी थी, उनकी कीर्ति पार्टी के लोग थे। वे लोग भी हमारे साथ थे। सब थे। इसलिए भगत राम तलवार उनको कलकत्ते से, शिशिर बोस जो उनके भतीजे हैं, डाक्टर हैं उन्होंने गाड़ी से लेकर के हमारे बिहार के गोमो स्टेशन पर उनको गाड़ी पर चढ़ाया।

प्र० : ट्रेन में?

उ० ट्रेन में। जहाँ से वे फ्रंटियर गये पेशावर गये। पेशावर में डाक्टर शिशिर घोष जो हम लोगों के नेता थे, मियां अकबर शाह अबाद खां, मिरगेजन खां, और ये लोग फिर पेशावर से उनको काबुल ले गये।

प्र० : तब आप स्वतन्त्र थे ? गिरफ्तार हुए नहीं थे?

उ० : नहीं हम भी अरैस्ट हो गये। स्वामी जी भी अरैस्ट हो गये। जब नेता जी भी अरैस्ट हो गये। हमें अढ़ाई वर्ष की सजा हुई।

प्र० : तो उनके भागने के वक्त आप जेल में थे या बाहर?

उ० : जेल में। एक मेसेंज आया कि किसी हालत पर यह सारा भार ले लीजिए। आपको बाहर निकलना है।

प्र० : जेल से?

उ० : जेल से जिस तरह से हो निकलना है। उस समय कर्नल डी पी नाथ हमारे सुपरिन्टेन्डेंट थे, हजारीबाग जेल के।

प्र० : दीवान पिताम्बर नाथ बाद में डायरैक्टर जनरल आफ प्रिजन भी हुए?

उ० : तो मैंने उनको विश्वास में लिया कि हमारी जरूरत है। सुभाष बाबू के जाने के पहले।

प्र० : दीवान पीताम्बर नाथ बिहार में हैल्थ डायरैक्टर भी थे?

उ० : डायरैक्टर भी हुए बाद में। लेकिन हमारे जेल के सुपरिन्टेंडेंट थे वे हजारीबाग जेल के। तो हमको अढ़ाई वर्ष की सजा थी तो हमको 6 महीना उन्होंने रिमीशन दिया। हमको कर्नल डी पी नाथ ने चूँकि ये रिगरस इम्प्रिस्नमेंट था तो छः महीना हमको पहले निकाल दिया हमको रिमीशन दे दिया चरखा कातने में। चरखा हमने काता नहीं, देखा नहीं। छः महीने पहले वहाँ से निकले। उस समय तक पीपुल्स वार हो गया था।

और भी मैं एक बात सुनाता हूँ, जब हमलोग हजारीबाग जेल में जयप्रकाश जी, गंगा शरण, स्वामी जी, राहुल जी सब साथ थे। हजारीबाग जेल में ये 40 की बात कर रहा हूँ। तो जयप्रकाश जी का सोशल बाइकाट . . . कोई हम लोग उनसे बात नहीं करें।

प्र० : ये क्यों?

उ० : ऐन्टी इम्पीरियलिस्ट कान्फ्रेंस नागपुर में हुई। उसका उन्होंने विरोध किया त्रिपुरी में मौन हो गये। इसके बाद नेता जी को आगे बढ़ा कर के समझौता क्यों, सम्मेलन क्यों किए? पीछे बाइकाट करने लगे। तो इस लिए सब लोग उनसे बात नहीं करते थे। वे उसको महसूस किये।

प्र० : जी?

उ० : और स्वामी जी के सामने उन्होंने कहा कि स्वामी जी मैंने बड़ी गलती की। एन्टी पीस कान्फ्रेंस में भी गलती की, त्रिपुरी में भी गलती की, रामगढ़ में भी गलती की, हम उसको महसूस करते हैं कि नेता जी के जो रास्ते थे वे सही थे और हम उसको लिखित आपको देते हैं। यह उनको पहुँचा दीजिए और उन्होंने एक खत लिखा, सुभाष बाबू को कि जो एन्टी पीस कान्फ्रेंस त्रिपुरी और आपके रामगढ़ में आपके जो राजनीतिक निर्णय थे, वे सही थे। हमारा गलत था और हम अब मिलके काम करना चाहते हैं। आप यदि यह भी कहेंगे कि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को तोड़ दिया जाए तो मैं तोड़ करके भी आपके साथ काम करने के लिए तैयार हूँ। और वह खत जो है सुभाष बाबू को पंडित नन्द लाल शर्मा उस को लेकर के सुभाष बाबू को दे आये। सुभाष बाबू ने पढ़ा। लेकिन टिप्पणी दी कि - "कितने दिन के लिए?" ये कितने दिन तक रहेंगे जो उन्होंने लिखा है। कटाक्ष किया। वह कटाक्ष सही निकला। पंडित नन्द लाल शर्मा जी ने उस चिट्ठी को नकल करके अशोक मेहता, सोशलिस्ट को, गाँधी जी को सब को भेज दिया। तो हजारी बाग जेल में मैंने छः महीना पहले सुभाष बाबू के जो मेसेन्जर आये चिट्ठी लेकर के कि आपको निकलना है तो हम हजारीबाग जेल से छः महीना पहले निकले। स्वामी जी ने हमको बुलाके कहा कि पहला काम कैसे हो, सुभाष बाबू तो चले भर थे, काबुल के रास्ते से। उन्होंने कहा कि जैसे हो उनसे कान्टैक्ट करके, जो हमने लाइन लिया है कम्युनिस्टों ने,

अभी पीपुल्सवार को मदद करना है। तो मैंने उनसे साफ साफ कहा कि - 'जो पहले मैसेन्जर है संदेश वाहक हैं पहले उसको आप कनविंस कीजिए। जो आपका मैसेन्जर है वही कनविंस्ड नहीं है। आपको कम्युनिस्ट लोग सिर्फ लिख देते हैं ऐसे-ऐसे कि स्वामी सहजानन्द सरस्वती, स्वामी और आप कम्युनिस्टों के रास्ते पर चले गये और आपने बराबर मार्क्सिज्म में पढ़ाया लेलिनिज्म में पढ़ाया कि कालोनियल में लड़ाई होगी। जब इम्पीरियलिस्ट मरेंगे तब हम अपनी आजादी का संघर्ष करेंगे। आज आप लेनिन को मार्क्स को कैसे भूल गये?" स्वामी जी से कहा और मैंने जेल से निकलने के बाद स्वामी जी के खिलाफ एक बड़ा भारी वक्तव्य दिया। एन्टायर प्रैस ने उसको छापा। लेकिन स्वामी जी ने कहा कि - "निकलते के साथ चुप रहना। और नहीं तो तुम हमारे खिलाफ भी बोलोगे। तुरंत तुम्हारी गिरफ्तारी हो जायेगी।" हमने कहा कि गिरफ्तार तो हम जेल के गेट ही पर होने वाले हैं क्योंकि उनको पता नहीं था, वारन्ट जो है। मगर हम तो फरार हो गए।

प्र० : आप कैसे फरार हो गये जब वारन्ट था पहले से?

उ० : हमको सी आई डी के आफिसर्स ने बता दिया। जो बिहार के बड़े बड़े सी आइ डी आफिसर है हमको बता दिया कि आप छिप जाइए आपका वारन्ट आ गया। इसलिए हम करीब डेढ़ वर्ष फरार रहे आजादी की लड़ाई चलाई।

प्र० : फरार होकर आपने क्या किया?

उ० : लेकिन 42 में छूट कर के हमलोग नेता जी ने भी भार सौंपा था कि सारे हिन्दुस्तान में घूम घूम करके राष्ट्रीय संग्राम को तेज करना, तो मैं तो सारे हिन्दुस्तान में छद्मवेशी होकर . . .

प्र० : 42 में आज फरार नहीं थे?

उ० : फरार हो गये न 42-43 में।

प्र० : इसके बाद जब सन् 1942 का आंदोलन शुरू हुआ और उसकी घोषणा बंबई में हुई और आप वहाँ वोट देने पहुँचे इसकी भी चर्चा आपने की थी? उसके बाद क्या हुआ? फिर बताएँगे?

उ० : जब हमारे नेताओं की गिरफ्तारी में सारे हिन्दुस्तान के नेता पकड़ लिए गए। गाँधी जी से लेकर जितने वर्किंग कमेटी के सदस्य, तो हम जो वहाँ जितने जो कांग्रेस के नेता थे, फारवर्ड ब्लाक के नेता थे, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के थे, हम लोगों ने मीटिंग करके संकल्प किया कि हम लोगों को इस आंदोलन को चलाना है। देश तो नेता विहीन हो गया और उनकी जगह हम लोग लेकर सारे हिन्दुस्तान में हम अगस्त क्रांति को इस सरकार को पंगु बना कर सब जगह पैरलल गवनमेंट बनायें इसलिए वहाँ बैठकर के हम लोगों ने तैयार किया कि अब सारे हिन्दुस्तान में हम लोग घूमें। और इसलिए अरुणा आसफ अली, डाक्टर राम मनोहर लोहिया, अच्युत पटवर्द्धन, मुकुल लाल सरकार और हम लोग तमाम जो चाहे फारवर्ड ब्लाक के लोग हों, चाहे कांग्रेस सोशिलिस्ट पार्टी के लोग हों, क्योंकि हमारे जो कम्युनिस्ट बंधु थे उनका तो पीपुल्स वार था। इसलिए हम लोग सारे हिन्दुस्तान में अगस्त क्रांति के बाद घूम घूम कर हमने कम से कम लाइफ में इतना काम नहीं किया जितना अगस्त क्रांति के बाद से लेकर, जब तक हमारी गिरफ्तारी नहीं हो जाती है। तो सारे हिन्दुस्तान में हम लोगों ने जा-जा कर प्रांतीय कांग्रेस कमेटी को, फारवर्ड ब्लाक को, जितनी हमारी. . . क्योंकि कांग्रेस इल्लीगल हो गयी थी, फारवर्ड ब्लाक को, सभी प्रांतों में इल्लीगल कर दिया गया, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी बिहार और यू० पी० इल्लीगल हो गयी।

प्र० : सारी राजनीतिक संस्थायें इल्लीगल हो गयी थीं?

उ० : जी, सारी संस्थायें इल्लीगल हो गईं। तो हम फ़रार हो कर के बिहार में भी संतारा में गये, मिदनापुर गये। सब जगह पैरेलल गवर्नमेंट करके और जितने प्रदेश कांग्रेस कमेटी थीं जा जा कर के उनको इन्सट्रक्शन दिया कि अब किसी को जेल नहीं जाना है। बर्लिन रेडियो से किस तरह से क्विट इंडिया मूवमेंट को चलाना चाहिए, रेडियो पर वे सब प्रोग्राम देते थे।

प्र० : जी।

उ० : और लोग उसको नोट करके रखते थे क्योंकि उस समय रेडियो सुनने में भी दो वर्ष की सजा होती थी। नेता जी के संदेश आते थे और उसको नोट करके हम वार आफ इंडिपेन्डेंस पत्रिका निकालते थे बाम्बे से . . .

प्र० : यहाँ एक प्रश्न उठता है - इसका पता आपको कैसे लगा कि नेता जी ब्राडकास्ट कर रहे हैं जर्मनी से और उनकी ये योजना है?

उ० : हम लोगों को यह तो बाजाफ्ता बाद में संबंध हो जाता है। नेता जी जाने के पहले लखन लाल पारिख जो बड़े भारी डायमण्ड मरचेंट भी थे पेरिस में भी, इंगलैंड में भी, हिन्दुस्तान में भी वह हमारे फारवर्ड ब्लाक ट्रेजरर थे। यह काम करना है तो देशी रियासत उनके घर पालमपुर जो गुजरात में है, वहाँ से हमारी वायरलैस से सब बात होती थी– नेता जी से चाहे वे बर्लिन में रहें, फिर सिंगापुर में आ गये। तो सारा प्रोगाम हम लोगों को वहीं से मिलता था और नेता जी कब ब्राडकास्ट करेंगे हमलोगों को पता था। पता लग जाता था कि किस वक्त ब्राडकास्ट करेंगे तो जितना अगस्त क्रान्ति का जितना स्वराज का प्रोग्राम था वह सब नेता जी बर्लिन रेडियो . . से आजाद हिन्द उसका नाम रेडियो से देते थे। हम लोग उसको नोट करें।

प्र० : बताइये कि उसके बाद क्या हुआ आप सुनते रहे ब्राडकास्ट औ . . . ?

उ० : लेकर के सब "वार ऑफ इंडिपेंडेंस" में छपवा करके हम लोग सारे हिन्दुस्तान में प्रांतीय कांग्रेस कमेटी जितने काम करने वाले थे सबको इन्स्ट्रक्शन दिया कि फरार होकर के कोई जेल नहीं जायेगा और जो प्रोग्राम की कापी देते थे साइकलोस्टाइल करके। तो इस तरह से बिहार में, उत्तर प्रदेश में, मिदनापुर में, सतारा में पच्चीस सरकार बनी। सभी जगह तो इतनी कामयाब नहीं हुए लेकिन इस मूवमेंट को प्रोग्राम देने में जितनी नेता जी की देन है। उसको ले करके हम लोग "वार आफ इंडिपेंडेंस" निकालते थे। छपाते कहीं थे और वितरण कहीं से होता था। और उसमें हमारे अन्वार अनसारी, हमारे उत्तर प्रदेश के फारवर्ड ब्लाक के और चद्रकांत ठक्कर जो हमारे रास बिहारी बोस के साथ पहले जापान में थे टोकियो में, तो उस समय ये हमारे दो मैसेन्जर ऐसे थे।

प्र० : आज कल अन्सार साहब कहाँ हैं ?

उ० : अन्सार अनवारी हैं, यहां दिल्ली में हैं और पार्लियामेंट के मैम्बर भी थे और चंद्रकात ठक्कर तो मर गये। ये सब उनको रेडफोर्ट में भी पीछे लाया। ये सब जाकर के बिहार में स्वामी जी को भी समझाने की कोशिश की। तो इतनी राष्ट्रीयता आ गयी थी देश में कि स्वामी जी के आश्रम को भी किसान जलाने गये। जलाने के लिए गये। रोका गया।

प्र० : जन युद्ध नारे की वजह से ?

उ० : जन युद्ध के नारे की वजह से। पीपुल्स वार इसलिए उस गवर्न्मेंट को चलाने के लिए हमलोग सब जगह तार काट देते थे। बैरिकेड करते थे कि टामी लोग यहां रह गये तो नेपाल बार्डर से लेकर के बैंगलौर से लेके मद्रास, सतारा, बलिया, हम लोग छद्मवेशी होकर भेष बदल कर मूवमेंट चलाते।

इस बीच मूवमेंट चलाने के लिए फिर हमको एक वायरलैस मैसेज मिला नेता जी सुभाष चंद्र बोस का मैसेज। तो हमलोग को मिलता था पेरिस से। लोग आते थे और हम लोगों को देते थे। लेकिन आजाद हिन्द फौज के निर्माण के बाद जरूरत यह समझी गई कि अब बात की जाए। अब युद्ध यहां आ जाये क्योंकि हमारे जो प्रोग्राम हमारे नेता जी संदेश भेजते थे, डाक्युमेंट भेजते थे एक सिर्फ हम लोगों को मिले। चार जो हैं, मार दिए गए और उनसे छीन लिया गवर्नमेंट ने जो बाहर आये थे। वायरलैस से भी जो संदेश होता था इन्टरसेप्ट हो जाता था। इसलिए नेता जी ने कहा कि आप को आना पड़ेगा। हमने कहा- "हम तो वहां पहुंच नहीं सकते। सब मैरिन से भी जायेंगे तो सब जगह माइंस बिछा हुआ है चाहे अरेबियन सी में आये, चाहे बे ऑफ बंगाल से आये। और वहां सिंगापुर पहुंचना है। तो कहा कि- "नहीं अपनी जिन्दगी को खतरे में डालकर के भी, बहुत जरुरी बात करनी है, आना पड़ेगा। तो सब मैरिन आया, उड़ीसा कोस्ट से गये और सारे साल . . .

प्र० : यह बताइये उन संघर्ष के दिनों में लोगों से लुका छिपी हुई। किस तरह से संघर्ष चलाया आपने जनता के बीच में कैसे रहे ? पुलिस को पता लगा कि नहीं, पुलिस ने आपका पीछा किया कि नहीं ?

उ० : नहीं पुलिस तो बहुत पीछा करती थी। एक बार तो लखनऊ में पुलिस ने घेर लिया। यह तो बहुत बार ऐसा हुआ। लेकिन अन्सार अनवारी ने हमको बचा लिया। कहा कि –"पुलिस सुपरिन्टेन्डेंट साहब, आदाब अर्ज है।" इशारा कर दिया तो हम पाखाने के रास्ते से निकल गये। फिर नेता जी के, चूंकि पहले बर्लिन से उधर आने की बात थी, तो फ्रंटियर से यू पी के फकीर के यहां गये। और वहां हम तीन महीने रहे। जो मैंस लैण्ड हैं और वहां हम तीन महीने रहे। नेता जी का प्रोग्राम उधर से लगा हुआ था। और उस समय भी लौटने पर कोहाट में पुलिस ने हमारा पीछा किया और घेर लिया मकान को और मीरगजल खां, आबाद खां, हमारे, हमको गोद में लेकर, इस छत से उस छत, इस छत से वह छत, जैसे बिल्ली अपने बच्चे को लेकर कूदती है हमको ले लेकर खुद आगे चलते। हमको जाकर के दूसरे मकान से निकल करके फिर घोष जो डाक्टर पेशावर में थे, जो खां ब्रादर्स को अब्दुल गफ्फार खां को, डाक्टर खां को कांग्रेस में लाने वाले तो उन्होंने अरेन्जमेंट किया हमारे लिये और हमको जीप से लेके मैंस लैण्ड करके, सी पी फकीर के यहां तीन महीने . . . फिर रावलपिण्डी में हमारा पीछा किया तो रावलपिंडी में भी हमारे एक रिश्तेदार मंगल सिंह अभी जीवित हैं- 95 वर्ष के हो गये, उस समय सेंट्रल असैम्बली के मैम्बर थे, उन्होंने हमको वहां शैल्टर दिया हमारे रंग जी की वाइफ जीजी गुटूर में। वह जो गुटूर डिस्ट्रिक्ट है पुलिस पीछा करती थी, तो हमको मालूम हो जाता था। और पुलिस का यह हमको बता भी देते थे।

प्र० : पुलिस वाले ही बता देते थे ?

उ० : और इसलिए सरकार की तरफ से कहा गया कि चाहे मृत हों या जिन्दा उनको पकड़ के लाओ और हमारे सिर पर 25 हजार इनाम हुआ। ❑

समय के शिखर पर लिखी एक कविता :
श्रीमती अमृता प्रीतम

साहित्य-संसार में बहुत थोड़े नाम हैं जिनकी पहचान किसी भाषा-विशेष के साहित्यिक क्षितिज की सीमा से आगे एक सार्वदेशिक रचनाकार के रूप में स्वीकृत समादृत हो जाती है। कवयित्री और उपन्यास लेखिका अमृता प्रीतम जी वैसा ही एक विशिष्ट नाम हैं, जो देश भर की अत्यन्त लोकप्रिय लेखिका के रूप में पंजाबी के साथ-साथ हिन्दी तथा अन्य भाषा-भाषी करोड़ों पाठकों के हृदय में भी सादर सस्नेह विराजमान हैं।

लोकप्रियता निश्चय ही लेखक, कवि का एकमात्र निर्णायक मानदण्ड नहीं होती, तथापि यह भी सच है कि हरेक महान रचनाकार समय के साथ-साथ अपनी कलात्मक गुणवत्ता और श्रेष्ठ सामाजिक मूल्यों की रचना के कारण, लोकप्रिय भी होता है।

कथन-शैली—जो आकाशवाणी प्रसारण में उच्चरित शब्द की अपनी निजी शैली है, इसी सहज सम्प्रेषणीय स्वतः स्फूर्त बोलचाल की शैली में अमृताजी ने, अपनी यह जीवनी-रिकार्डिंग 23 जनवरी 1986 से की जो निश्चित ही हमारे संग्रहालय की अत्यन्त मूल्यवान और संरक्षणीय साहित्य-विचार सम्पदा है।

।।समय के शिखर पर लिखी एक कविता।।

आज 1986 में मैं अपनी 67 साल की जिन्दगी को अगर एक दुनिया कहूँ तो कह सकती हूँ कि मेरी तमाम दुनिया सपनों की दुनिया है। इसे मैं दो हिस्सों में तकसीम कर सकती हूँ और कह सकती हूँ कि इसका एक हिस्सा वह है जो मेरी जागती हुई आँखों के सपनों से भरा हुआ है और दूसरा हिस्सा सोई हुई आँखों के सपनों से। जागती हुई आँखों ने सामने हकीकत क्या देखी और सपने क्या देखे, यह ही एक बहुत लम्बी यात्रा है जो मेरी नज्मों, कहानियों, नावलों में व्यक्त होती है।

कुछ तरतीब से कहना चाहूँगी कि मेरे पिता गुजरांवाला में एक जागीरदार घर में पैदा हुए। मेरे पिता के पिता का घर इतना सम्पन्न नहीं था जितना उनके नाना अमर सिंह जी का। लेकिन पिता का जन्म हुआ तो उनकी माँ लक्ष्मी नहीं रहीं। और उन्हें नाना ने गोद में ले लिया, इसलिए भी कि नाना के यहाँ कोई बेटा नहीं था। और साथ ही मेरे पिता की बड़ी बहन को भी गोद ले लिया कि उसकी देखरेख करने वाला कोई नहीं था। और इस तरह मेरे पिता और उनकी बहन अपने नाना की बहुत बड़ी जायदाद के वारिस हुए। विरासत में उन्हें इतना सोना और जेवरात मिले, कहा जाता है कि जेवरात को बड़े तराजू में तोला गया था। उसी जायदाद का एक और हिस्सा भी निकाला गया था, तीसरा हिस्सा, जो नाना की बहन के बेटे को मिला जिसे मेरे पिता अपना मामा मानते थे। और जब नाना-नानी नहीं रहे तो वही मामा थे और उनकी पत्नी जिन्होंने इन दोनों बच्चों को अपने पास रखा।

कहा जाता है कि मेरे पिता की बहन अत्यन्त सुन्दरी थीं। उनका नाम हाकम था जिसे प्यार से हाकू या हाकू बुलाते थे। वह लड़की जवान हुई तो उसका ब्याह कर दिया गया और कहते हैं कि जब उसने पति को एक नजर देखा, लौटकर मायके आई मामा के घर तो फिर ससुराल जाने से इन्कार कर दिया। उन दिनों औरत के लिए सुसराल में रहने के अलावा और कोई रास्ता नहीं था जीने का। इसलिए एक ही रास्ता बाकी था कि उन्होंने संन्यास धारण कर लिया और मामा के घर में जमींदोज गुफा बनाकर तपस्या करने लगीं।

मेरे पिता बहुत छोटे थे और रिश्ते के नाम पर वही एक बहन थी जो उनकी नजर में उनकी माँ भी थी, पिता भी। और यही उनकी रगों में बसी हुई बहन की मोहब्बत थी कि उन्होंने भी गेरुआ वस्त्र पहन लिए। और बहन की तरह पानी में भीगे हुए कच्चे चने खाने लगे और साधना करने लगे। कुछ ही साल गुजरे थे कि बहन इस दुनिया में नहीं रहीं। और मेरे पिता को ऐसी उदासीनता का अनुभव हुआ जो सही मायनों में किसी संन्यासी को होता है। कहते हैं उनके मामा ने कहीं उनकी सगाई की हुई थी लेकिन मेरे पिता ने उस बंधन को स्वीकार नहीं किया और अपने हिस्से की और बहन के हिस्से की जो दौलत उनके पास थी वह कुछ तो बाँट दी और कुछ किसी के पास अमानत रख दी और खुद दयालजी नामक एक साधु के पास जाकर रहने लगे। वहीं उन्होंने संस्कृत सीखी, ब्रज भाषा सीखी, आयुर्वेदिक का ज्ञान लिया और ब्रज भाषा में कविता कहने लगे। तब उनकी उम्र कोई बीस साल की रही होगी। बहुत तीखे, खूबसूरत नक्श थे। उन्हें दयाल जी के आश्रम में बालका साधु कहा जाता था। और सुना है कि शहर में कई औरतें

इसी इंतजार में रहती थीं कि वह बालका साधु कब आएगा और उन में एक होड़-सी लगी रहती कि आज बालक साधु किसके हाथ की बनी हुई रोटी खाएगा।

उनका नाम नंग साधु था। और कहा जाता है कि उसी आश्रम में रोज सुबह दो लड़कियाँ आती थीं पूजा करने के लिए। वह दोनों एक दूसरी की ननद भी थीं। और एक दूसरे की भाभी भी। उन दिनों अदला-बदली के ब्याह होते थे बहुत छोटी उम्र में। और वह दोनों लड़कियाँ जिन्दगी की सताई हुई थीं। एक छोटी उम्र में बेवा हो गई थीं। उसका पति कर्मचन्द जवानी में ही चल बसा था और उसकी गोद में एक छोटा-सा बच्चा था राम लाल। और दूसरी का ब्याह होते ही फौज में भरती होकर गया था और फिर उसकी कहीं कोई खबर नहीं थी।

वे दोनों गुजरात जिला के मांगा गाँव की थीं। और उन दिनों गुजरांवाला के एक स्कूल में पढ़ाती थीं और अपना गुजर बसर करती थीं। उनमें से एक जो एक तरह से न ब्याही थी न बेवा थी उसका नाम राज बीबी था और वह अति सुन्दर थी। कहा जाता है कि जब वे दोनों एक दिन दयालजी के आश्रम में पूजा करने आईं तो इतना मेह बरसने लगा कि उन्हें आश्रम में ही घंटों पनाह लेनी पड़ी। और उस दिन दयालजी ने उनकी व्यथा सुनी और फिर वक्त काटने के लिए अपने नंग साधु से कहा कि–'बेटा अपनी कविताएँ सुनाओ।' कहते हैं गुरु दयालजी ने उस दिन देखा कि नंग साधु की आँखें बार-बार बीबी की ओर उठती हैं और भींग-सी जाती हैं। और फिर कुछ दिन बाद दयालजी ने यह भी देखा कि नंग साधु की कविताओं में श्रृंगार रस आने लगा है। उन्होंने एक दिन राज बीबी को अपने पास बिठाया और नंग साधु से कहने लगे–'बेटा यह संन्यास आश्रम छोड़ दो और गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करो।' फिर यही नंग साधु मेरे पिता बने और राज बीबी मेरी माँ। और तब ही नंग साधु का नाम करतार सिंह हुआ।

मैं सोचती हूँ मोहब्बत और शायरी का सपना मुझे मेरी माँ से और पिता से विरासत में मिला और साथ ही जिन्दगी की तल्ख हकीकतें भी विरासत में मिलीं कि पिता ने गुजरावालां की अपनी अराइयों की गली वाली जिस के पास सोने की मोहरों से भरा हुआ सन्दूक अमानत के तौर पर रखा था उसने वापस देने से इनकार कर दिया और दूसरी तरफ माँ के समाज में, माँ की इतनी मुखालफत हुई कि जो बरसों तक चलती रही।

राज बीबी की एक छोटी बहन थी जमना, उन्होंने ही बाद में मुझे बताया कि उनके ससुराल में उनके बच्चों की ब्याह-शादी तक यह इल्जाम चलता रहा और उन्हें बहुत नागवार हालतों से गुजरना पड़ा। और मैं साढ़े दस साल की थी जब माँ नहीं रहीं। पिता ने संन्यास छोड़ा था राज बीबी के लिए और जब राज बीबी नहीं रहीं तो वह भीतर से ऐसे संन्यासी हुए जिसका रंग उनके वस्त्रों में तो नहीं लेकिन उनके रगो-रेशे में उतर गया।

पिता रात भर लिखते थे और दिन को सो जाते थे। घर किताबों से भरा हुआ था और मुझे लगता, मैं भी घर की किताबों में चुपचाप पड़ी हुई एक किताब हूँ। लेकिन जिसके वरक खाली हैं। यही अकेलापन था-एक गहरी उदासीनता कि हम खाली पृष्ठों पर कुछ लिखने लगे। पिता जब तक जिन्दा रहे दयालजी की तस्वीर उनके पास रही। वे कई बार तस्वीर के सामने फूल रखा करते थे। लेकिन आश्रम में रहने का उनका तजुर्बा सुखद नहीं था। कहा करते थे–'संन्यास का स्थान आत्मा में है, आश्रम में नहीं। आश्रम में आने वाले तन की भूख को, नाम की भूख को और पैसे की भूख को साथ लेकर आते हैं। ये वस्तुएँ तो आश्रम में प्रवेश करते समय पैरों की धूल की तरह उतार देनी चाहिए।' पिता जब तक रहे प्राचीन ग्रन्थों का मुताल्या करते रहे। सिक्ख धर्म के ग्रन्थों का भी उन्होंने गहरा अध्ययन किया और अपने खर्च से प्राचीन

कथाओं के आधार पर कुछ स्लाइड्स तैयार किए जो धार्मिक स्थानों पर दिखा कर साथ प्रवचन करते थे कि धर्म अपने सही अर्थों में लोगों के चिन्तन में उतर पाए। और फिर एक हादसा हुआ।

एक दिन जब मेरे पिता चिन्तन की गहराई में उतरे हुए, एक धर्मस्थान पर अपने स्लाइड्स दिखा रहे थे और लोग मन्त्रमुग्ध से देख रहे थे और सिक्ख धर्म की खूबियों पर मेरे पिता के वचन सुन रहे थे कि अचानक वहाँ निहंग लोग आए जिन्होंने एक हंगामा खड़ा कर दिया और जोर-जोर से नारे लगाने लगे कि धर्म स्थान पर यह सिनेमा बन्द करो। और वह हाथों में न जाने क्या-क्या लिए मेरे पिता को मारने और स्लाइड्स को तोड़ने के लिए आगे बढ़े। मैं बहुत छोटी थी। पिता के पास ही नजदीक में ही खड़ी थी, जब बढ़ते हुए शोर में खौफजदा होकर मैं पिता की बांह से लिपट गई। और देखा कि उन्होंने मेरी पीठ पर हाथ रखते हुए जल्दी से स्लाइड्स इकट्ठे किये और मुझे लेकर उस धर्मस्थान से चल दिए। वह एक काले रंग का बक्सा था जिसमें बड़ी एहतियात से शीशे के स्लाइड्स रखे जाते थे। और फिर वह बक्सा हमेशा के लिए बन्द हो गया और साथ ही मेरे पिता इतने खामोश हो गए कि फिर उनकी खामोशी टूटी नहीं।

मैं सोचती हूँ कि मैंने जिन्दगी भर जो कुछ लिखा, उसमें चेतन तौर पर और अचेतन तौर पर एक यत्न यह भी था कि मैं अपने पिता की खामोशी को कुछ अल्फाज दे सकूँ। अब जब 1983 में मुझे भारतीय ज्ञानपीठ का एवार्ड मिला तो मेरी तस्वीर के साथ मेरे कुछ अल्फाज शाया करने के लिए माँगे गए तो मेरे मुंह से निकलाः

अर्धनारीश्वर का फलसफा खो गया तो दासता पैदा हुई
शिव शक्ति जैसा चिन्तन खो गया तो जड़ता पैदा हुई।
धर्म खो गया तो प्रतिकर्म में से मजहब पैदा हुआ।
आत्मा खो गई तो शरीर एक वस्तु बन गया।

मजहब और सियासत बहुत बड़े माध्यम बन गए जिनके हाथों वस्तु बन चुके इन्सान का व्यापार होता है।

जब मैं बहुत छोटी थी तो नानी कहा करती थी–'अरी जब तू पैदा हुई १५ भादों को, तो देवता सो रहे थे। बाद में बड़ी हुई तो जाना कि शिशिर वसन्त और ग्रीष्म, ये तीन ऋतुएँ देवताओं का दिन होती हैं और वर्षा, शरद और हेमन्त, ये तीन ऋतुएँ देवताओं की रात होती है, जब देवता सोए रहते हैं। लगता है सारी जिन्दगी जो भी सोचती रही, लिखती रही शायद वह सब कुछ देवताओं को जगाने का एक यत्न था। उन देवताओं को जो इन्सान के भीतर सो रहे हों। हुनर का, कला का, क्या महत्त्व है, मेरे जहन में स्पष्ट होता गया तो लिखा–'कला का कर्म अनेक रूप होता है। वह बचकाना शौक में से निकले तो झोहड़ का पानी हो जाता है। महज पैसे की कामना में से निकले तो नकली माल हो जाता है। सिर्फ शोहरत की लालसा में से निकले तो कला का कलंक हो जाता है। अगर बीमार मन से निकले तो जहरीला आब-ओ-हवा हो जाता है। और किसी भी सरकार की खुशामद में से निकले तो जाली सिक्का हो जाता है। लेकिन वह ही कर्म चिन्तन में से निकले, इन्सानियत की पहचान में से निकले, धर्म के अर्थ में से निकले तो जिन्दगी का जश्न हो जाता है। ये मेरी जागती आँखों का सपना था, लफ्जों की मुकद्दस दुनिया का सपना। लेकिन सामने जो हकीकत थी और है, वह यह है कि यह दुनिया लफ्जफरोशों की दुनिया है।

मेरी नजर में दो ही तरह के लोग होते हैं, एक जो अक्षरों को प्यार करते हैं और एक जो अक्षरों का व्यापार करते हैं और सीखा कि जिस तरह मजहब और सियासत के दायरे में अक्षरों का व्यापार होता है उसी तरह अदब के दायरे में भी अक्षरों का व्यापार होता है। केरल में जब जातिवाद का भयानक रूप

इतना भयानक था कि एजावा जाति का कोई आदमी अगर 32 फुट की दूरी से ही किसी ब्राह्मण के सामने से गुजर जाता तो ब्राह्मण अशुद्ध हो जाता। तो इस वर्ण प्रथा को देखकर स्वामी विवेकानन्द ने केरल को, भारत का पागलखाना कहा था।

हम सब जानते हैं कि 1947 में जब हिन्दुस्तान की तकसीम हुई और मजहब के नाम पर जिस तरह लाखों लोगों का कत्ल हुआ तो कह सकती हूँ कि उस वर्ष पूरा हिन्दुस्तान, पूरे हिन्दुस्तान का पागलखाना था। यह तकसीम मेरी नजर में एक बहुत बड़ी ऐतिहासिक गलती है जिसे वक्त के रहबर अगर दूरअंदेशी से देखते तो ऐसी गलती हो नहीं सकती थी। और फिर बार-बार ऐसे वक्त आए, कभी बिहार हिन्दुस्तान का पागलखाना दिखाई देने लगा, कभी आसाम, कभी गुजरात और कभी पंजाब। और 1984 में हिन्दुस्तान की राजधानी दिल्ली अपने देश का पागलखाना थी।

यह हमारे देश में, हमारे गाँव, नगर, शहर और प्रांत, बार-बार अपने देश का पागलखाना बनते हैं, क्यों बनाए जाते हैं और बनाने वालों को मुजरिम क्यों नहीं करार दिया जाता। और लोगों को जेहनी तौर पर गुलाम रखने वालों के लिए, कड़े कानून क्यों नहीं बनाए जाते। हमारे देश का संविधान क्यों नहीं बदला जाता और मजहब के नाम पर सरकारी स्थानों में मुकर्रर जगह क्यों रखी जाती है? और एक देश के लोगों के लिए ब्याह-शादी का कानून एक क्यों नहीं बनाया जाता? यह कितने ही जलते हुए सवाल हैं जो मेरे अक्षरों में हमेशा तड़फते रहे। मेरी नजर में धर्म का किसी भी मजहब से कोई भी ताल्लुक नहीं होता। धर्म संसार की रंगों में चलते हुए खून का नाम है। और मजहब ऊपर से पहने हुए वस्त्रों का नाम है। धर्म का स्थान मन में होता है मस्तिष्क में होता है और घर के आंगन में होता है। लेकिन मजहब का स्थान बाजार में होता है, बाजार की दुकानों में होता है।

अभी इसी साल के पहले दिन जनवरी की पहली तारीख, केरल के वरकला इलाके में शिवगिरि मठ में मुझे तकरीर के लिए बुलाया गया था और वहाँ जो कुछ मैंने कहा उसके कुछ अलफाज यहाँ दर्ज करना चाहती हूँ कि हमारे देश के सात पवित्र स्थान सात पुरियाँ कहे जाते हैं। अयोध्या, मथुरा, गया, कांची, काशी, अवन्ति और द्वारकापुरी। इनमें से द्वारका पुरी सागर के किनारे थी जो कृष्ण के देह त्यागने के सातवें दिन सागर में लोप हो गई। बाद में वह द्वारिका के नाम से दूसरे स्थान पर बस गई। पर अपने मूल स्थान से वह लोप हो चुकी है। मैं सोचती हूँ सागर में लोप हो चुकी द्वारकापुरी हर इन्सान के 'मैं' का वह टुकड़ा है जिसकी तलाश हर इन्सान के मैं को करनी होती है और उसका इतिहास खोजना होता है।

इसी मैं की तलाश में मैंने जाना कि मेरे में और एक ब्राह्मण में क्या फर्क है। यही कि मैं ब्राह्मण नहीं हूँ। मेरे में और एक क्षत्रिय में यही फर्क है कि मैं क्षत्री नहीं हूँ। मेरे और एक वैश्य में भी यही फर्क है कि मैं वैश्य नहीं हूँ। इसी तरह मेरे में और एक शूद्र में भी यही फर्क है कि मैं शूद्र नहीं हूँ। और जाना कि मेरे में और एक हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान या इसाई में भी यही फर्क है कि मैं हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान या इसाई नहीं हूँ। मेरे मैं की एक पवित्र पुरी द्वारकापुरी फिर कौन से पानी में लोप हो गई यह खोजते हुए मैंने अपनी द्वारकापुरी का भेद पा लिया कि मैं चरक जाति की हूँ। हमारे प्राचीनकाल में चरक उसे कहा जाता था जिसका मुताल्या, जिसका अध्ययन जिन्दगी में कभी खत्म नहीं होता था। वह तमाम जिन्दगी इल्म को, ज्ञान को ग्रहण करता था और तमाम जिन्दगी उस इल्म को, ज्ञान को बांटता रहता था और तमाम जिन्दगी उस इल्म के लिए अपनी प्यास को समझ लिया तो अपनी जाति पहचान ली। और जान लिया कि दो हाथों से जो अर्जित करना है वही हजार हाथों में बाँट देना है। चिन्तन ही वह नगरी है द्वारकापुरी, जो जाने किस पानी में गर्क हो गई।

धर्म चिन्तन की आत्मा है। आत्मा लोप हो गई तो कई मजहब एक जड़ता बनकर उस द्वारका के नाम पर कई जगह बस गए। धर्म की द्वारकापुरी खो गई। सो धर्म के नाम पर जिन स्थानों की स्थापना हुई, वह दौलत के जोर से हुई। तलवार के जोर से हुई या अन्धी श्रद्धा के जोर से हुई। पर आँखों वाले विश्वास के जोर से नहीं हुई। धर्म तो आँखों की रोशनी होता है। लेकिन यह सदियों का दुखांत है कि धर्म के नाम पर इन्सान से आंखों की बलि माँगी गई और चिन्तन से तर्क शक्ति की बलि माँगी गई। यहाँ मैंने हिन्दू लफ्ज को सिक्ख, मुस्लिम और इसाई लफ्जों के साथ इस्तेमाल किया है आज के प्रचलित अर्थों में, लेकिन सही अर्थों में जाएँ तो हिन्दू किसी मजहब का नाम नहीं है।

हिन्दू, हिन्दुस्तान में पैदा होने वाले का नाम था। आठवीं सदी में इस लफ़्ज का ऐतिहासिक हवाला मिलता है कि फारस के लोग सिंधु शब्द का उच्चारण नहीं कर सकते थे और वहाँ से आए लोगों ने सिन्धु नदी को हिन्दू नदी कहा और सिन्धु नदी के दक्षिण में रहने वालों को हिन्दू नाम दिया। हिन्दू लफ़्ज से किसी धर्म या फिरके की तरफ इशारा नहीं था। आर्यावर्त यानी भारत वर्ष के सभी लोग हिन्दुओं के रूप में जाने जाते थे। और हिन्दू लफ़्ज के सही अर्थों में जाकर मैं मानती हूँ कि किसी का मजहब कोई भी हो लेकिन पाँच तत्त्व के रिश्ते को मिट्टी, पवन, पानी, अग्नि और आकाश के रिश्ते से देश के मुसलमान भी हिन्दू हैं, सिक्ख पारसी और ईसाई भी हिन्दू हैं क्योंकि हिन्दू लफ़्ज हिन्दुस्तान में पैदा होने वाले के लिए है।

अभी मैंने कहा था कि दुनिया में दो ही तरह के लोग होते हैं जो अक्षरों को प्यार करते हैं और एक जो अक्षरों का व्यापार करते हैं और यह व्यापार करने वाले सिर्फ मजहब और सियासत के दायरे में नहीं होते, साहित्य और पत्रकारी के दायरे में भी होते हैं। इनका जो भयानक रूप मैंने देखा, शायद किसी और लेखक ने नहीं देखा होगा। बहुत छोटी थी 16-17 साल की जब पहली किताब शाया हुई थी। और पंजाब की पत्रकारी में बहुत बेहूदा लेख लिखने शुरू कर दिए गये, जिनका ताल्लुक मेरी कलम से नहीं था वह मेरी जवानी से था, शक्ल-ओ-सूरत से था और मेरे औरत होने से था। उस वक्त जो मेरे समकालीन थे उनके हसद का जहर अभी उनकी जबान पर नहीं आया था लेकिन जब मेरी यह किताब पंजाब यूनिवर्सिटी के कोर्स में लगी तो मेरी समकालीन एक लेखिका जिसने इतनी भाग-दौड़ की कि मेरी किताब कोर्स में से हटा दी जाए। किताब तो नहीं हटाई गई लेकिन उस में से एक नज्म अन्नदाता जब्तशुदा करार दी गई।

पत्रकारी उसी तरह जहर उगलती रही ऐसे-ऐसे अल्फाज में जो किसी तहजीब-याफ़्ता इन्सान की जबान पर नहीं आ सकते हैं। मेरा एक नावल था 'चक नम्बर २६' जो अब हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी और सिन्धी जबान में शाया हो चुका है और मराठी और मलयालम जबान में शाया हो रहा है। उसे जब्तशुदा करार देने के लिए मेरे समकालीन ने बहुत कोशिश की और एक मेरी कहानी थी 'एक शहर की मौत' जो भारतीय ज्ञानपीठ की ओर से प्रकाशित 'अमृता की श्रेष्ठ रचनाएँ' संकलन में भी छप चुकी थी हिन्दी में और माडर्न इंडियन शार्ट स्टोरीज में भी छप चुकी थी अंग्रेजी में, कि अचानक एक शाम गुरुनानक यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर साहब का मुझे फोन आया कि अब सीनेट की मीटिंग में वह कहानी जब्तशुदा करार दी जाएगी और मुझसे पूछा गया कि मैं कुछ कहना चाहूँगी। और साथ ही कहा गया कि मैं कुछ ऐसा क्यों नहीं लिखती कि लोग मेरी इज्जत करें। जवाब में मैंने कहा—'जब तक मेरी नजर में मेरी इज्जत है तब तक इज्जत लफ़्ज को खतरा नहीं हो सकता। इसके इलावा मुझे कुछ नहीं कहना। आप मेरी कहानी को जब्तशुदा करार देना चाहते हैं तो दे दीजिए।'

और फिर जब मेरी किताब 'रसीदी टिकट' छपी जो हिन्दी, उर्दू, गुजराती, और अंग्रेजी में भी अनुवाद हुई थी और बम्बई की एम. एम. डी. टी. विमल यूनिवर्सिटी में दो साल के लिए एम० ए० के टैक्स्ट बोर्ड

में ट्रान्सलेटिड क्लासिक्स के तौर पर पढ़ाई जाती थी, उसे पंजाब में जब्तशुदा करार देने के लिए मेरे कुछ समकालीन थे जिन्होंने बेहद कोशिश की और इस बार उन्होंने मजहब का सहारा लिया जिसके नाम पर लोगों को आसानी से उकसाया जा सकता है। और यह सिलसिला चलता रहा।

कई बार मेरे समकालीन किसी सरकारी महकमें में मेरे खिलाफ चिट्ठियाँ लिखते और कई बार अखबारों में लिखते और उनकी कतरने किसी न किसी सरकारी महकमें में भेज देते। लेकिन जब 1982 में भारतीय ज्ञानपीठ का एवार्ड मेरे लिए घोषित हुआ तो बरसों से जो सिलसिला चल रहा था वह खुलेआम आग बरसाने लगा।

1983 के फरवरी महीने में नेशनल बुक ट्रस्ट की ओर से किताबों की एक नुमाइश लगी थी चंडीगढ़ में। उसका उद्घाटन मैंने किया था। यह नेशनल बुक ट्रस्ट का तकाजा था और जब वापस दिल्ली पहुँची तो खबर मिली वहाँ इंडियन एक्सप्रैस पंजाब एडीशन में खबर छपी है कि आइन्दा अगर मैं पंजाब में कदम रखूंगी तो मेरा घिराव किया जाएगा और फिर उसी साल ५ मई की तारीख में जारी हुआ मुझे एक नोटिस मिला कि गुरु नानक पर लिखी हुई मेरी नज्मों के आधार पर एक फौजदारी मुकदमा किया जाएगा मुझ पर। और लिखा था कि वे नज्में लिखकर मैंने धर्म का अपमान किया है। यह तो गनीमत हुई कि उस वक्त सरदार खुशवन्त सिंह, सरदार अमरीक सिंह, राज गिल और कलकत्ता के गीतेश शर्मा जैसे पत्रकार आगे बढ़े और उन्होंने ऐसे इल्जाम की मुखालिफत की। और साथ ही अंग्रेजी और दूसरी भाषाओं के अखबार थे जिन्होंने मेरी इल्जामशुदा नज्मों को फिर से प्रकाशित किया और जोरदार लफ्ज़ों में कहा कि 'इनमें एतराज की कौन-सी जगह है।'

उस वक्त सन्त लौंगोवाल थे जो बात की गहराई तक पहुँचे कि इन नज्मों को लिखे हुए, छपे हुए जब १४ साल हो चुके हैं तो अब १४ साल के बाद कोई एतराज उठाए गए हैं तो कारण क्या है? मैं तो जानती थी कि मुझे तसल्ली यह हुई कि सन्त लौंगोवाल ने यह जाना कि जालंधर के एक पत्रकार थे जो बरसों से मेरी नज्मों के खिलाफ लिखते रहे थे, लेकिन कुछ नहीं हुआ तो अब उन्होंने मजहब के नाम पर अपना गुस्सा निकालना चाहा और कई महीने लगातार हर इतवार को जहर में बुझे अक्षरों में एक लेख लिखते या लिखवाते रहे और फिर वे सब इकट्ठे किए और फिर उनकी बुनियाद पर एक मुकदमें की तैयारी करवाई। सन्त लौंगोवाल ने २५ जून १९८३ के इंडियन एक्सप्रैस पंजाब एडीशन में अपना बयान दिया। वहाँ उनका नाम नहीं है सिर्फ एक 'हाइली प्लेस्ड' सोर्स लिखा हुआ है लेकिन जिन्होंने यह सब लिखा था उनकी बातचीत, उन्हीं से मुझे पता चला कि वह सन्त लौंगोवाल थे और उसमें कहा गया था 'दे रियलाइज दैट सम जैलस पंजाबी राइटर्स हू हैड बिन कास्टेंटली कम्पलेनिंग अगेन्स्ट द राइटर एण्ड यूज्ड द अदर्स टू हैरेस हर।' ये वाक्या कुछ तफसील से दोहरा रही हूँ इसलिए कि मुझे कैसे समकालीन मिले और मुझे किस दौर से गुजरना पड़ा, उस दौर का कुछ अन्दाजा हो सके। दिल पे क्या गुजरी उसका कुछ भी लफ्ज़ों की पकड़ में नहीं आ सकता। कई बार सिर्फ इतना भर मुँह से निकलता रहा कि बादलों के महल में मेरा सूरज सोया हुआ है और उस महल का कोई दरवाजा नहीं, कोई खिड़की नहीं, कोई सीढ़ी नहीं और सदियों के हाथों ने जो पगडण्डी बनाई है वह मेरे चिन्तन के पैरों के लिए बहुत संकरी है। मैं अपने सूरज के पास कैसे पहुँचूँ जो बादलों के महल में सोया हुआ है। उन दिनों बम्बई के अखबार 'सण्डे आबजर्वर' ने मुझसे पूछा कि मैं सब कुछ के बारे में क्या कहना चाहूँगी? तो कहा बस इतना ही कि 'इट इज नाट एन एज आफ रीजन।' उन्होंने फिर पूछा कि मैं अदालत में अपनी डिफेंस के लिए क्या कहूँगी? तो मैंने कहा-'अपनी वही नज्में पढ़ दूँगी।' हमारी अदालतों में कुछ सच्चाई अपनी हिफाजत कर सकती हैं या नहीं, मैं नहीं जानती। लेकिन वही एक नज्म थी 'नौ सुपनें' जो मैंने उस माँ की ओर से लिखी थी, जब नानक जैसा बेटा, नानक जैसी

पाक रूह उसकी कोख में साँस ले रही थी और वही दरद के नौ महीने थे माँ के 'नौ सुपने'। जिस पर खास तौर पर एतराज उठाया गया। और वह नज्म कागजों के अक्षरों से उठकर मेरी आँखों के सामने फिजा में तैरने लगी। नज्म का पहला मिसरा था–

"ये सर्द ऋतु में कैसी नमी।
कितनी करामात से भरी हुई,
कि मैंने पानी को छूआ तो पानी की नदी दूधती,
दूध की नदी हो गई। ये कैसा सुपना।
कि नदी में चांद तैर रहा था।
मैंने हथेलियो पर चांद रखा घूंट पीया तो वही
नदी का पानी मेरी कोख में हिलने लगा।
और दूसरा सुपना था–
'यह मिट्टी की काया सकार्थी होती है जब
इसकी कोख में कोई नीड़ बनाता है। यह कैसा जप, कैसा तपं
कि माँ को ईश्वर का दीदार कोख में से होता है।

तीसरा सपना था मैं दूध बिलोने बैठी, मटकी में हाथ डाला तो सूरज एक मक्खन की तरह मेरे हाथ में आ गया। चौथा सपना था मेरे से मेरी कोख तक यह सपनों का फासला है। यह कैसा गेहूँ था कि फटकने बैठी तो छाज सितारों से भर गयी। पांचवां सपना था जेठ के महीने में यह कैसी आवाज थी जैसे जल में से, थल में से एक नाद उठता है। यह मोह का और माया का गीत था या ईश्वर की काया का गीत था। यह दैवी सुगंध थी या मेरी नाभि की गन्ध थी। यह कैसी आवाज, कैसा सुपना? कितना घर बेगाना, कितना घर अपना। मैं एक हिरनी बावरी सी होती रही और अपनी कोख से अपने कान लगाती रही। और छठा सपना था माँ की आँख खुलीं सहज मन जैसे फूल खिल रहा है। जैसे दिन चढ़ता है। और वह सोचने लगी अभी एक डाल पर मैंने एक हंस देखा। कैसा सपना था कि जाग उठी तो लगता है कि उसी हंसा का पंख मेरी कोख में हिल रहा है। और सातवाँ सपना था कोई पेड़ दिखाई नहीं देता, कोई निशान भी नहीं फिर किसने मेरी झोली में एक नारियल डाल दिया? नारियल तोड़ा तो लोग गिरी लेने आए। कोई दुई नहीं द्वैत नहीं। मैं गिरी बांटती रही और वह खत्म नहीं हो पा रही। आठवां सपना था इस गर्भ के बालक का चोला कौन सीएगा? यह कैसी पिटारी है, कैसा सूत है। मैं जैसे अटेरण पर सूरज की किरणें अटेरती रही और आखिरी सपना था मैं मोह और ममता की पूनी किसके लिए कातती हूँ मोह के तारों में आसमान तो नहीं बांध सकते। सूरज को नहीं बांध सकते। यह तो सच-सी वस्तु है, इसका चोला नहीं कात सकते।

अब माँ ने अपनी कोख के आगे माथा नवा दिया। मैंने सपनों का भेद पा लिया। यह न अपना है, न पराया है। यह तो अजल का जोगी मौज में आया है। और घड़ी पल के लिए सेक रहा है मेरी कोख की धूनी, अरे मैं किसके लिए कातती हूँ मोह की पूनी? और आखिरी पंक्तियाँ थीं 'यह कार्तिक का महीना कोख की धूनी कात रही अग्नि की पूनी, देह का दिया जल उठा। रौशनी का तिनका उसे छू गया। बुलाओ धरती की दाई को बुलाओ।

उन्हीं दिनों बुल्गारिया गई थी उसी मई के महीने में और वहाँ देखा मेरी नज्मों का जो मजमुआ बल्गारियन जबान में शाया हुआ था उसमें यह नज्म भी शामिल थी। फिर मैं हैरान हुई तो पूछा–'आप गुरु नानक को जानते नहीं, फिर आपने इन नज्म का चुनाव कैसे किया?' तो जिन्होंने नज्मों का चुनाव किया था, तर्जुमा किया था, कहने लगे–'यह सपने तो उस माँ के भी हो सकते हैं जिसने क्राइस्ट को जन्म दिया

था।' और मेरी आँखें भर-भर आईं।

एक साल के बाद जब जैन मुनि श्री पद्मचन्द जी ने मुझे जैन शास्त्र की दो किताबें भेजीं तो उनकी भेजी हुई एक किताब में मैंने पढ़ा कि जब किसी तीर्थंकर को पैदा होना होता है तो माँ को 14 सपने आते हैं और सपनों में ऐरावत हाथी, सफेद वल्क, लक्ष्मी फूलों की माला, चन्द्रमा, सूरज, झण्डा, कलश, कमल सरोवर, क्षीरसागर देवि विमान, रतन और धूवां रहित अग्नि दिखाई देती है। मैं हैरान हुई कि यह सब तो बाद में पढ़ा लेकिन आज से 15 बरस पहले मैंने यह नज्म लिखी उसमें सहज मन कितने ही ऐसे शगुन लिखे थे पानी की नदी जो क्षीरसागर की तरह दूध की नदी हो जाती है। पानी में तैरता हुआ चांद। मटकी से सूरज का मक्खन की तरह निकलना। सितारों से भरी हुई थाल। जल थल से उठता हुआ नाद। नाभि की सुगंध। हंस, नारियल और दीए की तरह जलती हुई देह। यही सपने तो थे जो हर तीर्थंकर की माँ को दिखाई देते हैं और जिन ग्रन्थों में लिखे हुए हैं उन्हें आदर से पढ़ा जाता है। लेकिन जब मैंने लिखे तो उन पर मुकदमें दायर किए जाने लगे। खुदाया यह क्या है!

जब हिन्दुस्तान की तकसीम हुई मासूम लोगों का कत्लेआम हुआ खासकर औरतों की जो हालत हुई जाने खुदा वह सब देखकर मैं कितनी तड़प उठी थी कि एक रात एक नज्म लिखी एक चीख की तरह। आज वारिस शाह से कहती हूँ कि कब्र में से उठो और इश्क की किताब का कोई नया वरक खोलो। पंजाब की एक बेटी रोयी थी—ही। तूने इतनी लम्बी दास्तान लिखी। आज तो लाखों बेटियाँ रो रही हैं, तुमसे कह रही हैं यह अपना पंजाब देखो जो लाशों में भरा हुआ है और अपना चनाब देखो जिसमें आज पानी नहीं खून बहता है। अब यह नज्म थी जिसने लोगों को हिन्दुस्तान में भी रुला दिया पाकिस्तान में भी, लेकिन उस वक्त भी कुछ गालियों जैसी नज्में मेरे खिलाफ लिखी गईं। और कुछ लोग कह रहे थे कि यह नज्म गुरु नानक को मुखातिब होनी चाहिए थी और कुछ लोग कह रहे थे ये नज्म लेनिन को मुखातिब होनी चाहिए थी।

1970 में होने वाले एशियायी सम्मेलन की स्वागत कमेटी ने मुझे अपनी कमेटी का अध्यक्ष चुन लिया था लेकिन फिर एक स्क्रीनिंग कमेटी बनी जिसने फैसला किया कि 1968 में मैंने चैकोस्लोवाकिया पर सोवियत रशिया के दबाव के समय जो नज्म लिखी थी वह पोर्नोग्राफी है, इसलिए जिसकीं नज्मों में पोर्नोग्राफी है उसे एशियायी सम्मलेन की स्वागत कमेटी में नहीं लिया जाना चाहिए। वह नज्म जिसे पोर्नोग्राफी कहा गया उसका नाम था—'मेरा पता।' नज्म थी-आज मैंने अपने घर का नम्बर मिटाया है और गली के माथे पर लगा गली का नाम मिटाया है। हर दिशा का नाम पोंछ दिया है। लेकिन फिर भी मुझे तलाश करना है तो यह एक शाप है और एक वर है। और जहाँ भी एक स्वतंत्र आत्मा की झलक मिले समझना वह मेरा घर है...

पिछले दिनों तक सपना आया था कि एक भरा बहता दरिया है जिसमें से बहुत जोर से एक लहर उठती है और एक गठरी जैसी चीज को किनारे रखकर लौट जाती है। देखती हूँ वह एक इन्सान का शरीर है जो पानी की लहर ने किनारे पर रख दिया है। सपने में ही पहचानती हूँ कि यह तो वसिष्ठ ऋषि हैं। और सपना टूटने पर वह प्राचीन कथा याद हो आई जब वसिष्ठ ऋषि ने आत्महत्या करनी चाही थी और अपने हाथों पैरों में रस्सियाँ बाँध कर अपने आपको दरिया के हवाले कर दिया था, लेकिन उस वक्त दरिया ने सोचा कि अगर आज वसिष्ठ ऋषि मेरे पानी में डूब गए तो मुझे ब्रह्महत्या का दोष लग जाएगा। और उसने अपनी लहरों के जोर से वे रस्सियाँ खोल दीं और फिर एक बड़ी-सी लहर में लपेट कर ऋषि को किनारे पर रख दिया। उस दरिया ने ऋषि के पाश खोले थे—उसके बंधन, इसी से दरिया का नाम विपाशा हुआ और वही पंजाब का दरिया था—विपाशा, जो अब व्यासा के नाम से जाना जाता है।

मैं सोचती हूँ कि इन वर्षों में जब देखा कि पंजाब में अपने ही लोगों के हाथ से अपने ही लोगों का खून बह रहा था तो जाने कैसा दर्द दिल में उतर गया था कि यह सपना आया कि इस धरती का ही दरिया था जो नहीं चाहता था कि उन्हें ब्रह्महत्या का दोष लगे। और आज उसी की मिट्टी खून में भीग रही है।

और 1985 के 27 अप्रैल की रात थी जब मैं सो रही थी। जब मैंने देखा कि एक आग जल रही है और वहां पास ढेरों कागज पड़े हैं जिन्हें उठा-उठा कर मैं आग में डाल रही हूँ। उस वक्त हाथ की लाठी के बल से चलती हुई एक बहुत बूढ़ी औरत मेरे पास से गुजरती है और पूछती है–'यह क्या कर रही हो बेटी?' मैं कहती हूँ–'देखो अम्मा यह बहुत से अखबार हैं जो लोगों में नफरत फैलाते हैं। मैं इन्हें जला रही हूँ' वह हंस देती है, कुछ नहीं कहती और लाठी टेकते-टेकते वहाँ से गुजर जाती है। वही लाठी की आवाज थी जिससे मेरी नींद टूट गई।

सारी जिन्दगी जिस जबान में लिखा पंजाबी में, चाहती थी उस जबान में शाया होने वाले किसी महानामे का मयार इतना ऊँचा हो कि अदब के दायरे में कद्र-ओ-कीमत का नजरिया भी शामिल हो। यही एक तमन्ना थी कि मई 1966 में मैंने एक मासिक पत्र शुरू किया था 'नागमणि'। यह लफ्ज नागमणि प्रतीकात्मक था–सिम्बौलिक कि जिस तरह नाग में एक कीमती चीज कही जाती है-मणि, उसी तरह इन्सान के पास जो एक कीमती चीज है वह उसकी बौद्धिकता है। इसी ख्याल से नाम रखा नागमणि। और आठ साल इस पत्र में किसी से कोई इश्तहार लेकर शामिल नहीं किया। लेकिन जब महंगाई बढ़ने लगी कागज दिन-ब-दिन महँगा होता गया, प्रैस के रेट बढ़ने लगे, तो इन मुश्किल हालात में कोई रास्ता अख्तियार करना था। तो सोचा कि अगर किताबों के इश्तिहार हों, तो हमारा अदबी नजरिया कायम रहेगा। इसलिए पंजाब की हर यूनिवर्सिटी को लिखा कि वह अपने यहाँ प्रकाशित होने वाले किताबों के इश्तहार का एक सफा कभी-कभी साल में दो-तीन बार दे दिया करें। लेकिन किसी युनिवर्सिटी ने खत का जवाब नहीं दिया। उन्होंने पंजाब सरकार के एजुकेशन बोर्ड का एक इश्तहार दिलवा दिया जो कुछ देर मिलता रहा। लेकिन फिर अचानक बंद हो गया तो पता चला कि ऊपर से कोई मिनिस्टर थे उन्होंने कहा कि 'नागमणि' को इश्तहार नहीं दिया जाएगा, क्योंकि इसकी सम्पादिका के बाल कटे हुए हैं।'

नागमणि कायम रहे इसके लिए तकाजा था कि कागज, छपाई के खर्च के अलावा किसी तरह का खर्चा इस पर न डाला जाए। इसलिए स्टाफ के नाम पर मैं थी और एक इमरोज, जो प्रूफ देखने से लेकर पैकिंग और पोस्टिंग का सारा काम अपने हाथों करते थे। बीस साल करते रहे। और अब बीस सालों के बाद अचानक हमें 'डी' नम्बर देने से इनकार कर दिया गया है। जो कम खर्च पर पोस्टिंग की मदद के लिए सरकार की तरफ से दिया जाता है। इसका कारण जो बताया गया है वह यह है कि इसमें खबरें नहीं होतीं।

अदब से ताल्लुक रखने वाला खबरनामा तो इसमें था लेकिन अदबी रिसाले में सियासी खबरें कैसे हो सकती हैं? यह मैं नहीं समझ सकती। यह 'डी' नम्बर हर साल लेना होता है जो हर साल के 31 दिसम्बर तक के लिए होता है। और यही अदबी रिसाला था जिसे बीस साल तक 'डी' नम्बर मिलता रहा और अब क्या हुआ यह समझ में नहीं आता।

इस नए साल का जनवरी अंक 31 दिसम्बर को पोस्ट होना था इसलिए हो गया। लेकिन अब फरवरी का अंक कम्पोज हो चुका है जिसके फाइनल प्रूफ देख चुकी हूँ। लेकिन उसे प्रकाशित नहीं किया जा सकता, क्योंकि 'डी' नम्बर की सहूलियत छीन ली गई है। *

[* शुक्र है! पत्रिका उस के बाद भी छपी और अभी-अभी उसका ताजा अंक आया है] ❑